ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ 06 10 1972 पुष्प 25 बकासुर उपाख्यान 5
२ 14 10 1972 यागमयी साधना........ 13
योग की गतियाँ 14
योग और तीन प्रकार........ 15
अवतारवाद का सिद्धान्त........ 15
आत्मा की अबाध गति का मार्ग........ 16
आत्मा और आवरण 16
प्रकृति के मण्डल और मोक्ष प्राप्ति........ 17
योगी का आहार........ 17
प्राणों की गतियाँ 18
योग मुद्रा में आकाशवाणी का रहस्य 18
शब्द विज्ञान........ 19
प्रवचनों में हिन्दी भाषा होने का रहस्य 20
३ 11 11 1972 पुष्प 25 परमानन्द की प्राप्ति 21
४ 12 03 1973 पुष्प 25 महर्षि याज्ञवल्क्य ओर मैत्रयी का संवाद 34
५ 31 07 1973 पुष्प 26 चार प्रकार के प्राणी........ 42
६ 01 08 1973 पुष्प 25 आयुर्वेद की महता 55
७ 02 08 1973 पुष्प 26 राष्ट्र और समाज 69
८ 22 09 1973 पुष्प 26 इन्द्रियो का साकल्य........ 81
९ 03 12 1973 पुष्प 26 ईश्वर जीव और प्रकृति 89
१० 15 11 1974 पुष्प 26 मन और प्राण 103
११ 17 05 1975 पुष्प 27 पवित्र संकल्प पवित्र आहार........ 113
१२ 19 08 1975 पुष्प 25 आयुर्वेद 123
१३ 02 03 1976 पुष्प 27 साधना कैसे........ 138
१४ 03 03 1976 पुष्प 27 मानव उन्नति 153

नाडियों से लोकों का सम्बन्ध....................158

पितर याग....................159

पृथ्वी के तप से खनिज....................161

अज्ञान में मृत्यु....................163

१५ 04 03 1976 पुष्प 27 मानव जीवन यज्ञमय....................168

१६ 02 05 1976 पुष्प 27 मन और प्राण....................183

१७ 04 05 1976 पुष्प 27 भैतिक विज्ञान....................195

१८ 06 05 1976 पुष्प 27 विचारो की सुगन्धि....................209

१९ 24 05 1976 पुष्प 26 पञ्च महायज्ञो के अनुष्ठान....................221

२० अतिथि 006 पुष्प 25 विज्ञान ही याग है....................238

२१ अतिथि 007 पुष्प 26 मानव को कर्तव्यवादी बनना चाहिए....................249

१ 06 10 1972 पुष्प 25 बकासुर उपाख्यान

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। आज हम उस प्रातः काल की अग्नि को पुकार रहे थे जो अग्नि हमें प्रकाश के देने वाली है अथवा उसका प्रकाश आ रहा है। प्रातःकाल में सूर्य उदय होता है। प्रकाश देता है। मानव को जन जीवन प्रदान करने लगता है तो वह जो प्रभु अग्निमय स्वरूप है वह हमें प्रातःकाल में जीवन का प्रसाद देता है। उसके प्रकाश को जो पान करता है वह अमरावती को प्राप्त हो जाता है। हे प्रभु! आप हमारे महान देव हैं। जीवन में प्रकाश को उद्बुद्ध करने वाले हैं। आप को अग्निमय स्वरूप माना है क्योंकि अग्नि आपकी चेतना की अग्नि स्वरूप से बनी हुई है। हे प्रभु! हम आपकी आराधना करने आए हैं और हमारे जो यह आराधना है इसको स्वीकार करो।

हे प्रभु! आप हमारे पापों का मोचन करने वाले हैं क्योंकि कर्मों के अनुसार जब हमें फल प्रदान कर देते हैं तो उससे हमारे जीवन में एक नवीनता का प्रसार होने लगता है। तो हे प्रभु! आप हमारे जीवन के साथी हैं। हमें प्रकाश आपकी ही महिमा से प्राप्त होता है। हे प्रभु! आपका जो दर्शन है, आपका जो प्रकाश है उसे जब हम अपने में दृष्टिपात करते हैं तो प्रभु! हम उसका वर्णन नहीं कर पाते। क्योंकि वह ऐसा अद्वितीय प्रकाश है जिस प्रकाश को पान करने के पश्चात् मानव के जीवन में एक महत्ता दीखने लगती है। आओ मेरे प्यारे! मैं आज अधिक विवेचना नहीं देने आया हूँ। हम अपने प्यारे प्रभु के द्वार पर जाना चाहते हैं। उस सन्धि के पुलकित द्वार पर जिस सन्धि के समय में हम प्रभु से विच्छिन्न हो गए थे। जिस प्रकार रात्रि और दिवस दोनों को विच्छेद हो जाता है परन्तु वह जब सन्धि काल आता है तो दोनों का मिलान हो जाता है। इसी प्रकार हम यह चाहते हैं प्रभु से हमारा जो विच्छेद हो गया है हमारा और आपका जो विछुड़न हो गया है उसमें हम मिलान चाहते हैं पुनः से सन्धि चाहते हैं और वह सन्धि

किस काल में होगी? जब प्रभु आप हमारे ऊपर अनुपम कृपा करेंगे अथवा दया करेंगे और हम उस महान सन्धि करने वाले पथ के हम पथि बन जाएंगे। तो प्रभु! आपसे हमारे सन्धि होकर के हमारा जीवन पुनः से प्रकाशमय बन जाएगा।

प्रभु जिस मानव का अन्तःकरण लोभ मोह के कारण हमारे शरीर का जो छेदन, हमारे जीवन का जो छेदन हो रहा है उसको हम पुनः से जीवन को ऊँचा बनाने के लिए उस मार्ग को हम अपनाना चाहते हैं। प्रभु! जिससे हमारे यह जो छेदन हैं यह दूर हो जाएं और हम प्रभु जैसे आपके द्वार से आए थे उसी प्रकार आपको प्राप्त हो जाएं। हे भगवन! हम जो नाना प्रकार की उस भयंकर अग्नि में परणित हो गए हैं हम जो आलस्य और प्रमाद में इतने चले गए हैं उस आलस्य और प्रसाद को हम दूर करके उस पथ को अपनाना चाहते हैं जिस पथ के अपनाने से आपकी और हमारी दोनों की सन्धि हो जाए।

हम लाखों करोड़ों वर्षों से अथवा अरबों वर्षों से न मालूम कितना समय हो गया प्रभु! जब आपसे हमारा विच्छेद हो गया था। हे प्रभु! हम पुनः से सन्धि चाहते हैं और उस वैदिक प्रकाश को हम अपनाना चाहते हैं। जिस प्रकाश में हमारी और आपकी दोनों की सन्धि होगी। प्रभु! वह एक पथ है वह प्रकाशमय पथ कहलाया गया है। आज हम उस पथ को प्रभु वास्तव में पुनः से अपनाना चाहते हैं। हे भगवन! यह संसार तो विडम्बित (छलनामय) होता रहता है यहाँ नाना प्रकार के विवाद होते रहते हैं। हे प्रभु! हम तो आपके समीप आए हैं। आपकी दया चाहते हैं। आपकी महत्ता चाहते हैं जिस महत्ता के प्रकाश में हम अपने जीवन को वास्तव में सूक्ष्म से सूक्ष्म बनाकर के और आपके प्रति आपकी सूक्ष्मता में हमारा सन्निधान अथवा दोनों की सन्धि हो जाए, प्रभु! जैसे दिवस और रात्रि की सायंकाल को दोनों की सन्धि होती है।

हे मेरे प्रभु! हे देव! आपको वेद ने माता कहा है कसी माता है? वसुन्धरा है क्योंकि जब आपका यह जगत रचा था तो प्रभु! आपने जगत को रचते हुए उस समय मानव जीवन के लिए संध्या को उत्पन्न किया, जो संध्या पुरातन काल में द्यु लोक में रमण करती थी अथवा यह देवताओं के लोक में रमण करती थी। देवता इसके आनन्द से

आनन्दमय होते थे आनन्द को पान करते रहते थे। उसी प्रकार भगवान आज हम आपकी अपनी सन्धि करते हुए उस संध्या को अपनाना चाहते हैं जिस संध्या को देवतागण पान करते थे। देवतागण भी इस सन्धि से देववत् को प्रायः प्राप्त होते रहते थे। प्रभु! तो इसीलिए आपके हम द्वार पर जाना चाहते हैं।

वेद का ऋषि कह रहा था अग्नि विप्रजः मधु बर्चतम यह जो अग्नि है यह विप्र है कैसा विप्र है। जो हमें ऊर्ध्व गति को ले जाने वाला है। ऊर्ध्व का वाचन कराने वाला है। मुनिवरों! देखो, इसीलिए आज हम जब तेरे द्वार पर हम आचमन करते हैं अमृतमय जल के रूप में जीवन विराजमान है जब हम आचमन को करते हैं तो वास्तव में हम यह स्वीकार करते हैं कि हमारा जो जीवन है वह सत्यमय रहना चाहिए। ऐसा जीवन होना चाहिए भगवन! जिससे हम आपके द्वार पर जाने के लिए तत्पर हो जाएं। कैसा जीवन? मुनिवरों! देखो, सत्यमय हो और सत्यम् ब्रह्मः वाचः। हे प्रभु! हम आपके समीप जाने से पूर्व यह विचार लेते हैं कि हमारा जीवन यह जो जल है यह एक प्रकार का आनन्दमय आसन के तुल्य है। आज हम इस अमृतमय रूपी आसन को अपनाना चाहते हैं और उसमें सुख अनुभव करते हैं। तो वह जो सुख की बेला है उसमें हम अपने विचारों को रखकर जब हमारे द्वारा कोई नहीं होता उस समय हम अपने विचारों को आपके समीप उद्बुद्ध करते हैं।

यह संसार तो भगवन! इस प्रकार का है कि यदि यहाँ किसी का अपना मन कोई आन्तरिक विचारधारा प्रकट करेगा तो कोई अपमानित करेगा कोई मानित करेगा। कोई मग्न होकर हर्ष ध्वनि करेगा। कोई किसी प्रकार के हर्ष से युक्त हो जाएगा प्रभु! यह जगत् तो बड़ा विचित्र है। परन्तु इससे हम पार होना चाहते हैं। यहाँ भगवन! मानव मानव के रक्त का पिपासु रहता है। हम यह भी नहीं चाहते कि जब संसार में आप ही हमारा एक लक्ष्य रहेंगे तो न तो हम संसार के आँगन को दृष्टिपात करेंगे और न हम यह दृष्टिपात करेंगे एक मानव दूसरे मानव के रक्त का पिपासु है यह भी हम स्वीकार नहीं करेंगे। तो भगवन! इस अवस्था के लिए हमें आपकी करुणा और दया की प्रायः आवश्यकता रहती है। तो हे मेरे देव! तेरे आँगन में सदैव हम आना चाहते हैं। आपको

वेदों ने विष्णु कहा है, आत्मा, परमआत्मा कहा है। हम आत्मा हैं आपके आँगन में आना चाहते हैं। क्योंकि आप परमात्मा हैं। हम आत्मा हैं तो आप परमात्मा हैं और परम आत्मा के ही भगवन! द्वार पर हम अपने को ऊँचा बनाने के लिए तत्पर चाहते हैं। हमारी संसार में कोई इच्छा नहीं है। हम संसार के वैभव को नहीं चाहते। हम विज्ञान की उड़ान भी नहीं चाहते। प्रभु! हम तो केवल यह चाहते हैं कि हमें आपका दिग्दर्शन हो।

हम प्रकाश में रमण करते रहें। हमारे द्वारा यह जो अज्ञान है, जिस अज्ञान के गर्भ में काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि विराजमान रहते हैं। प्रभु! यह अज्ञान नहीं आना चाहिए। जिससे हमारे शरीर में बकासुर संग्राम हो जाए। हम बकासुर संग्राम नहीं चाहते। हम तो भगवन! देवताओं के विचार चाहते हैं। दार्शनिकों का समूह चाहते हैं। देववत् का समूह चाहते हैं। हम भगवन! वह जो बकासुर संग्राम है कैसा विचित्र है वह? मानो बकासुर जो उसके हृदय में वज्र है ऐसा वज्र है जिस वज्र से भगवन! वह संसार को अस्त व्यस्त कर देता है मानव के जीवन को अस्त व्यस्त कर देता है। हे भगवन! हम उस बकासुर संग्राम को नहीं चाहते।

मुझे स्मरण है भगवन! एक समय जब बकासुर संग्राम हुआ। कैसा बकासुर संग्राम हुआ? उसमें भगवन! संसार का जीवन अस्त व्यस्त हो गया। उस समय देवताओं का जो अधिराज इन्द्र है उसने यह विचारा कि इस बकासुर को मैं कैसे नष्ट करूँगा? उस समय देखो, महाराजा इन्द्र ने ऋषि मुनियों का एक समूह देवताओं का एक समूह एकत्रित किया और देवताओं ने इन्द्र को प्रेरणा दी। हे इन्द्र! यदि दधीचि की अस्थियां आएं तो उसका वज्र बनेगा तब बकासुर परास्त हो सकेगा। बकासुर को आप नष्ट कर सकते हैं। अन्यथा यह नष्ट नहीं होगा। यह बड़ा धूर्त है यह पामर है। यह देवताओं का शत्रु बनकर के देवताओं से संग्राम करता है। उस समय जब यह वाक्य महाराजा इन्द्र ने स्वीकार किया तो उस समय इन्द्र ने प्रस्थान किया। भ्रमण करते हुए इन्द्र महात्मा दधीचि के द्वारा पर पहुंचे महाराजा दधीचि यहाँ एक कामधेनु गऊ थी और कामधेनु गऊ ने दधीचि की अस्थियों के ऊपर जो मांस था उसे उसने अपनी जिह्वा से पान कर

लिया। जब अस्थियां रह गईं तो अस्थियां महाराजा इन्द्र को प्रदान की गईं। मुनिवरों! उसका वज्र बना और वज्र बनकर के बकासुर का विनाश हुआ। मुनिवरों! गदाधारी जो बकासुर था उसका महाराजा इन्द्र तथा देवताओं ने विनाश किया।

तो विचार यह है कि यह बकासुर कौन है? और महात्मा दधीचि कौन है? जिसकी अस्थियों का वज्र बनता है मुनिवरों! यहाँ कहा जाता है जब देवासुर संग्राम होता है तो ऐसा वेद में आया है कि यह दधीचि कौन हे? किसकी अस्थियों का वज्र बनता है? बकासुर नाम अभिमान का है। कैसा अभिमान है वह बकासुर? मानो वह विद्युत के द्वारा, कैसी विद्युत? कामना के द्वारा, क्रोध के द्वारा इनकी गदा बनाकर के, यह देवताओं पर प्रहार करता है। यह दैवी प्रवृत्तियों पर प्रहार करता है। दैवी प्रवृत्तियों का ह्रास हो जाता है परन्तु पुनः वे उत्थान करती है तो वह जो इन्द्र है इन्द्र नाम आत्म वेदना को कहा गया है। वह जो वेदना है वह क्या है? वह वेदना मानो जब इन्द्र की वेदना चलती है देवताओं के उत्थान के लिए, दैवी प्रवृत्तियों को ऊँचा बनाने के लिए। अब मुनिवरों! देखो, वह अपनी ज्ञानरूपी मानो देखो, यहाँ वज्रप्रवे पर्यायवाची शब्दों में कहा दधीदद्रभव, मुनिवरों! देखो, दधीचि जो दें और चि हैं मानो यह जो धारणा की जाती है उसकी प्रवः अस्वय, धातुओं से उत्पन्न होने के पश्चात् बेटा! यहाँ दधीचि नाम! विवेक और ज्ञान दोनों को कहा गया है। वह दधीचि की अस्थियां क्या हैं? ज्ञान और विवेक में जो तरंगें उत्पन्न होती हैं जो बकासुर शत्रु का विनाश करती हैं। उस वज्र को ले करके वह जो इन्द्र है मानो यहाँ इन्द्र नाम से आत्मा को कहा गया है। वहाँ आत्म वेदना वाला वह जो इन्द्र है वे जो प्रवृत्तियां हैं उन प्रवृत्तियों में जो देवताओं की सभा में वह जो वज्र बन जाता है उन तरंगों का उन का वज्र बनकर के बेटा! बकासुर को शान्त (नष्ट) कर देता है।

अभिमान को सबसे पहले नष्ट किया जाता है। आज जिस मानव के द्वारा अभिमान होता है वह मानव कदापि भी आत्मवेत्ता नहीं बन सकता। क्योंकि उसका बकासुर जीवित है। उस क्षेत्र का जो शत्रु बना हुआ बकासुर था, वह जीवित है। वह जो बकासुर है वह जीवित रहता हुआ मानव के सुकृत (पुण्य) हनन करता रहता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! विचार यह कि हम उस बकासुर को नष्ट करना चाहते हैं। बकासुर नाम बेटा!

अभिमान का है। कैसा अभिमान कभी ऊर्ध्व जाता है कभी ध्रुवा में आता है। उसका मुनिवरों! किसी काल में उन्नत होता रहता है। वही बकासुर है जो क्रोध रूपों में धारण होता है। वही बकासुर है जो मृत्यु को प्राप्त होता है। जितनी निराशा आ जाती है क्रोध की मात्रा प्रबल हो जाती है। वही है जो काम बनकर के शरीरों का ह्रास करता रहता है। वही बकासुर है जो प्रभु सन्धि नहीं होने देता। वह कैसा भयंकर बकासुर है। बेटा! जो तृष्णा के रूपों को भी धारण कर लेता है बेटा! काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मुनिवरों! वह अभिमान है इन सर्वत्र रूपों को धारण करता है और इन्हीं के द्वारा एक वज्र बनाता है, गदा बनाता है जिससे वह प्रहार करता है। बेटा! यहाँ वे सुकृत शान्त हो जाते हैं।

इन्द्र ज्ञान रूप दधीचि की अस्थियों को ले करके अस्थि नाम ज्ञान का है, विवेक का है। जब ज्ञान और विवेक दोनों की सन्धि हो जाती है तो बेटा! उसका वज्र बनता है और वज्र बनकर के उस बकासुर को नष्ट किया जाता है। जो बकासुर कहीं रोचन (सुन्दर लगने वाला) का स्वरूप धारण कर रहा है, कहीं बकासुर का रूप धारण है इसी प्रकार उनको कष्ट करने वाला हम आत्म वेदमय विचारते हैं। परन्तु हे प्रभु! हम बकासुर को उसी काल में तो नष्ट करेंगे जब प्रभु आपकी हमारे ऊपर करुणा और दया हो जाएगी। जब तक आपकी करुणा और दया नहीं होगी हम उस भयंकर बकासुर को नष्ट नहीं कर सकेंगे। हे भगवन! हम अभिमान को नहीं चाहते। हम उस बकासुर को नहीं चाहते।

मैं बकासुर की विवेचना बहुत पुरातन काल से करता चला आता हूँ। बकासुर नाम वायु को भी कहते हैं। कहीं कहीं बकासुर लाभप्रद भी होता है लोक के लिए लोकप्रियता के लिए। इन्द्र नाम वायु को कहते हैं। बकासुर नाम मेघों को कहते हैं। और मुनिवरों! इन्द्र की जो पत्नि शचि है वह बकासुर पर अपना प्रहार करती है यहाँ दधीचि नाम प्राहः अस्वातियों को तेज को कहा गया है वह जो समुद्रों से सूर्य के तेज का उत्थान होता है। यहाँ दधीचि नाम सूर्य को कहा गया है। वह दधीचि सूर्य है वह मानो अपनी अस्थियों के द्वारा, अस्थि नाम किरणों को कहा गया है वह किरणों के द्वारा समुद्रों को तपाता

है, इन मेघों को तपाता है इनका वायु में भरण कर देता है। वायु इन्द्र का स्वरूप धारण करके उन किरणों के तेज का वज्र बनाकर के अब यह जो मेघ रूप बकासुर है इनको छिन्न भिन्न करता हुआ शचिः के तप के द्वारा यह धीमी धीमी वृष्टि कर देता है। मुनिवरों! उससे वनस्पतियों का जन्म होता है। तो इसीलिए हमारे यहाँ बकासुर नाम बेटा! मेघों को भी कहा गया है।

जहाँ ज्ञान और विवेक को कहते हैं आध्यात्मिकवाद है, प्रभु की प्रतिभा है, मानो जो इसको (बकासुर को) नष्ट करता है वही संसार में मानव आध्यात्मिक मार्ग पर चलता है तो उस मानव को अभिमान बहुत आता है क्योंकि वह किसी की वार्त्ता को सह नहीं पाता। कारण क्या? क्योंकि उसे अभिमान त्रास करता रहता है। तो हम प्रथम उस अभिमान को नष्ट करना ही चाहते हैं : हमारे ऋषि मुनियों ने हमारे आचार्यों ने सबसे प्रथम इस अभिमान को नष्ट करने के लिए घोषणा की है। परन्तु साधकों के लिए साधक बनना संसार में बहुत अनिवार्य है परन्तु आज मैं विशेष चर्चा तो प्रकट नहीं करूंगा। विचार यह कि मैं प्रभु के द्वार पर जाने के लिए याचना कर रहा था।

मुनिवरों! वह जो दधीचि की कामधेनु गऊ है वह क्या है? मुनिवरों! इसके द्वार से वह जो मांस है इसको समाप्त करता है। बेआ! वह जो कामधेनु है वह स्वाध्याय है कामधेनु नाम मानव की शान्त प्रवृत्तियों का है। वह जो प्रवृत्ति है शान्ति है वह जो दधीचि के आँगन में जो ज्ञान और विवेक को कहते हैं। मुनिवरों! वह जो कामधेनु है जिसे विद्या कहते हैं वह शनैः शनैः उसमें विवेक लाती रहती है और वह उसकी निन्दा रूप मांस को निगल जाती है। यह विद्या के गर्भ में अज्ञान विराजमान हो जाता है। जब ज्ञान हो जाता है तो अज्ञान कहाँ चला जाता है। अज्ञान बेटा! कामधेनु के गर्भ में चला जाता है।

कामधेनु नाम प्रकृति का है और कामधेनु नाम उस विद्या का है जिसे ब्रह्म विद्या कहते हैं। जिससे हमें ब्रह्म प्राप्त होता है। आज बेटा! मैं अधिक विवेचना नहीं दूंगा। विचार यह कि उस प्यारे प्रभु का गुण गाएं। हे प्रभु! आप हमारे पापों के मोचन हारे हैं। हम आपके द्वार पर आए हैं। हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाइए। हम आनन्द चाहते हैं।

हम विडम्बना नहीं चाहते संसार में। भगवन! हम यहाँ इन्द्र बनना चाहते हैं। यहाँ देवताओं की सभा में जाना चाहते हैं।
देववत कौन है? वह देवता मानव की कौन सी प्रवृत्ति हैं, जिससे हम आनन्द ही आनन्द में रमण करते हैं। जब विराजमान होते हैं तो प्रभु! का ही चिन्तन हो। जैसे माता का प्रिय बालक क्षुधा से पीड़ित होता है तो माँ को ही पुकारता है। मानो जब उसे कोई दण्ड देता है उसके पश्चात् ममतामयी माता को ही पुकारता है। इसी प्रकार मुनिवरों! जब नामोच्चारण करते हैं तो मानव को उसका भान हो जाता है। अहा अज्ञानता उसके समीप नहीं आती जब प्रभु उसके समीप होता है। उसकी करुणामयी गोद होती है। तो मुनिवरों! जैसे नामोच्चारण करते हैं तो प्रभु! का दर्शन हो जाता है। नामोच्चारण करने से ही उसका भान हो जाता है। बेटा! वह जो महत्ता है वह देव प्रवृत्ति है देववत है। आज हमें देववत को लाता है। ससुरवत को समाप्त करना है। हम संसार की महत्ता के आँगन में जाना चाहते हैं। हम असुर प्रवृत्तियों को नहीं बनाना चाहते हैं। हम विरोचन (असुरों का राजा) नहीं बनाना चाहते। हम तो देवता बनना चाहते हैं। प्रभु! हमें देवता बनाइए और हमारी आपकी सन्धि हो जानी चाहिए। हमारा तो एक ही मन्तव्य है। हमारा तो एक ही लक्ष्य है कि प्रभु हमारे समीप आप होने चाहिएं। आप यदि हमारे समीप होंगे तो हम किसी प्रकार का अपराध नहीं करेंगे। हम मोह भी नहीं करेंगे क्रोध भी नहीं करेंगे। आपका ही लक्ष्य हमारे समीप होगा हम आपके ही उद्देश्यों का पालन करने वाले बनें। ऐसी भगवन! आपसे आराधना है। मैं सदैव आपकी प्रार्थना करता रहता हूँ। आपके द्वार पर जाने के लिए हम सदैव प्रभु तत्पर रहते हैं।
यहाँ देवासुर संग्राम होता रहता है। आज मैं अधिक विवेचना नहीं दूंगा। आत्मा का विचार है, संक्षिप्त परिचय देना है। हम प्रभु के द्वार पर जाना चाहते हैं। यह है बेटा! आज का वाक् कि हम विवेक को अपनाना चाहते हैं देवताओं की परिधि में हम देववत् ऋषिवत बाल्य प्रवृत्ति को बनाना चाहते हैं। हम संसार की विडम्बना में नहीं जाना चाहते। हम अभिमान को समाप्त करने के लिए साधक बनने आए हैं। साधना वही कर सकता है जो विवेकी होगा और विवेकी वह होता है जिसे अभिमान नहीं होता। और मुनिवरों!

अभिमान उसको नहीं होता जो मन और प्राण को दोनों को समन्वय बनाता है। दोनों की सन्धि कर देता है।
यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं पुनः कल वाक्यों में प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

२ 14 10 1972 यागमयी साधना

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परा से ही उस महान वैदिक ज्ञान का प्रसारण होता रहता है, जिस ज्ञान को वेदों ने, ऋषि मुनियों ने धेनु कहा है। यह दुही जाती है। धेनु, विद्या को भी कहा गया है, हम जब परमपिता परमात्मा के समीप जाना चाहते हैं। क्योंकि प्रत्येक मानव की तो ऐसी आकांक्षा होती है। संसार में मानव इस उदर पूर्ति के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करता रहता है। परन्तु मानव की आत्मा के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करता रहता है। परन्तु मानव की आत्मा तो प्रायः पिपासु रहती ही है। आत्मा को भी यह उत्सुकता होती है कि मैं उस ब्रह्म के समीप पहुंचु और सखा को प्राप्त करूं।
बेटा! तुम्हें प्रतीत होगा जब याग करते हैं, तो यज्ञशाला में उस अग्नि की गति ऊर्ध्व होती हैं, उसकी ऊर्ध्व गति क्यों होती है? क्योंकि उसका जो सखा है, वह ऊर्ध्व दिशा में रहने वाला है। बेटा! सूर्य के आँगन को अग्नि का प्रवाह रहता है। द्यौ मण्डल की ओर रहता हैं। इस प्रकार प्राणीमात्र का आत्मा पिपासु रहता है और वह इस पिपासा में परणित रहता है कि मैं आत्मा के ज्ञान को प्राप्त करूं। क्योंकि आत्मज्ञान के लिए हमें वास्तव में अपनी उस पवित्र धारा को अपनाना है, जिसको अपनाने के पश्चात् हमारा जीवन प्रायः पवित्रता में परणित हो जाता है।
आओ, मेरे प्यारे! मैं आज अधिक विवेचना तो नहीं प्रकट करूंगा, परन्तु आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा है? हमारी वेदों की परम्परा हमें कौन सी आज्ञा दे रही है? आज हम किस मार्ग को अपनाना चाहते हैं? बेटा! उस मार्ग को अपनाने के लिए

हम वास्तव में पिपासु रहते हैं, क्योंकि यौगिक आत्माएं योग के द्वारा ऊर्ध्वगति को प्राप्त होती हैं।

बेटा! मुझे एक वाक्य स्मरण आ रहा है आज। बहुत परम्परा का एक शब्द है, यह ऋषि मुनियों का एक समूह एकत्रित था। उस समय महर्षि मुद्गल जी के और शाण्डिल्य जी के दो प्रश्न थे। उन्होंने यह कहा कि हे ब्रह्मवेत्ताओं! तुम ब्रह्म को जानते हो। परन्तु मैं एक वाक्य जानना चाहता हूँ। महर्षि भृगु और महात्मा जमदग्नि बोले बोलो, भगवन! तुम्हारा क्या प्रश्न है? उन्होंने कहा भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि संसार में योग की कितनी आभाएं हैं, और योग के द्वारा योगी अपनी आत्मा को कहाँ कहाँ ले जा सकता है? तो यह मैं जानना चाहता हूँ। बेटा! ऋषि मुनियों का मस्तिष्क तो ऊर्ध्वगति में जाने वाला था। परन्तु महर्षि भृगु और महात्मा जमदग्नि की उड़ान तो बहुत ऊँची रहती थी। देवर्षि नारद मुनि भी उस सभा में विराजमान थे। क्योंकि देवर्षि नारद मुनि चित्त के ऊपर अपना संयम करने वाले रहते थे। जो योगी चित्त के ऊपर अपना संयम करने वाले रहते थे। जो योगी चित्त के ऊपर संयम कर लेता है, अहंकार के ऊपर संयम कर लेता है, उसका अहंकार चित्त का वाहन बन करके उसका आत्मा अन्तरिक्ष में रमण करता है।

योग की गतियाँ

आज मैं तुम्हें निर्णय करा रहा हूँ कि योगी की आत्मा का क्या क्या कार्य रहता है। उस समय महर्षि भृगु जी ने और महात्मा जमदग्नि जी ने और महर्षि दधीचि और सोमकृति ऋषि महाराज इनके बेटे का विचार विनिमय होने लगा। परन्तु महर्षि शाण्डिल्य मुनि ने कहा कि हम यह जानना चाहते हैं कि योग की कितनी परिक्रियाएं होती हैं? अब, बेटा! परिक्रियाओं के ऊपर उनका विचार विनिमय प्रारम्भ होने लगा। महर्षि भृगु बोले हे महर्षि शाण्डिल्य जी! अंगिरस गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषि! हम यह जानना चाहते हैं कि तुम योग की कितनी गति जानते हो? महर्षि शाण्डिल्य बोले कि हम प्रायः योग की 12 प्रकार की गति स्वीकार करते हैं। महात्मा जमदग्नि से प्रश्न किया गया तो

महात्मा जमदग्नि बोले कि हम इसकी कुछ और गति मानते हैं। आस्वेति ऋषि ने कहा कि हम इनसे और भी अधिक गति जानते है। परन्तु महर्षि भृगु ने कहा कि योग की गति 36 प्रकार की होती है। वह जो 36 प्रकार की गतियाँ होती है, वह आत्मा का सूक्ष्म रूप है।

योग और तीन प्रकार

आत्मा का, योग का जो प्रारम्भ है वह, बेटा! तीन प्रकार के शरीरों को जानने का नाम, योग कहलाया गया है। सबसे प्रथम स्थूल, उसके पश्चात् सूक्ष्म कहलाया गया है। बेटा! हमारे यहाँ सूक्ष्म को ऐसा माना गया है, जो कारण शरीर है, उसमें भी पञ्च महाभूतों का मिश्रण रहता है क्योंकि वह पञ्च महाभूतों की सूक्ष्मगति कहलाई जाती है। इसी प्रकार जो सूक्ष्म शरीर है, इसमें जब सतोगुण अधिक प्रबल हो जाता है और जब सूक्ष्म गति इसकी प्राप्त होती है, तो यौगिक आत्माओं में रमण करने लगता है। हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना गया है, मानव की जितनी भी तमोगुण प्रवृत्तियाँ होती हैं, उतना ही मानव आवागमन में परिणित रहता है। जितनी भी तमोगुण, रजोगुण प्रवृत्तियाँ रहती हैं, उतना ही आवागमन निकट होता है। परन्तु जिसका सतोगुणी प्रवाह ऊँचा होता है, सतोगुण की उड़ान अधिक होती है, यौगिक उड़ान उसके साथ में होती है, तो कहा करते हैं कि उनका जो आत्मा है वह आन्तरिक में मोक्ष आत्माओं, देव आत्माओं के साथ वह रमण करता रहता है। ऐसे आत्मा पुनः संसार में आने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

अवतारवाद का सिद्धान्त

तो विचार यह, मुनिवरों! कुछ आत्मा ऐसे होते है जो मोक्ष के निकट होते है। परन्तु जब वह प्रकृति के इस चित्त को भ्रष्ट दृष्टिपात करते है, उस समय मोक्ष के निकट वाले आत्मा प्रायः संसार में जन्म ले लेते हैं और वे संसार में जन्म ले करके संसार में अपना कुछ कार्य करके पुनः उसी गति को प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि वह स्थूल जगत् का जो कर्म है, उन आत्माओं को लिपायमान नहीं कर सकता। उन आत्माओं के

लिपायमान न होने के कारण इस लोक में ऊँचे से ऊँचा कर्म करके पुनः वे आत्मा उसी गति को प्राप्त हो जाता हैं। क्योंकि उनको रजोगुण और तमोगुण कदापि नहीं व्यापता। इसलिए क्योंकि उनको स्वार्थ नहीं होता, वे निस्वार्थ होते हैं। उनको, मुनिवरों! अभिमान नहीं होता। उनके लिए पर्वत और राज शैय्या एक सी होती है। ऐसे महापुरूषों को संसार का कर्म नहीं व्यापता।

आत्मा की अबाध गति का मार्ग

मेरे प्यारे! देखो, महात्मा महर्षि भृगु ने कहा कि आत्मा का जो मार्ग है, वह एक ऐसा सूक्ष्म मार्ग हे जिसको जानने के लिए तुम्हें अनुभव की आवश्यकता है। प्रायः मानव यह उच्चारण करता रहता है कि आज मैं योग के मार्ग में जाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! महानन्द जी प्रायः प्रश्न करते रहते हैं। आज भी इनका प्रश्न है कि आत्मा की अबाध गति किस प्रकार होती है? हमने बहुत पुरातन काल में अपने प्यारे पुत्र के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था कि जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ता शब्दों के यानों का निर्माण करता है, इसी प्रकार, मुनिवरों! देखो, योगी, यौगिक क्षेत्र में, योगियों के समाज में विराजमान हो करके वह उस प्राण के द्वारा अव्याहत गति से अपने शब्दों को संसार में प्रसारण कर सकता है। मेरे प्यारे! नारदमुनि भी इस वाक्य को स्वीकार करते थे। वह वैदिक साहित्य हमें बारम्बार आज्ञा देता है।

आत्मा और आवरण

आज के वेद पाठ में आत्मा का बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था। आत्मा जब इन नाना प्रकार के आवरणों से दूर हो जाता है, यह जो आवरण हैं, जिनको मल विक्षेप आवरण कहते हैं। तीन प्रकार के विक्षेप हैं। जब ये आत्मा से दूर हो जाते हैं तब यह आत्मा का आवागमन, आत्मा की प्रतिभा, आत्मा की उड़ान ऊँची बन जाती है।

मेरे प्यारे! महानन्द जी का यह प्रश्न किया करते हैं कि हमारी यह जो आकाशवाणी है, यह मृत मण्डल में जाती है, पृथ्वी मण्डल पर जाती है, ऐसा महानन्द जी ने कहा है। परन्तु उनके प्रश्न का उत्तर आज के वेद के पठन पाठन में आ रहा था। बहुत पुरातन

काल में इन्होंने प्रश्न किया। वेद का ऋषि कह रहा है हे मुनिवरों! जिसका अन्तःकरण पवित्र होता है, इस प्रकृति का आवेश इस प्रकृति के जो मल विक्षेप आवरण हैं, यह उसको अधिक प्रभावित नहीं करते, तो उनका आत्मा, मुनिवरों! मृत लोक के शरीरों से आत्मा का उत्थान हो करके वह द्यौ लोक में, देवताओं की आत्मा में रमण करता है।

प्रकृति के मण्डल और मोक्ष प्राप्ति

मेरे प्यारे! ऋषिवर! क्योंकि प्रकृति के भी तीन प्रकार के मण्डल हैं। एक स्थूल है, यह जो जगत् है लोक लोकान्तरों वाला यह, बेटा! स्थूल जगत् है और इसी प्रकृति का एक सूक्ष्म मण्डल है। वह जो सूक्ष्म मण्डल है, वह भी प्रकृति का एक जगत् है और एक कारण क्षेत्र है। कारण भी प्रकृति का ही एक जगत् है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मोक्ष उसी का होता है, जो कारण से भी आत्मा उत्थान को प्राप्त होता है, प्रभु के आंगन में रमण करता है।

योगी का आहार

पुरातन काल में जब जिज्ञासु गुरु के द्वारा आत्मवेत्ता बनने के लिए जाता उस समय छह छः माह तक उन्हें वृक्षों का पंचांग दिया जाता था। आज प्रत्येक मानव योग की कल्पना करता है। ऐसा मुझे महानन्द जी ने प्रकट कराया। परन्तु योग की कल्पना साधारण प्राणी नहीं कर सकता। जब आत्मा के क्षेत्र में जाना विचारोगे उस समय तुम्हें यह प्रतीत होगा कि राष्ट्र में और योगी के लिए ऐसे ऐसे विचार और ऐसी ऐसी गति योगी की होती है कि साधारण मानव तो बुद्धि में विचार विनिमय भी नहीं कर पाता। मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे स्मरण है, जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा थे तो उस समय, बेटा! वे केवल दो वृक्षों का पंचांग देते थे, अन्न का अंकुर भी नहीं देते थे। मुनिवरों! वट वृक्ष का पंचांग का पान कराते। उससे, बेटा! क्या होता? कि मानव की तमोगुण की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती थी। जैसे अग्नि में अन्न को तपा देते हैं तो उसके अंकुर समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार, मुनिवरों! योगीजन, जब यौगिक व्यवहार इस प्रकार का करना चाहते हैं तो मुनिवरों! वह उन वस्तुओं का पान करें जिससे आत्मा

का उत्थान हो। राजोगुण, तमोगुण का विनाश हो जाए। मल विक्षेप आवरण रहे ही नहीं। जब मल विक्षेप आवरण नहीं रहेंगे तो मानव की अन्तरात्मा का उत्थान होता रहेगा।

प्राणों की गतियाँ

प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान्, देवदत्त, धनंजय, कूर्म और कृकल, ये इस मानव शरीर में दस प्राण कहलाए जाते हैं। इन दसों प्राणों को एकाग्र, एकत्रित करते हुए इन प्राणों की गति कण्ठ के ऊपर ले, हृदय के ऊपरले भाग में आ जाती है। ब्रह्मरन्ध्र से और कण्ठ के मध्य, नाभि और कण्ठ के मध्य तक प्राण की अव्याहत गति रहती है। और, वह जो प्राण की अव्याहत गति है उसका सम्बन्ध सूक्ष्म मण्डल से होता है। वह योगी उन महान् आत्माओं से जो उसके निकट हैं, उनसे वार्त्ता प्रकट करता है। उनसे सत्संग भी कर लेता है। उनसे विचार विनिमय भी करता है। वह योग की एक स्वाति गति कहलाई जाती है।

मुनिवरों! देखो, योग में भिन्न भिन्न प्रकार की गति मानी गई है। आज हमें उस योग की उन सिद्धियां में नहीं जाना चाहिए, जो प्रकृति में हमें तन्मय करा देती हैं, प्रकृति के क्षेत्र में महिमावादी बना देती हैं, महिमा करा देती हैं। सिद्धियों के क्षेत्र में जो योगी चला जाता है, उसका विनाश हो जाता है। उसकी आत्मा का हनन हो जाता है। बेटा! प्रायः वह इस संसार में प्रसिद्ध हो सकता है। परन्तु अपनी आत्मा के क्षेत्र में वह प्रसिद्ध नहीं होता। न योगियों के क्षेत्र में प्रसिद्ध होता है। तो विचार विनिमय यह कि मैं इस विषय को सूक्ष्म बनाने नहीं जाऊंगा।

योग मुद्रा में आकाशवाणी का रहस्य

विचार क्या? मेरे प्यारे! महानन्द जी ने जो प्रश्न किया था बहुत पुरातन काल में, यह जो हमारी आकाशवाणी है, यह मृत मण्डल में जाती है, तो वह कैसे? जब आत्मा का उत्थान होता है, यह क्यों होता है? क्योंकि हमारे बहुत से जन्म जन्मान्तरों के संस्कार, यौगिक संस्कार हमारे अन्तःकरण में विराजमान हैं। क्योंकि अन्तःकरण में संस्कार रहते

हैं और अन्तःकरण में एक जन्म का संस्कार नहीं, करोड़ो करोड़ो जन्मों के संस्कार रहते हैं। मुनिवरों! वे जो संस्कार हैं वे ही मानव के जन्म का कारण बनते हैं। यदि कोई भी संस्कार किसी आत्मा के साथ नहीं होगा तो संसार में मानव का आना असम्भव है। वह नहीं आएगा। इसी प्रकार हमारे बहुत से जन्मों के संस्कार इस अन्तःकरण में विराजमान हैं, चित्त में गति प्रारम्भ हो जाती है। जैसे परमात्मा के सन्निधान मात्र से यह प्रकृति नृत्य करने लगती है है, उसी प्रकार आत्मा के सन्निधान मात्र से चित्त अपनी गति प्रारम्भ कर देता है। तो वे चित्त में नाना प्रकार के संस्कार हैं उनका उद्बुद्ध हो जाना असम्भव नहीं। परन्तु रहा यह कि साधारण प्राणी अथवा प्रत्येक प्राणी में से जिस पर अनुपम कृपा होती है, अथवा उसको प्रायः संसार के लोग संसार से दूर कह सकते हैं। परन्तु उसका जो अन्तरात्मा है अथवा जो यौगिक क्षेत्र के लोग हैं, वे उसको संसार दे दूर नहीं उच्चारण नहीं कर सकते।

शब्द विज्ञान

मैनें बहुत पुरातन काल में इसका प्रयत्न किया। परन्तु आज तो वेद का पाठ आ गया। हमारे यहाँ वेदों के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार के विचार विनिमय रहते हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक्य कहा। वही आज के वेदपाठ में भी आ रहा था। हमारे यहाँ एक समय, महर्षि भारद्वाज, महर्षि दालभ्य और शिलभ जी, एक समय तीनों ऋषियों ने विराजमान हो करके यह विचाराकि हम दृष्टिपात करें कि यह जो अन्तरिक्ष है, यह वाणी का क्षेत्र है। यह जो वाणी है, ये जो शब्द हैं, यह मानव से उत्पन्न हो करके इसका जो क्षेत्र है, वह अन्तरिक्ष माना गया है। हम यह जानें कि इस अन्तरिक्ष में कैसे शब्द है? मुनिवरों! विचारना यह है कि कुछ तो ऐसे शब्द होते हैं जिन शब्दों की प्रतीती को वायु छिन्न भिन्न कर देती है, स्वाभाविक प्रकृति के क्षेत्र में नष्ट हो जाते हैं। परन्तु शब्द का जो मौलिक गुण है, जैसे शब्द उच्चारण किया गया और एक संस्कृत का शब्द है स्वाकृति, इसी प्रकार वेदवाणी का यस्य अस्मत् है इसी प्रकार एक देवनागरी का शब्द यस्वास्वाकृति, जैसे हमारे यहाँ देवनागरी का शब्द है, यस्वा स्वाकृति का स्वाकृति,

(जिसका) अभिप्रायः देवनागरी में आओ, विराजो तो ये जो शब्द हैं, इन शब्दों की जो प्रतिभा है, इसकी जो प्रतिष्ठा है, वह अन्तरिक्ष में मानी गई है। हमारे ऋषि मुनियों ने यह परम्परा से स्वीकार किया हैं। इनकी प्रतिष्ठा अन्तरिक्ष में रहती है। ये अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित हो जाते है।

महर्षि दालभ्य और प्रवाहण, शिलभ जी ने और महर्षि भारद्वाज इन चारों ऋषियों ने विराजमान हो करके एक यन्त्र का निर्माण किया था। उस यन्त्र को शब्दकेति भामकेतु यन्त्र कहा जाता था, जो वेदों में आता है। परन्तु उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि यन्त्र में इस प्रकार पञ्चमहाभूतों से उन कणों को एकत्रित किया, कणों का समन्वय करते हुए उन शब्दों में यह विशेषता थी कि उनका चित्र आता था। अब से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पूर्व या पाँच सौ वर्ष पूर्व मानव का शब्द किस प्रकार का था अथवा कैसे उनके विचार विनिमय होते थे? बेटा! विचार यह कि महर्षि भारद्वाज मुनि ने अपने 100 वर्ष पूर्व उनके पुरखा अथवा वंश समाप्त हो गए थे, और वह दार्शनिक समाज में विचार विनिमय करते थे तो उनके चित्र अथवा और भी नाना ऋषि मुनियों के शब्द उस यन्त्र में प्रकाशित हो जाते थे, और वह जो यन्त्र था उसमें ऋषि मुनियों के चित्र भी आते थे। यह तो प्रायः हमारा वैदिक सिद्धांत स्वीकार करता है। जैसा कि आज के वेदपाठ में आ रहा था।

प्रवचनों में हिन्दी भाषा होने का रहस्य

आज का वेद का ऋषि कह रहा है कि प्रत्येक शब्द के साथ, मुनिवरों! मानव का चित्र जाता है। क्योंकि सूक्ष्म मण्डल में इस अन्तरिक्ष में शब्द का कोई तो आकार स्वीकार करते हैं, जभी तो वह अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित होता है। तो विचार विनिमय यह कि उस समय हमारे यहाँ प्रत्येक भाषा अंकुर रूपों में अन्तरिक्ष में प्रायः रहती है। अब मुनिवरों! देखो, जो विशेष आत्मा इस संसार में आने वाला होता है, वह उस भाषा को प्रायः अपना लेता है। (वह भाषा) अन्तरिक्ष से आनी प्रारम्भ हो जाती है, जिस भाषा का लोक में प्रचलन होता है और जो वैदिक विद्या से सम्बन्धित हो। यह भी नहीं, चाहे वह

अप्रति ही नहीं, संस्कृत से सम्बन्धित हो, प्रायः उस भाषा को अपनाने के लिए वह तत्पर हो जाता हैं। प्रत्येक शब्द, प्रत्येक काल में रहते हैं। मैंने पुरातन काल में यह कहा था कि सृष्टि का प्रारम्भ, बेटा! आज नहीं हुआ है, आज ही कलियुग नहीं है, आज ही द्वापर नहीं है, त्रेता भी नहीं, सतोयुग भी नहीं, परम्परा से इनका परिवर्तन होता रहता है। (शेष उपसंहारवाची प्रवचन अप्राप्त है) लूथरा अकादमी, जम्मू 14 अक्तूबर, 1972

३ 11 11 1972 पुष्प 25 परमानन्द की प्राप्ति

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन किया जाता है।

आज का हमारा प्रारम्भ का वेदमन्त्र हमें कुछ वार्त्ता प्रकट करा रहा था। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस ज्ञान का प्रतिपादन होता रहता है जिस ज्ञान और विज्ञान का किसी काल में उसका वृद्धपन प्रायः नहीं आता। सदैव उसमें नवीनता बनी रहती है। क्योंकि वेदों का ज्ञान सदैव नवीनता में विचरण करता रहता है। उसमें किसी भी काल में वृद्धपन नहीं आता। वृद्धपन इसलिए नहीं आता कि वेदों का जो ज्ञान है अथवा विज्ञान है वे परमपिता परमात्मा की आभा है। मुनिवरों! वृद्धपन उन वस्तुओं में आता है जो बनी हुई होती हैं। जिन वस्तुओं का निर्माण होता है। और जिस वस्तु का निर्माण नहीं होता उसमें वृद्धपन भी कदापि नहीं आता। जैसे बेटा! मानव के शरीर में वृद्धपन आता है। जरा आ जाता है परन्तु उस शरीर का निर्माण हुआ है, माता के गर्भ स्थल में हुआ। पञ्च भूतों के भौतिक परमगुणों को मिलान कराने वाला वेत्ता कोई है। परन्तु उसमें बाल्यकाल आता है, वृद्ध पन आता है। एक समय वह आता है कि उसका रूपान्तर हो जाता है। परिणाम यह कि संसार में वेदों का जो ज्ञान है जैसे परमपिता परमात्मा की प्रतिभा है, परमात्मा की जो व्यापकता है सदैव उसी रूप में बनी रहती है जैसे आज से करोड़ों वर्षों पूर्व थी, जो अरबों वर्षों पूर्व थी। वह ऐसा ही बना रहता है क्योंकि वे

परमपिता परमात्मा मानो सर्वज्ञ है, वह एक चेतना है। उस चेतना का कदापि न तो निर्माण हुआ है और न होगा। वह सदा एक रस बना रहता है। उसमें वृद्धपन नहीं होता। जब उसमें वृद्धपन नहीं आता तो उसका जो ज्ञान है, विज्ञान है उसमें भी वृद्धपन नहीं आता। वह भी सदैव नवीन का नवीन ही बना रहता है। क्योंकि यह परमपिता परमात्मा की जो रचना है। परमपिता परमात्मा नवीनता में सदैव रमण करता रहता है, सदैव नवीन रहती है उसकी पवित्रता विद्या। तो हमें उसका अनुकरण करना चाहिए। हमें उसके अनुकूल अपने जीवन को न्यौछावर करते हुए इस संसार सागर से पार होना चाहिए।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं अधिक विवेचना इस सम्बन्ध में नहीं देने आया हूँ। आज! मैं बेटा! उन वाक्यों को प्रकट कराने आ पहुंचा हूँ जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव क्या आहार करते थे? उनका क्या व्यवहार रहता था? अपने शिष्यगणों को किस प्रकार की विद्या का अध्ययन कराते थे। वे यौगिक प्रक्रिया में ले जाते थे। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज प्रायः यह मानव अनुभव करता रहता है। मैंने अपने वत्स के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था कि संसार में मानव यौगिक क्षेत्र में जाने का प्रयास करता है। मुनिवरों! सबसे प्रथम उसके मन पर उसका अधिकार होना चाहिए। मन क्या है? बेटा! मन प्रकृति का एक सूक्ष्म तत्त्व है। मन प्रवृत्तियों का विभाजन करने वाला है। मुनिवरों! वह जो मन है वह पृथ्वी में भी रहता है और भी नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में और मानव के जीवन का साथ भी वह मनीराम बना रहता है। तो विचार यह है कि आज मन की प्रक्रिया को हमें जानना है। और मन की जो प्रक्रिया होती है वह मनुष्यों के आहारों के ऊपर होती है। जैसा आहार होता है, वैसी ही मन की प्रक्रिया होती है। तो आज हमें इस अन्न को पवित्र बनाना है।

अन्न भी बेटा! कई प्रकार का होता है। 1. स्थूल होता हैं 2. सूक्ष्म होता है। और 3. कारण भी अन्न माना गया है। जैसे शरीर तीन प्रकार के होते हैं उसी प्रकार उसका अन्न भी तीन प्रकार का होता है। तो आज मुनिवरों! मैं तुम्हें यह वाक्य प्रकट कराने के लिए अधिक विवेचना में नहीं जाऊंगा। मैं इन वाक्यों को गम्भीरता में ले जाना नहीं

चाहता हूँ। तो विचार यह कि यह तीन तीन प्रकार की प्रक्रिया बना करती है अन्न के द्वारा। हमारे ऋषि मुनियों ने आचार्यों ने जिन्होंने बेटा! यौगिक क्षेत्र में जाने का प्रयास किया, यौगिक क्षेत्र में जिन्होंने बहुत कुछ अनुसन्धान किया तो उन्होंने एक वाक्य कहा कि अन्न बहुत पवित्र होना चाहिए। अन्न पवित्र कैसे बनेगा? इस मन का निर्माण तो अन्न के द्वारा होता है तो अन्न को पवित्र बनाना है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! यदि मानव को शरीर में विचरण करते हुए स्वतन्त्र रहना है तो मुनिवरों! हमें उस अन्न को पान करना होगा जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं होता। मानो जब अधिकार नहीं होगा तो मुनिवरों! यह मन भी स्वतन्त्र बन सकता है और जब हम किसी के अधिकार को लेना पसन्द करेंगे, मानो आज हम किसी के आहार को पान करेंगे तो हमें उन प्राणियों के गुण गान गाना भी स्वाभाविक ही बन जाता है। बेटा! तो मेरे प्यारे! विचार यह कि हमें उस अन्न को पान करना है जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं होता। क्योंकि तुम्हें बेटा! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का जीवन स्मरण होगा, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज विद्यालय से विदा होकर पत्नियों से आज्ञा प्राप्त करते हुए जब भयंकर बन में पहुंचे तो उन्होंने समस्त (सीला हिन्दी शिल संस्कृत, खेत में गिरे शेष अन्न के दानों को बीनकर निर्वाह करने की मुनिवृत्ति) अन्न को एकत्रित किया। और उस अन्न को पान करते थे। क्योंकि उस अन्न से मन बनता था। क्योंकि उस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं रहता था।

मेरे प्यारे! वह समय मुझे स्मरण आ रहा है जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव चरणों में ओत प्रोत कराते। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि आज मुझे उस अन्न को पान कराना है जिस अन्न से तुम्हारा मन स्वच्छ बनेगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मार्ग (वन से) औषधियां एकत्रित करते रहते। नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करके उसका पान बनाकर उस अन्न को पान करते थे तो उस अन्न पर भी किसी मानव का अधिकार नहीं होता था। मुनिवरों! इस प्रकार मन पवित्र बन जाता है और मन के पवित्र बन जाने से बुद्धि स्वच्छ बन जाती है। मुनिवरों! देखो, बुद्धि में जो मेधा, ऋतम्भरा प्रज्ञा वाली बुद्धि की जो तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं वे तरंगें स्वच्छ रूपों में दृष्टिपात करती

रहती हैं। तो विचार विनिमय यह कि सबसे प्रथम हमारा अन्न में जो दोष है उसे हमें दूर करना है, आज जो भी मानव योग को पान करना चाहता है।
मेरे प्यारे! ऋषिवर! तुम्हें स्मरण होगा कि योगी जन निद्रा पर विजय कर लेते हैं, निद्रा को जीत लेते हैं, विजयी बन जाते हैं, क्योंकि निद्रा क्या है? बेटा! निद्रा वह वस्तु है मानो प्रकृति में जो जड़ता है उसका (निद्रा) जो शरीर है वह जड़ तत्त्वों से बना हुआ है। मानो उसमें जड़ता का स्वभाव बना हुआ है। वह जो स्वभाव है जब तक हम उस जड़ता को नहीं जानेंगे। उस जड़ता की उपरामता तक नहीं पहुंचेंगे तो तक हम निद्रा को विजय नहीं कर सकते। बेटा! निद्रा उस काल में विजय होती है जब हम जड़ता के कारण को जान लेते हैं। आलस्य और प्रमाद के स्वरूप को हम भिन्न भिन्न रूपों में दृष्टिपात करने लगते हैं। मानो वह जो प्रकृति में जड़ता बनी हुई है आज तुम्हें यह तो प्रतीत है कि सबसे प्रथम प्रकृति आती है। उसके पश्चात् आत्मा। क्योंकि हमारे यहाँ माना गया है तथा ऋषि मुनियों का सिद्धांत यह स्वीकार करता है कि प्रकृति सत है और जीव आत्मा सत चित्त (ज्ञानवान) है वह सत और चित्त भी है इसी प्रकार चितं भ्रवे कृत अवृद्धि ऐसा ऋषि जन कहते हैं। कि जो प्रकृति सत में दृष्टिपात आ रही है आज जो यौगिक आत्मा इस प्रकृति के ऊपर विश्राम कर लेता है, प्रकृति से निरवयव बन जाता है। वह क्योंकि निद्रा का जो स्वरूप है वह केवल जड़ता में बना हुआ रहता है। चेतना में कदापि नहीं होता। चेतना तो एक रस बनी रहती है। इसीलिए आत्मा में चेतना है, प्रकृति में जड़ता है। मुनिवरों! जब जड़ता के स्वरूप को यह आत्मा जान लेता है। तो मुनिवरों! आत्मा मानो अपने स्वरूप चेतना को जान लेता है। तो मेरे प्यारे! उसने उसको निद्रा कदापि प्रभावित नहीं कर सकती। क्योंकि प्रकृति के कारण को जान लिया है। उस मार्ग से हो करके जब प्रकृति के स्वरूप को नहीं जानता तो प्रकृति की उसे स्मरण शक्ति भी मानो अर्न्तध्यान होने लगती है। वह जो प्रकृति की स्मरण शक्ति है मानो उसकी जिसके कारण जो रचना होती है वह रचना भी गर्भ में लुप्त हो जाती है परन्तु उसकी स्मरण शक्ति तो हो जाती है। आत्मा का ज्ञान और प्रयत्न उसका स्वभाव बना रहता है। उसके कारण मुनिवरों! वह प्रक्रिया बनी रहती है। इसीलिए आज बेटा!

मैं उस यौगिक क्षेत्र में अधिक जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय यह कि यौगिक आत्मा निद्रा को विजय कर लेते हैं। मुझे स्मरण है एक समय बेटा! महर्षि दालभ्य मुनि महाराज ने 84 वर्ष तक निद्रा का आहार नहीं किया। महर्षि व्यास मुनि ने लगभग 101 वर्ष तक निद्रा का आहार नहीं किया। क्योंकि वह वेदान्त में बहुत पारायण थे। उसी प्रकार मुनिवरों! महर्षि पंतजलि मुनि महाराज ने भी लगभग 85 वर्ष तक निद्रा पर विजय पाने का प्रयास किया।

विचारणीय यह है कि मुनिवरों! कि योग है क्या? योग उसे कहा जाता है जो मानव धर्म के दस लक्षणों पर अपना अधिपथ्य कर लेता है। उसके ऊपर अनुसरण करता हुआ अपने जीवन को ओ३म् रूपी धागे में उस सूत्र में पिरो देता है जो कि चेतना है। जड़ता को त्याग करके मुनिवरों! वह चेतना का अनुभव करता है। तो मुनिवरों! देखो, वह योगी निद्रा विजयी बन जाता है वह राकेश (गुडाकेश) बन जाता है। तो विचार विनिमय यह कि आज हम योग के मार्ग को प्राप्त करना चाहते हैं। मेरे प्यारे! ऋषिवर! सबसे प्रथम अन्न की पवित्रता होनी चाहिए। अब यह जो स्थूल अन्न है नाना प्रकार की वनस्पतियों का अन्न इसी मानव शरीर में इस स्थूल अन्न को भी मानव त्याग देता है वह केवल वायु के अग्नि के तत्त्वों में जो अन्न इत्यादि रमण कर रहा है परमाणु रूप से, उन परमाणुओं को वह अपने में ग्रहण कर लेता है। क्योंकि उसको केवल उसकी अनुभूति होने लगती है। जब प्रतिति होने लगती है तो उसको वह अपने में ग्रहण करने लगता है। जब ग्रहण करता है तो मुनिवरों! उसी से वह तृप्त रहता है। अहा! देखो, नाना प्रकार के फल हैं वृक्षों के, परन्तु उनमें जो पोषक तत्त्व होता है योगी जन जब मन के ऊपर संयम कर लेता है, बुद्धि और मन का दोनों का समन्वय होने पर उसका आहार भी सूक्ष्म बन जाता है। कैसा आहार बन जाता है? वह उन फलों के रसों का स्वादन करता है। संकल्प मात्र से वह तृप्त होने लगता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे स्मरण है जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यहाँ नाना प्रकार के पंचांगों को पान कराया। क्योंकि योगी कैसे वैसे नहीं बनता।

मानो यहाँ कोई यह विचार करने लगे इस संसार में जैसा मुझे महानन्द जी ने प्रकट

कराया कि संसार में दूसरों के अधिपथ्य को एकत्रित करने वाला द्रव्य पान करने वाला योगी बन जाए तो बेटा! यह असम्भव है। मेरे प्यारे! योगी तो उस काल में बनता है जब वह अपने अधिकार को अपने में ग्रहण करने लगता है। अपना अधिकार भी क्या है? मुनिवरों! देखो, जो नाना प्रकार के वृक्ष हैं, इन वृक्षों का जो रसास्वादन है उसको पान करने की प्रक्रिया बनी रहती है परन्तु सबसे प्रथम रसना आदि इन्द्रियों को विजय करना है। मेरे प्यारे! जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने सबसे प्रथम (1) जाल का पंचांग बनाया। जाल एक वृक्ष होता है जब उसका पंचांग बनाया, सबसे प्रथम उसका पान किया तो गुरुदेव से कहा भगवन! यह तो सुन्दर प्रतीत नहीं होता। उस समय पूज्यपाद गुरुदेव मौन हो गए उन्होंने कोई वाक्य अथवा उत्तर हमें नहीं दिया। न देने का परिणाम यह हुआ कि हम भी मौन हो गए। परन्तु मौन हो जाने के पश्चात् उसी जाल के पंचांग को लगभग एक वर्ष तक पान करते रहे। पान करने के पश्चात् इस प्रकृति पर उसका परिणाम यह हुआ कि यह जो नाना प्रकार की काम करने की वासना थी मानो जो मन चंचल रहता था, मन चलायमान रहता था तो मुनिवरों! उस मन में स्थिरता आ गई, बुद्धि में स्थिरता आ गई। मन में जब स्थिरता आ गई, मुनिवरों! देखो, जब मन अकृत (सांसारिक कामनाओं से रहित) बन गया उसके पश्चात् मुनिवरों! एक प्रभु का चिन्तन रह गया। मानो प्रभु को अपने में स्वीकार करने लगे। (2) मुनिवरों! उन्होंने लगभग एक वर्ष तक पीपल के पंचांग को। (3) एक वर्ष तक बट के पंचांग को, (4) एक वर्ष तक बेल के पंचांग को, (5) एक वर्ष तक स्वाति एक वृक्ष होता है उसके पंचांग को। (6) एक वर्ष तक सुषा के पंचांग को। इस प्रकार लगभग बारह वर्ष तक, बारह वृक्षों के पंचांगों को पान कराने के पश्चात् मन में पूर्ण स्थिरता आ गई। स्थिरता आ जाने का परिणाम यह हुआ कि जीवन क्रियात्मक बन गया। जीवन में तपस्या का पूर्णतम बल आ गया। परिणाम यह हुआ मुनिवरों! आत्मा बलवान बन गया। बलवान बन जाने के कारण ये जो नाना प्रकार के परमाणु वायु मण्डल में भ्रमण करते हैं तो मुनिवरों! देखो, उस समय बुद्धि मेघावी बन गई। मेघावी के स्थान में जब बुद्धि पूर्णतया मेघावी बन गई, तो मेघावी क्षेत्र में यह

हुआ कि यह जो नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में जाना यातायात का होना, मानो प्रकृति के सूक्ष्म स्वरूप को जानना, जो करोड़ों जन्मों के संस्कार हमारे चित्त में विराजमान होते हैं, बेटा! वे जो चित्त के संस्कार थे उनमें उदबुद्धता आने लगी। उनमें जब उदबुद्धता आने लगी तो वे जो विज्ञान के संस्कार थे, वह ऊर्ध्वगति को आने लगे, तो बेटा! नाना प्रकार के यन्त्रों में गति आने लगी। यन्त्र का निर्माण कैसे होता है? क्योंकि बुद्धि और मेघावी क्षेत्र तक ही प्रकृति का विज्ञान रहता है। प्रकृति की धारा रहती है, प्रकृति का स्वरूप साक्षात्कार हो जाता है। मानो चन्द्रमा में कैसे जाना है? मुनिवरों! चन्द्रमा की किरणों के साथ में योगी कैसे ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है? मेरे प्यारे! चन्द्रमा की कान्ति में कैसे योगी रमण करता है? इस प्रकार की गति और उनमें नाना प्रकार के परमाणुओं का यौगिक मिलान, नाना प्रकार के यन्त्र वरुणास्त्र, आग्नेय अस्त्र, स्वाति आदि नाना प्रकार के अस्त्रों शस्त्रों का निर्माण उनकी प्रक्रिया उस योगी को साक्षात्कार हो जाती है। बेटा! परिणाम यह कि यह जो मानव कहीं चन्द्रमा की उड़ान उड़ता है, कहीं सूर्य की उड़ाने उड़ने लगता है, कहीं यहाँ मंगल की उड़ान उड़ने लगता है, प्रत्येक लोक लोकान्तरोंकी प्रतीति होने लगती है। कितने लोक स्थूल रूप में हैं जिनमें पार्थिव तत्त्व हैं? कितने लोक है जो मानो अग्नेय तत्त्व प्रधान हैं? कितने लोक हैं जो जल तत्त्व प्रधान हैं? कितने लोक हैं जो वायु तत्त्व प्रधान हैं? ये पञ्च महा भौतिक जो परमाणु हैं इन्हीं के अन्तर्गत सारा प्रकृतिवाद, सारा प्रपञ्च जो हमें दृष्टिपात आने लगता है। बेटा! वह स्पष्टीकरण तो अच्छी प्रकार नहीं किया जाता पूर्णता से, परन्तु उसका स्वरूप मानव के समीप आ जाता है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! विचार विनिमय यह कि आज जब हम उसके पश्चात् बुद्धि का मेघावी क्षेत्र समाप्त हो जाता है, उसके पश्चात् और भी महान तपस्या जब परणित होते हैं तो मुनिवरों! ऋतम्भरा आती है, ऋतम्भरा उस दशा को कहते हैं जब मुनिवरों! योगी इस प्रकृति के ऊपर विश्राम करने लगता है। मुनिवरों! ऋतम्भरा और मेधा और प्रज्ञा बुद्धि, ऋतम्भरा के पश्चात् प्रज्ञा में चला जाता है, प्रज्ञा इसे कहते हैं। बेटा! जहाँ एक ब्रह्म ही दृष्टिपात आता है मानो जो प्रपञ्च था जो मन की चेतना अथवा मन की जो

आकृति थी, वह प्रकृति में मानो रमण कर रही थी। मुनिवरों! देखो, ऋतम्भरा में जाते ही मन की जो प्रक्रिया थी। जो विभाजनवाद हो रहा था वह प्रकृति में रमण करने लगा, वह प्रकृति के गर्भ में परणित होने लगा। जब ऋतम्भरा को त्याग करके प्रज्ञा के क्षेत्र में जाता है उस समय स्थूल का सम्बन्ध मानो सूक्ष्म का सम्बन्ध दोनों सम्बन्धों का विच्छेद हो करके केवल मुनिवरों! एक लिंगमय रह जाता है जिसको कारण कहा जाता है। कारण में जाने के पश्चात् मन का जब सम्बन्ध नहीं रहता तो प्रकृति के तत्त्वों की स्मरण शक्ति भी नहीं रहती। उसका भी विच्छेद हो जाता है। तो परिणाम यह कि आज हम मुनिवरों! उस क्षेत्र में उस उड़ान को उड़ने वाले बनें जिस उड़ान से मानव महान और पवित्र बन सकता है। योगी कहते किसे हैं? योगी उसी को कहा जाता है जिसकी उड़ान प्रभु के समीप जाने की हो। वह समीप में विराजमान हो जाए। योगी ही मुनिवरों! प्रभु के समीप जा सकता है। यह जो संसार का प्राणीमात्र है यह जो नाना प्रकार के अस्वतों (सांसारिक कामनाओं) में एक दूसरे के वाद और विवाद में रमण करता रहता है, योग का उनसे सम्बन्ध नहीं होता। योग तो निर्विवाद है, वह निर्द्वन्द्व है, वह स्वतन्त्र है। आज हमें उस स्वतन्त्रता पर विचार विनिमय करना चाहिए। जिसके ऊपर वास्तव में हमारा अधिकार हो क्योंकि हमारा तो अधिकार प्रभु में रहना चाहिए और हमारे ऊपर प्रभु का अधिकार रहना चाहिए। ऐसी परिस्थिति को बेटा! योग कहा जाता है, उसी को योगी कहते हैं। परिणाम यह कि संसार में जो मानव का जन्म होता है केवल योगी बनने के लिए प्रभु ने उसको जन्म दिया है। यहाँ संसार की नाना प्रकार की वासना के लिए यह जीवन नहीं होता। यह जो मानव जीवन है यह प्राणों को मिलान करने के लिए प्रवृत्तियों का निरोध करने के लिए होता है। और प्रवृत्तियों का मुनिवरों! निरोध उस काल में होता है जब हमारा अन्न पवित्र होगा, आहार पवित्र होगा। इन आहारों के पवित्र होने पर ही मुनिवरों! हमारा योग सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं होगा। क्योंकि हम प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को साकल्य बनाना चाहते हैं। परन्तु वह साकल्य उसी रूप, उसी काल में बन सकता है जबकि हमारा जो अन्न का स्रोत है वह पवित्र होगा।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मानव का अन्न का स्रोत क्या है? साकल्य को एकत्रित करने के

लिए हमारा आहार है। उस आहार के ऊपर हमारा क्रियात्मक जीवन होना चाहिए। हमारे ऋषि मुनियों ने बेटा! बहुत ही प्रयत्न किया। मुनिवरों! सबसे प्रथम मानव आहार से मन की प्रवृत्तियों पर चित्त में निर्भय हो जाना चाहिए। निर्भय कौन होता है? जिसका अन्न का आहार पवित्र होगा। जिसका आहार भयाक्रांत होगा वह मानव कदापि भी निर्भय नहीं बन सकता संसार में। मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे किसी काल में प्रकट कराते रहते हैं वह क्या? कि जो मानव भय से पूर्ण अन्न का आहार करेगा, मानो दूसरे के रक्त को पान करने वाला प्राणी होगा, वह योग की वार्त्ता प्रकट करे तो वह व्यर्थ की वार्त्ता प्रकट कर रहा है। विचार यह कि वह योग के अंगों को नहीं जानता।

सबसे प्रथम मानव को अहिंसावादी बनना है। क्योंकि अहिंसावादी बनने का परिणाम यह होता है कि हमें संसार में किसी प्राणी का भय न रहे। अहिंसावादी वही प्राणी होता है जो आहार को स्वच्छ पवित्र पान करेगा। जिस पर किसी का अधिकार न होगा। मुनिवरों! देखो,! वह समय मुझे स्मरण है कि एक समय बेटा! जब भगवान मनु के वंशज में स्वताम नाम के राजा हुए थे। वे राजा यौगिक प्रक्रिया वाले थे। परन्तु वे राजा तो इसलिए बने कि उनके वंशज की परम्परा थी। अहा! उस परम्परा को लाने के लिए, समाज को ऊँची शिक्षा देने के लिए वे राजा बने। परन्तु विचार यह हुआ कि आज हमारे क्या क्या पदार्थ निर्मम होने चाहिएं? तो राजा ने यह नियम बनाया। हमारे पूर्वज मनु जी हुए थे। ये 3500 पीढ़ी में उत्पन्न हुए थे, उन्होंने यह नियम बनाया कि वर्ण व्यवस्था ऊँची होनी चाहिए। आश्रम ऊँचे होने चाहिएं जो हमारे पूर्वजों ने निर्णीत किए हैं। उसी के आधार पर उन्होंने निर्णय दिया मेरे राष्ट्र में किसी भी प्राणी का हनन नहीं होना चाहिए चाहे वह जलों में रहने वाला हो, चाहे पृथ्वी पर विचरण करने वाला हो। मेरा राष्ट्र सात्विक रहना चाहिए। उस समय राजा के नियमों को पालन करने के लिए प्रजा तत्पर हो गई। क्योंकि ब्राह्मणों का समय था वे ब्राह्मण कैसे थे? वे अहिंसा परमोधर्मी थे। उनके आचार्य, पुरोहित इत्यादि इसी प्रकार के थे। राजा के यहाँ नियम बन गया। उससे पूर्व भी इसी प्रकार का नियम था।

परन्तु उन्होंने और भी निर्धारित कर दिया। गऊ इत्यादियों को कोई भी नष्ट नहीं कर

सकता था जल में विचरण करने वाला प्राणी भी मानो जितना भी प्राणीमात्र है संसार का इस प्राणीमात्र का एक दूसरे प्राणी से बड़ी सहकारिता (सम्बन्ध) है, बड़ा एक नियमबद्ध रहता है। जैसे नाना प्रकार के लोक लोकान्तर हैं प्रभु के राष्ट्र में। परन्तु प्रत्येक लोक लोकान्तरों से वास्तव में किसी न किसी रूप में एक दूसरे की सहकारिता (सम्बन्ध) से कटिबद्ध रहता है। एक दूसरे की प्रक्रिया में प्रत्येक लोक लोकान्तर रमण करता रहता है। प्रभु के राष्ट्र में, मण्डल में कितने लोक लोकान्तर हैं परन्तु एक दूसरा लोक लोकान्तर एक दूसरे का सहायक बना हुआ है। इसी प्रकार पृथ्वी पर जितना भी प्राणीमात्र है वह एक दूसरे के जीवन में कटिबद्ध रहता है। इसीलिए उसको हनन करना एक दूसरे प्राणी को कोई अधिकार नहीं होता। अधिकार इसलिए भी नहीं होता जब प्राणी एक दूसरे प्राणी को जीवन नहीं दे सकता उनसे लाभप्रद बन सकता है परन्तु जीवन नहीं दे सकता। जब जीवन नहीं दे सकता तो हनन करने का भी उसको अधिकार नहीं होता। अतः राजा ने यह नियम बनाया जब हम किसी को प्राण नहीं दे सकते तो किसी के प्राणों का हनन करना हमारा अधिकार नहीं होता। जब राजा ने यह नियम बना लिया। किसी प्रकार का अपराध राजा के राष्ट्र में नहीं होना चाहिए। संग्रह करने वाले वैश्य नहीं होने चाहिएं। राजा ने यह घोषणायुक्त कहा, हे प्रजाओ! मैं जो तुम्हारा राजा बना हुआ हूँ, मैं भी अनधिकार चेष्टा कर रहा हूँ। क्योंकि मुझे भी कोई अधिकार नहीं है तुम पर शासन करने का। मैं भी मनुष्य हूँ। तुम भी मानव हो। परन्तु सब प्रभु के पुत्र हैं, प्रभु की आत्मा हैं। आज हमें एक दूसरे पर भी शासन करने का अधिकार नहीं। यह अधिकार यह शासन उसी काल में होता है जब प्रजा में अनियमितता आजाती है अपने कर्त्तव्यवाद और अपनी अहिंसा परमो धर्मः की परम्परा को हम त्याग देते हैं। तो शासक की आवश्यकता बन ही जाती है संसार में। तो राजा ने जब यह घोषणा की तो प्रजा ऐसी हो गई जैसे देवता होती है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उस काल की वार्त्ता प्रकट कराते रहते थे। मुनिवरों! देखो,! वह साहित्य स्मरण आता है।

साहित्यों में भी हम श्रवण करते रहे हैं कि कोई भी मानव स्वतन्त्र हो करके विचरण करने वाला जब समाज में होता है तो बेटा! वह प्रभु का साम्राज्य है, वह प्रभु का राष्ट्र

है। इसी प्रकार मुनिवरों! जो अहिंसा परमो धर्मः का पालन करता है। मुझे स्मरण है जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते थे तो मृगराज उनके चरणों को छूते रहते थे। जब मृगराज उनके चरणों को छूते तो हम भी कहा करते कि प्रभु! यह तो मानव का भक्षण कर जाते हैं। उन्होंने कहा वत्स! हमारे जो विचार हैं मानव का जो विचार है अहिंसा परमो धर्मः है ऐसा आहार, ऐसा विचार जब ऊँचा बन जाता है तो हिंसक प्राणी भी अपनी हिंसा को त्याग करके अहिंसा परमो धर्मः का पालन करके वह भी चरणों में ओत प्रोत हो जाते हैं।

तो परिणाम यह कि यह विचार अन्न से उत्पन्न होता है। सात्विक अन्न के मन को शोधन किया जाता है। सबसे प्रथम मानव को अन्न को ऊँचा बनाना है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे स्मरण आता रहता है कि आज तुम्हें यह प्रतीत होगा। मैंने कई कालों में यह वाक्य प्रकट किया कि भगवान राम जब माता के गर्भ स्थल में थे तो माता का विचार यह रहता था कि यह जो रघुवंश समाप्त हुआ है, यह आलस्य और प्रमाद में हुआ है। इसलिए मुझे उस अन्न को पान करना है जिस पर किसी का कोई अधिकार न हो। तो माता कौशल्या स्वयं कला कौशल करती थी और स्वयं कला कौशल करके उसके बदले जो अन्न आता उसको पान करती। जब राजा ने कहा देवी! यह तुम क्या कर रही हो? उन्होंने कहा मैं अपने गर्भाशय को पतित करना नहीं चाहती। मैं केवल अपने गर्भाशय को ऊँचा बनाना चाहती हूँ। क्योंकि मेरे गर्भस्थल से एक महान ब्रह्मचारी और योगी बालक का जन्म होना चाहिए। मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है भगवान राम का जीवन मानो इनके द्वारा राष्ट्र की कोई वस्तु आनन्ददाता नहीं, और वन जाने का कोई शोक नहीं। अरे, उनके द्वारा योग आएगा अथवा योग मानव मानव का भक्षण करने वालों के द्वारा आएगा? मेरे प्यारे! आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय यह कि आज हम उस अन्न को पान करने वाले बनें। योग का जो प्रारम्भ होता है वह आहार से सम्बन्धित है। अतःआहार और मन दोनों का समन्वय कर देना चाहिए। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं बेटा! अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय केवल यह है कि आज हम अपने जीवन को यौगिक बनाना चाहते हैं,

योग के आनन्द में ले जाना चाहते हैं। मेरे प्यारे! ऋषिवर! मानव को गुडाकेश बनना है। निद्रा पर विजय प्राप्त करना है। परन्तु वह उस काल में बनती है जब कि हमारा जीवन ऊर्ध्व गति को प्राप्त उस काल में होगा जब कि हमारा अन्न का आहार पवित्र होगा। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उस वाक्य को प्रकट करने आए हैं जहाँ हम अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहते हैं। उस स्वतंत्रता में रमण करना चाहते हैं जहाँ हमारे ऊपर किसी का साम्राज्य नहीं होना चाहिए। वह कौन सी गति है? वह गति है, हमारा जब आहार पवित्र बन जाएगा तो हमारे चित्त की प्रक्रिया ऊँची बनेगी। चित्त के आँगन में चित्त के संस्कारों का एक जो समूह है उस संस्कारों के आँगन में यह आत्मा विराजमान हो जाता है। यह आत्मा सन्निधान मात्र से चित्त को क्रिया दे रहा है। शून्य (जड़) को चेतन्त बना रहा है अपनी प्रक्रिया देकर सन्निधान मात्र से हरी। मेरे प्यारे! ऋषिवर! वह सन्निधान केवल संस्कारों में ऐसे कटिबद्ध हो गया है, स्वतः ही उसका स्वभाव बन गया है कि उसको चेतना देने का स्वभाव बन गया है। परन्तु जब हम मन के अन्न के दोषों को समाप्त करेंगे, उसके पश्चात् मन और बुद्धि का दोनों का समन्वय हो जाएगा।

यहाँ वास्तव में यह कहा जाता है कि मन और प्राण दोनों का समन्वय करना योग कहलाया गया है। क्योंकि प्राण के विभाग होते हैं, मन का विभाजन नहीं होता। मन तो केवल किसी वस्तु का विभाजन करता है। प्राण का विभाजन करता है। संसार में जितना भी विभाजन है, जितना भी जल प्रवाह रमण कर रहा है यह सब प्राण ही है और प्राणों का विभाजन करने वाला यह मन है। आज इस मन को जानना और मन को जान करके अन्न के दोषों को समाप्त करके मन और प्राण दोनों को सहकारिता में रमण करा देना दोनों का मिलान करा देना, जब दोनों का मिलान हो जाता है मुनिवरों! मन और प्राण दोनों का मिलान हो जाना ही इस शरीर में आनन्द को प्राप्त करना है। मन और प्राण की प्रक्रिया मानव को अभ्यास हो जाता है। निद्रा विहीन जीवन में रमण करने लगता है मुनिवरों! उस समय मानव को निद्रा की भी आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि मन और प्राण का दोनों का मिलान हुआ और वे जो प्रकृति के आवेश तुम्हारे

द्वारा थे उनका विकार समाप्त हो जाता है। वह जो विभाजनता थी जब विभाजन ही नहीं रहेगा तो मुनिवरों! देखो,। तो संसार का प्रसाद भी हमारे द्वारा नहीं आएगा।

प्रसाद तो आता उस काल में है जब हमारी प्रवृत्तियों का विभाजन हो जाता है। उनका विभाजन नहीं होना चाहिए। विभाजन होता है मन और प्राण दोनों के विभाजन होने से ही इन प्रवृत्तियों का भी विभाजन हो जाता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें मन और प्राण दोनों को मिलान करना है। दोनों को एक सूत्र में लाना है। दोनों मन के हैं उस चेतना के दोनों मनकों को ओ३म् रूपी धागे में परणित कर देना है बेटा! मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब ये परणित हो जाते हैं दोनों एक सूत्र में पिरोए जाते हैं तोचित्त में जो नाना जन्म जन्मांतरों के संस्कार हैं इनकी भयंकर अग्नि से उन संस्कारों का भी कुछ न कुछ रूप परिवर्तित हो जाता है। वास्तव में यह कहना चाहिए, यह उच्चारण करना चाहिए कि वे जो संस्कार हैं उनमें हल्कापन (कोमलता) आ जाती है। उनमें ऊर्ध्वगति आ जाती है। ध्रुव (नीचगति) नहीं रहती। ऊर्ध्वगति आ करके मुनिवरों! जब प्राण और मन दोनों की भयंकर अग्नि और भी प्रदीप्त होती है, केवल चित्त में जो संस्कार हैं और भी सूक्ष्म बनते हैं और अग्नि परणित की जाती है तो और भी सूक्ष्म बनते हैं। परिणात यह मुनिवरों! सूक्ष्म से सूक्ष्म बन करके कारण में चले जाते हैं और कारण में जाकर के एक समय वह आता है जब यह आत्मा निर्द्वन्द्व हो करके प्रभु के आनन्द में विचरण करने लगता है। वह कर्म प्रकृति के आँगन में रमण कर जाते हैं, आत्मा के समीप नहीं रह पाते।

परिणीत यह कि आज हम केवल आत्मा को दृष्टिपात करना चाहते हैं इस आत्मा से ही परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करना चाहते हैं। बेटा! आज हमें परमात्मा को प्राप्त करने वाले सर्वत्र की एक ही नियमावली होनी चाहिए कि सबसे प्रथम अन्न प्रवाह अस्वाति, दोषों में नहीं रमण करना चाहिए। आज मैं बेटा! यह उच्चारण करने नहीं आया हूँ कि संसार में केवल हम आत्मवत आभ्रवहे। मुनिवरों! मैं तो केवल यह उच्चारण करने आया हूँ संसार में मानव का जो जन्म होता है वह प्रभु को प्राप्त करने के लिए आत्मा को स्वतन्त्र बनाने के लिए प्राप्त होता है। इसीलिए मानव बनना चाहिए। वह मानव पृथ्वी

मण्डल का हो, सूर्य मण्डल का हो, मंगल का हो, बृहस्पति का हो शनि का हो और बुद्ध का हो चाहे वह और भी नाना जेठाय नक्षत्र और ध्रुव मण्डल का ही प्राणी क्यों न हो। परन्तु प्राणी जब भी आता है किसी भी लोक में विचरण करने वाला हो केवल एक आत्मा को स्वतन्त्र बनाने के लिए उसका जन्म होता है। कर्म करने के लिए उत्पन्न होता है।

जितना भी अन्न आदि को तुम दूषित बनाते रहोगे उतना प्रकृति के आँगन में रमण करते रहोगे, और भी नाना प्रकार की योनियाँ अशुद्ध से अशुद्ध प्राप्त होती रहेंगी। जितना अन्न के दोषों को दूर करते रहोगे, शुद्ध, पवित्र बनाते रहोगे उतना आत्म साक्षात्कार के योग्य बनोगे।

मुनिवरों! आहार केवल अन्न ही नहीं होता, स्थूल अन्न एक अन्न जो वायुमण्डल में विचरण करता है वह भी अन्न होता है। परमाणुओं से मानव का शरीर बना है, परमाणु इसका आहार है मुनिवरों! वह परमाणु वायु से भी योगी अपने में ग्रहण कर लेता है, जल में से भी ग्रहण कर लेता है मानो अन्तरिक्ष में रमण करने वाले परमाणुओं को द्यु लोक से भी प्राप्त कर लेता है। मुनिवरों! उससे भी शरीर की तृप्ति हो करके एक समय वह आता है कि स्थूल शरीर भी त्याग दिया जाता है। मानो सूक्ष्म रह जाता है। सूक्ष्म का भी विच्छेद हो जाता है कारण रह जाता है मानो कारण का सम्बन्ध उस महान मेरे प्यारे! प्रभु से होता है। प्रभु के गर्भ में वह कारण लिंग भी अस्वातों में रह जाता है परन्तु वह उसके आँगन में विचरण करने लगता है।

यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारा जीवन उस काल में ऊँचा बनेगा जब अन्न का दोष नहीं रहेगा, बेटा! यह आज का वाक् अब हमारा समाप्त हो गया है। कल मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाओं में इसके ऊपर विचार कल किया जाएगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

४ 12 03 1973 पुष्प 25 महर्षि याज्ञवल्क्य और मैत्रयी का संवाद

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद

मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। यह जगत विज्ञानमय माना गया है। इसकी विज्ञानमयी धारा है, हमें इसके ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए। जब हम यह विचारते रहते हैं कि विज्ञान एक प्रकृति की आभा है अथवा विज्ञान में प्रकृति का मन्थन किया जाता है और मन्थन करने के पश्चात जो धारा उत्पन्न होती है उस धारा को जान कर उससे यन्त्रों का निर्माण किया जाता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें नाना प्रकार की वार्त्ताएं प्रकट कीं। जैसे मेरे प्यारे! महानन्द जी ने इससे पूर्व शब्दों में संसार की नाना चर्चाएं कीं। परन्तु उन चर्चाओं में एक अमूल्य विषय यह भी था कि हमने कुछ गायत्री के ऊपर अपना विचार देना प्रारम्भ किया था। परन्तु गायत्री कहते किसे हैं? मैंने कई काल में कहा है पुत्र! संसार में जितने भी वेदमन्त्र हैं, प्रत्येक वेदमन्त्र उस महान प्रभु की आभा है और उसी का गान गाता रहता है। परन्तु ऋषि मुनियों ने वेदों में से उस वस्तु को व्यवहार में साकार रूप दिया जिसका जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध माना जाता है। जैसे गायत्री 24 अक्षरों वाली गायत्री कहलाती है। तीन उस में व्याहृतियां मानी जाती हैं। हमारा यह जो स्थूल मानव शरीर है यह 24 तत्त्वों से बना हुआ है। उन 24 तत्त्वों से जो बना हुआ शरीर है प्रत्येक अक्षर का सम्बन्ध प्रत्येक तत्त्व से माना जाता है इस मानवीय तथ्य (यथार्थ) को जानना है। उस महान प्रभु की प्रतिभा के विभाग किए जाते हैं। कुछ शब्द इस प्रकार के हैं जिनका सम्बन्ध मानो प्राणों से है, कुछ का सम्बन्ध मन से है। कुछ का मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से कुछ का इन्द्रियों से है। परन्तु प्रत्येक अक्षर का जो बोधक है यह हमारा शरीर ही है। तो ऋषि मुनियों ने इन वाक्यों को साकार रूप दिया। और साकार रूप देने का एक ही अभिप्राय था कि जिसके ऊपर हम अनुसन्धान कर सकें और अपने जीवन की आभा से उसका हम सम्बन्ध अथवा उसका मिलान कर सकें। रहा यह कि मैं गायत्री के गूढ़तम रहस्य को तो कोई विशेष प्रतिभा में ले जाना नहीं चाहता हूँ। यह

वाक्य है कि प्रत्येक शब्द को हमारे यहाँ गायत्री कहा जाता है। गायत्री का अभिप्राय है कि हमारे यहाँ जो गायी जाती है और वेद का गाया प्रत्येक शब्द जाता है। जब ऋचा को गाते हैं तो मन मग्न हो जाते हैं। क्योंकि वह गायत्री कहलाई जाती है। जिसके ऊपर हमें बारम्बार विचार विनिमय करना है। जिस आभा को ले करके हम संसार की उस प्रतिभा में ऊँचा बनाना चाहते हैं। जिस जीवन में हमारे में एक महत्ता आती हो उस आभा का नाम बहुत ही प्रियतम माना गया है।

मेरे प्यारे! महानन्द जी एक वाक्य उच्चारण कर रहे थे। वह मुझे बहुत प्रिय लग रहा था। क्योंकि वह वाक्य में पुरातन काल में भी उच्चारण करता रहा था। और उनसे वंश के वंश भी विचित्र बन जाते हैं। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने एक शब्द कल कहा। इससे पूर्व शब्दों में चाहे गृह आश्रम हो, वानप्रस्थ, संन्यास, कोई भी आश्रम हो प्रत्येक आश्रम में चरित्र की बड़ी महत्ता मानी जाती है। चरित्र मानव का जीवन होना चाहिए। राष्ट्र का चरित्र, मानवता का चरित्र ऊँचा होना चाहिए। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने एक वाक्य बहुत प्रियतम उच्चारण किया। परन्तु प्रायः वह दृष्टिपात नहीं किया गया। प्रायः वह समाज में घटित भी होता है। जिस गृह को नारकीय बनाना हो उस गृह में मानव अपनी आभा में आभायित न रह करके दुश्चरित्रता में परिवर्तित होते चले जाओ तो गृह नारकीय बन जाता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बहुत ऊँचे शब्दों में अपनी उड़ान उड़ी। एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज विराजमान थे। परन्तु उस समय कात्यायनी और मैत्रेयी दोनों विराजमान थीं। एक बार मैत्रेयी का और याज्ञवल्क्य मुनि दोनों का शास्त्रार्थ हुआ था। याज्ञवल्क्य एक समय कंजली वनों से भ्रमण करते हुए सिन्धु की घाटी के निकट पहुंचे। सिन्धु के तट पर विराजमान थे। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता तो थे ही। सर्वत्र भूमि पर यह विशेषता थी उनकी कि उनका तप नितान्त (अत्यधिक) था। तो वहीं महर्षि स्वाति, ऋषि और भूकृतिभा, चाक्रेति ऋषि विराजमान थे। और अर्द्धभाग को यह अभिमान था कि मैं ब्रह्मवेत्ता हूँ। परन्तु राजा जनक की सभा में एक समय उनके यश का ह्रास हो गया था तो उन्होंने यह निश्चय किया था कि मैं याज्ञवल्क्य के के यश का

ह्रास करूं। इसका मस्तिष्क इससे नीचा गिर जाए। तो अर्द्धभाग दिग्ध ने अपना एक समाज बनाया। मुग्दलगोत्र में उत्पन्न होने वाली मैत्रेयी कन्या महर्षि तत्त्व मुनि महाराज के द्वारा अध्ययन करती थी। उसका बड़ा गम्भीर अध्ययन था। अध्ययन समय में इसे यही प्रतीत नहीं होता था तेरे शरीर पर वस्त्र है अथवा नहीं। क्योंकि ब्रह्म में चिन्तन में इतना संलग्न हो जाना कि उसे यह प्रतीत न रहे कि तू कहाँ है? ऐसी साधना सफल है। परन्तु इन्होंने नियम बनाया कि याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ होना चाहिए। जब इन्होंने यह घोषणा करायी तो याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि तुम शास्त्रार्थ किसी राष्ट्रीय सभा में करोगे? उन्होंने कहा नहीं। हम सिन्धु के तट पर ही शास्त्रार्थ में विचार विनिमय करेंगे। उनका विचार विनिमय होने लगा। और विचार विनिमय होते हुए उन्होंने मुनिवरों! शाण्डिल्य गोत्र में उत्पन्न होने वाली कन्या को कहा। जब वे किसी ऋषि से विजय न हुए तो मैत्रेयी को लाया गया।

मैत्रेयी ने यह कहा कि प्रभु आप ब्रह्मवेत्ता हैं। मैं यह जानना चाहती हूँ कि गृह का वंश कैसे समाप्त हो जाता है? यह बड़ा आश्चर्यजनक प्रश्न था। याज्ञवल्क्य जी कहते हैं हे देवी! मेरे विचार में तो ऐसा आता है कि जिस गृह में मानव पति पत्नी हों, जब उनके विचारों में सुगठिता नहीं रहती, विचारों में भ्रष्टता आ जाती है और वह अनेक वंशों तक चली आती है। एक वंश से दूसरे वंश में उसी प्रकार 15 वंश जिसके चरित्रहीन रह जाते हैं उनका वंश समाप्त हो जाता है। जब उन्होंने यह वाक्य कहा क्योंकि गृह का जो नरक है वह उस काल में बना करता है जब पुरुष अथवा गृहपति अपनी गृहिणी को त्याग करके अपने संसार के जो वचन हैं उनको त्याग देता है। जैसे संस्कार में ब्राह्मण उपदेश देता है कि यह पत्नी है परन्तु इन वचनों को गृहपति समाप्त करके दूसरे की कन्या अथवा पुत्री अथवा पत्नियों को वह कुदृष्टि पान करता रहता है तो उसका जो मानो वीर्य रस होता है उस वीर्य रस में से नेत्रों के द्वारा कुदृष्टि होते ही सुकृत हनन होना प्रारम्भ हो जाता है। यह दर्शन है। दर्शन क्या कहता है? जिस समय अपने किसी कन्या को कुदृष्टि पान करते ही उस में एक हृदय में एक कम्पन्नता होने लगती है, हृदय में एक श्वेति नाम की नाड़ी होती है उस श्वेति नाम की नाड़ी का सम्बन्ध पुरीतत से

होता है और पुरीतत नाम की नाड़ी का सम्बन्ध इडा, पिंगला से होता है और जिस समय यह कुदृष्टि होने लगता है उन सब नाड़ियों का सम्बन्ध नेत्रों से होता है। तो वह जो प्राकृतिक ईश्वर की देन जो पुण्य है, अन्तःकरण में जो पुण्य विराजमान है उन नाड़ियों के द्वारा नेत्रों की ज्योति के द्वारा वह जन्म जन्मान्तरों का पुण्य समाप्त होने लगता है। क्यों होने लगता है? क्योंकि कुदृष्टि पान करना ही मानव के द्वारा एक अपराध है, पाप है। उसको ऋषियों ने पाप कहा है। उसको दर्शन भी पाप कहता है। और वह पाप क्यों है? प्रश्न तो यह आता है। वह पाप इसलिए है क्योंकि जिसमें शंका लज्जा हो वह आशंका लज्जा का मूल केन्द्र बन जाता है परन्तु शंका, लज्जा के मूल केन्द्र बन जाने से मानव के पुण्य समाप्त हो जाते हैं। जिस मानव ने केवल अपनी इन्द्रियों को वश में न रख करके अपने पुण्य समाप्त करने लगता है जन्म जन्मान्तरों में न जाने क्या क्या उसको बनना पड़ेगा? यह तो कोई जान नहीं पाता। परन्तु वह प्रतीत नहीं कि वह किस कामना के केन्द्र में जाएगा? कहाँ जाएगा? मैं इसको उच्चारण तो करूं। परन्तु इतना समय नहीं। विचार केवल यह है कि परस्त्रीगामी बनना जो है वह राष्ट्र के लिए समाज के लिए, गृह के लिए सामाजिक पुण्य और आत्मिक पुण्य दोनों समाप्त हो जाने से वंश का नाश करने वाला बन जाता है। इसीलिए वह जो वीर्यरस है जो अन्न का रस है, वनस्पतियों का रस है उसका वह रस दूषित हो जाता है। और उस रस के दूषित होने पर शरीर में जो चेतना होती है उस चेतना में जैसे मानो अन्तरिक्ष में विद्युत है और वह विद्युत सुकृत को हनन कर लेती है इसी प्रकार वह जो रस है और वह जो कामना की अग्नि जागरुक होती है वह कामना यदि पूर्ण नहीं होती तो उसके हृदय में एक ऐसी वेदना होती है वह वेदना वह रस वनस्पतियों का, अन्न का बना हुआ जो वीर्य रस है उसमें जा करके वीर्य कणों को वह समाप्त करने लगता है। जब उसके कण समाप्त हो जाते हैं। उसके कणों में जब अप्रियता आ जाती है तो मुनिवरों! वह गृह नारकीय बन जाते हैं और इसी प्रकार एक परमाणु, दूसरा परमाणु तीसरा, पन्द्रह वंश के पश्चात् उसका शरीर ऐसा निर्जीव बन जाता है कि उस मानव के ब्रह्मचर्य में वे सुकृत नहीं रहते जिससे संसार में पुत्र की उत्पत्ति हो। ऐसा दर्शन कहता है। क्योंकि पन्द्रह

वंशों के पश्चात् यह प्रतीत होता है।

परन्तु आज कोई यह कहे कि संसार में क्या है? संसार में केवल आनन्द और विषय के लिए हम आए हैं तो यह मानव की अज्ञानता है। क्यों अज्ञानता है? क्योंकि संसार में मानव आया है मनन करने के लिए और ऋणों से उऋण होने के लिए। यदि ऋण ज्यों के त्यों बने रहें तो तुम्हारे मानव जीवन से लाभ क्या है? ऐसी दशा में जीवन से कोई लाभ नहीं होता। इसीलिए विचारकों ने कहा है, ऋषि मुनियों ने कहा है, हे मानव! तू अपने जीवन को ऊर्ध्व बनाने का प्रयास कर। जब जीवन ऊर्ध्व बन जाता है तो मानवता में परणित हो जाता है। परिणाम यह कि आज हम अपने जीवन को ऊँचा बनाने का प्रयास करें। जिससे हमारे जीवन में एक महत्ता का दिग्दर्शन होजाए। क्योंकि गृह को स्वर्ग बनाना है। गृह में अतिथि सेवा करनी है। समाज को हमें यह दृष्टिपात कराना है कि मैं आदर्श हूँ। आओ दृष्टिपात करो। आओ मेरे दर्शन करो।

मैं उच्चारण कर रहा था कि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब यह कहा, हे देवी! संसार में वंश समाप्त हो जाता है। उन्होंने कहा इसमें प्रभु की क्या विचित्रता है? उन्होंने कहा कि वह जो प्रभु है, उसका रचाया हुआ जो नियम है। उसकी जो वेद रूपी पतित पावनी विद्या है, गात्राणि है जो गाई जाती है उसके आधार पर अपने जीवन को बनाना, तप करना एक एक कार्य हमारा उद्देश्य से नहीं केवल परोपकार से पिरोया हुआ हो। ऋण से उऋण होने का प्रयास हो। वह जो हमारा जीवन है वह इससे एक महत्ता में परणित होता रहता है। वही एक महत्ता वाला जीवन है देवी! हे मैत्रेयी संसार में ऊँचा बनना है तो आज मेरा यह विचार है। रहा यह कि आज तुम ब्रह्म की चर्चा करो तो ब्रह्म की चर्चा भी कर सकती हो।

मैत्रेयी बोली कि प्रभु! जिस मानव का कोई सम्बन्धी हो, क्या वह सम्बन्ध पूर्व जन्म का नहीं हो सकता? उन्होंने कहा देवी! नहीं। यह जो चरित्र की आभा है यह पूर्व संस्कारों से सम्बन्धित नहीं। यह रज से सम्बन्धित रहता है और माँ के गर्भ में जब बालक पनपता है तो माता पिता के दोनों के रज और वीर्य से ही उसका निर्माण होता है। मानो वह जो संस्कार रक्त में हैं, जो संस्कार माता ने बनाए हैं और जो गृह के वातावरण से

बनते हैं। जो गृह में परमाणुवाद है उसके आधार पर नवीन संस्कार बनते रहते हैं और उन संस्कारों से मानव का जीवन चरित्र बनता है। मानों कुछ संस्कार होते हैं, कुछ संस्कार गृह में, वातावरण में बनते हैं। दार्शनिक पुरुषों ने कहा है कि इसको हमें विचारना है कि गृह में कैसा परमाणु है? हमारे यहाँ ऋषि मुनि जब सन्तान को जन्म देना चाहते थे तो उस समय पर्वतों के ऐसे महान, सुन्दर वातावरण में चले जाते थे जहाँ प्राण वायु अधिक प्रदान की जाए। जहाँ सुगन्धि हो। औषध हो, माता के शरीर को छूने वाला परमाणुमात्र हो। उन परमाणुओं में से, कुछ परमाणु अन्तरिक्ष से आते हैं, कुछ वातावरण वनस्पतियों के हैं, कुछ विचारों के परमाणु हैं। उन परमाणुओं से माता के शरीर में गर्भाशय की स्थापना होती है। उसका उन्हीं विचारों से निर्माण चलता है। कुछ जन्म जन्मान्तरों के संस्कार भी उसके साथ होते हैं। तो रहा यह कि जब वह बालक जब जन्म लेता था तो उसका जीवन स्वस्थ, आनन्दित होता था और इसी प्रकार हमें विचारना चाहिए कि आज हमें जीवन को ऊँचा बनाने के लिए हम चरित्रवान बनाना चाहते हैं। हम गृहों को स्वर्ग बनाना चाहते हैं। यदि गृह स्वर्ग नहीं बनेंगे तो यह राष्ट्र कैसे ऊँचा बनेगा? राष्ट्र भी ऊँचा नहीं बनेगा। और जब राष्ट्र और गृह समाज में सामाजिक उच्चता नहीं आएगी तो जीवन कदापि ऊँचा नहीं बनेगा। इसीलिए मैं यह गौरव के सहित कहा करता हूँ। तो मुनिवरों! जब यह शास्त्रार्थ हुआ, विचार विनिमय हुआ।

उस पर ये प्रश्न हुए तो मैत्रेयी ने यह जान लिया और कहा कि हे ऋषियो! हे दिग्ध! हे अर्द्धभाग यह ब्रह्मवेत्ता है। यह हर विषय पर अनुसन्धान करने वाला है। अन्त में मैत्रेयी ने यह कहा कि प्रभु मैं आपको वरना चाहती हूँ। उस समय ऋषि बोले, देवी! यह तुम क्या उच्चारण कर रही हो? ऐसा कैसे होगा? उन्होंने कहा भगवन! मेरा तो यह विषय बन गया है। मैं आपके बिना इस संसार में नहीं रहना चाहती। क्योंकि जो ऐसे ब्रह्मवेत्ता के चरणों में नहीं रह सकता वह संसार में अभागा है। उस समय याज्ञवल्क्य ने कहा देवी! ऐसा कैसे हो सकता है? मेरा तुम्हारा पति पत्नी का सम्बन्ध बने, ऐसा कैसे मैं स्वीकार करूं? उन्होंने कहा प्रभु! यह तो हो गया, मैंने संकल्प कर लिया है।

मैं संकल्पबद्ध हूँ। परन्तु मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि मैं आपके गृह में प्रविष्ट हो करके केवल वासना के आधीन हो जाऊं। मेरा उद्देश्य है मेरी वासना आप के ब्रह्मज्ञान से समाप्त हो जाएगी। मैं तो यह चाहती हूँ प्रभु! तो मुनिवरों! मैत्रेयी ने जब यह कहा तो ऋषि का हृदय गदगद हो गया। ऋषि ने कहा देवी! मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ। परन्तु यदि जीवन में कामना का उद्देश्य है यह उद्देश्य है कि यह ब्रह्मवेत्ता है क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि बहुधा प्रकृति का वातावरण ब्रह्म के विचारों को प्रकृति में लीन होने के लिए बाध्य कर देता है, जहाँ साधक साधना करता है, ब्रह्म में जाने का प्रयास करता है तो प्रकृति के ऐसे ऐसे आवेश उसके समीप आते हैं उन आवेशों में यदि वह आ गया तो साधना समाप्त हो गई। प्रभु की आभा में आभायित नहीं होता वह प्रकृति के आँगन में रमण कर जाता है। हे देवी! क्या तुम्हारा यह उद्देश्य है? क्योंकि मैं साधक हूँ, मैं प्रभु की साधना करता हूँ, यदि तुम्हारा यह उद्देश्य हो तो मैं तुम्हें स्वीकार नहीं करूंगा। मैत्रेयी ने कहा प्रभु! ऐसा नहीं होगा। क्योंकि मुझे संसार की कोई कामना नहीं है। उन्होंने कहा देवी! वेद कहता है, ऋषि कहता है कि द्वितीय पत्नी के आ जाने पर मानव के पुरुष के पुण्य का क्षय हो जाता है। परन्तु मेरी पत्नी एक है कात्यायनी। उन्होंने कहा प्रभु! मुझे इससे कोई सरोकार नहीं। मैं तो ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए, ब्रह्मवादिनी बनने के लिए आपके चरणों में आना चाहती हूँ। बेटा! जब यह प्रश्न किए गए तो ऋषि मुनियों की सभा विराजमान थी। सब ऋषियों ने एक स्वर से कहा कि जब यह उच्चारण कर रही हैं तो आप इसे स्वीकार करो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने उन ऋषि मुनियों की वार्त्ता को समाप्त नहीं करना चाहा। परन्तु देखो, तब उनका संस्कार हुआ।

संस्कार होने के पश्चात् विजय का जब विजयित होता है वही तो एक महत्ता है। परिणाम यह कि हम आज अपने जीवन को, अपनी आभा को महत्ता में परणित करना चाहते हैं। जिससे हमारा जीवन एक महान बनें और पवित्र बनता चला जाए। जिस पवित्रता का स्रोत एक मानव के हृदय में सदैव परणित रहता है। आओ मेरे प्यारे! मैं आज अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि आज का हमारा जीवन, आज की हमारी दार्शनिकता ऋषि मुनियों में जिस प्रकार के ब्रह्मवेत्ता ऋषि मुनि होते

हैं राजा का राष्ट्र ऊँचा बन जाता है। इसी प्रकार मानव का उद्देश्य है मनन करना, मानव का उद्देश्य है घृणात्मक कर्मों को त्यागना, उच्चता को लाना। यह मानव का कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्यवाद की वेदी पर हम रमण करते रहें। मैं कोई अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ। वाक्य उच्चारण करने आया हूँ। कि हम प्रभु का गुणगान गाते रहें, प्रभु की आभा में आभायित रहें। यह है मुनिवरों! आज का हमारा वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। गात्राणि छन्दों के ऊपर मेरा कोई विशेष विचार नहीं है। गायन रूप से जो गायत्री 24 अक्षरों वाली जो गायत्री है वह हमारे जीवन से विशेष सम्बन्धित है, विशेष गम्भीरता से उसका अध्ययन है इसके ऊपर और विचार किसी काल में गायत्री सम्बन्धी पठन पाठन आएगा तो इसके ऊपर विचार विनिमय करेंगे। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त हो जाएगा।

५ 31 07 1973 पुष्प 26 चार प्रकार के प्राणी

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में मानव के कल्याण की विवेचना की जाती है।

महर्षि वाल्मीकि की चर्चाएं मैं अपने यहाँ कई काल से करता चला आ रहा हूँ हमारे यहाँ भी नाना ऋषि हुए। महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र। उन नाना ऋषियों के मस्तिष्कों में ब्रह्म के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की धारणा रही। जैसे हमारे यहाँ महर्षि वशिष्ठ का अनुसन्धान किसी और मार्ग पर ले जाने वाला नहीं। परन्तु वहाँ कुछ भिन्नता आ जाती है। जैसे महर्षि विश्वामित्र के विचार किसी और मार्ग को ले जाता है परन्तु वह मार्ग वेद से सुगठित है। इसमें महर्षि भारद्वाज का और ही मन्तव्य है। जैसे महर्षि मुग्दल का मन्तव्य रहा है, वायु मुनि और आष्टाचार्य का भिन्न भिन्न प्रकार का मन्तव्य रहा है। किन्हीं ऋषि ने तो विज्ञान की धरा में ब्रह्म का दिग्दर्शन किया। किन्हीं विचारों में आत्मा

को ब्रह्म का दिग्दर्शन स्वीकार किया। किन्हीं मानव ने यह अनुभव किया कि हम परमपिता परमात्मा, जो चैतन्य देव है उसको हम किस रूप में स्वीकार करें? परन्तु वह निमटारा नहीं हुआ। वह जिज्ञासु और विवेकी बनें। विवेकी बन करके वह मौन हो गए तो नाना प्रकार का विचार ऋषि मुनियों के मेघावी मस्तिष्कों में रहा। आज मैं संक्षिप्त परिचय दूंगा।

हमारा विचार क्या रहा है? पूज्यपाद गुरुदेव का विचार क्या रहा है? हमारे यहाँ जब दार्शनिकों का समाज एकत्रित होता तो उस समाज में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि यदि हम आत्मा को ब्रह्म स्वीकार कर लेते हैं तो चेतना का भान कहाँ से होता है? यह जो नाना प्रकार का जगत दृष्टिपात हो रहा है यह क्या है? इसमें दार्शनिक कहता है कि वह चित्त का विषय है और चित्त जो है वह मानव की विशेष अवस्था का नाम है, यह मन की ही दशा है, मन की ही एक धारा है। इसको मान की धारा न स्वीकार करके इसको भिन्न की संज्ञा प्रदान की। किन्हीं आचार्यों ने इसे भिन्न माना है, किन्हीं आचार्यों ने यह स्वीकार किया है कि यह जो आत्मा है यह तो चेतना है औरयह जो मन है इस मानव के शरीर में उसकी जो दशाएं हैं, धाराएं हैं जैसे मन है दूसरी ऊर्ध्व गति में बुद्धि रहने वाला है। मन, बुद्धि और चित्त उसके शरीर में रहने वाले हैं। इसके पश्चात् अहंकार आता है, जो चारों मन की धारा स्वीकार की जाती हैं। हमारे दार्शनिक ऋषियों ने, आचार्यों ने इनको केवल मानसत्व की उपाधियां प्रदान की हैं, यह मन की ही धाराएं हैं और मन की धाराओं में ही यह जगत नित्य रमण कर रहा है।

मेरे प्यारे! महर्षि वाल्मीकि की इसमें भिन्नता रही है। महर्षि वाल्मीकि ने दार्शनिक समाज में महर्षि अरुणी मुनि महाराजा को यह कहा कि महाराज! जब तुम चित्त को ही स्वीकार करते हो, चित्त का आवागमन होता है और चित्त ही आवागमन का मूल बना रहता है। अरुणी ऋषि ने यह कहा कि महाराज! मैंने तो ऐसा ही जाना है कि यह जो चित्त है यही आवागमन का कारण बनता है। वह जो आत्मा है वह ब्रह्म है, वह तो सर्वोपरि है। तो महर्षि वाल्मीकि ने कहा कि महाराज! चित्त का वास्तविक गुण क्या है? चित्त को आप जड़वत स्वीकार करते हैं अथवा चेतना? तो उन्होंने कहा कि मैं

सन्निधान मात्र से चेतना स्वीकार करता हूँ। जैसे प्रकृति में सन्निधान आया और प्रकृति में गति आ जाती है। परन्तु वह गति अथवा चेतना किसी चेतना को स्वीकार करता हूँ। क्योंकि प्रकृति जड़वत है। इसी प्रकार मैं चित्त की दशा भी स्वीकार करता हूँ आत्मा के सन्निधान मात्र से चित्त में गति आ जाती है और चित्त में जो संस्कार रहते हैं उन्हीं संस्कारों से मानव का मन और चित्त का आवागमन बनता है। इसमें महर्षि वाल्मीकि ने कहा कि महाराज! जब चित्त को जड़वत माना जाता है, उसमें जड़ता है तो गति को देने वाला आत्मा है तो हम आत्मा को यह क्यों न स्वीकार करें कि आत्मा चैतन्य संग रहने वालों पर जो मन की धारा हैं, जिसको (1) मन, (2) बुद्धि, (3) चित्त, (4) अहंकार कहते हैं यह प्रकृति के गुण माने जाते हैं और आत्मा के सन्निधान मात्र से वह संस्कार जागरूक हो जाते हैं।

इसी प्रकार महर्षि अवरेत्र ऋषि ने कहा कि महाराज! मैं इस पर विचार करने के लिए तत्पर हूँ। वह जो चित्र है वह प्रकृति का एक आवरण है। प्रकृति की एक दशा है। परन्तु उसमें ज्ञान नहीं है और आने जाने की उसमें स्वतः कोई भी अपना अस्तित्व नहीं रहता, जब यह आत्मा का सन्निधान उससे विच्छेद हो जाता है तो चित्त कैसे जाएगा किसी के गर्भ में अथवा किसी माता के शरीर में, बालक के आत्मा में अथवा शरीर में प्रविष्ट होगा, मैं यह निर्णय लेना चाहता हूँ। मेरे विचार में तो यह आता है कि जैसा मैं स्वीकार करता हूँ कि वह जो चित्त है उसमें एक जैसे प्रकृति है और प्रकृति में चेतना की एक धारा है ऐसे ही चेतना की एक धारा एक चित्त में विराजमान रहती है और चित्त के गर्भ में वह चेतना रहती है।

यह वाक्य महर्षि वाल्मीकि ने कहा कि मैं स्वीकार नहीं करता। मेरा तो यह विचार है कि आत्मा के साथ में (1) मन (2) बुद्धि (3) चित्त (4) अहंकार का समूह जाता है। पांच ज्ञानेन्द्रियां जाती हैं। और वह जो सत्रह तत्त्वों का शरीर है वह आत्मा की चेतना से चेतनित होता है और आत्मा का ये महा सूचक माने जाते हैं। जैसे मन है और हम यह स्वीकार करते हैं कि मन को अग्नि नष्ट नहीं कर सकती, वायु उसको दूर नहीं कर सकता, जल भी इसको अर्वित (क्लेदित) गीला नहीं कर सकता। परन्तु वह जो मन है

यह सर्वत्र तत्त्वों में विराजमान है। जैसे वायु में भी है क्योंकि वायु में जो विभाजनवाद होता है यह केवल मन का ही एक आवरण (गुण) माना जाता है। जैसे अग्नि नाना प्रकार की सूत विद्या वाली कहलाती है और जो सत विद्या दृष्टिपात होती है वह मन के कारण है, इसलिए अग्नि में भी मनस्तत्व है, मन विराजमान है। जल नाना धाराओं में विराजमान आता है, नाना रूपों में दृष्टिपात आता है तो जल में जो विभाजन क्रिया है वह मन की ही तो एक धारा है। मैं इससे पूर्व वनस्पतियों की विवेचना कर रहा था यह जो वनस्पतियों में नाना प्रकार का रसास्वादन दृष्टिपात आता है वह रसास्वादन केवल मन का ही तो एक आवरण माना जाता है। इसी प्रकार इसको अग्नि भी नष्ट नहीं कर सकती, जल भी नष्ट नहीं कर सकता क्योंकि प्रकृति की सबसे सूक्ष्म जो धारा है उसको कोई पदार्थ नष्ट नहीं कर सकता।

मेरे प्यारे! विद्युत वहाँ भी बन सकती है परन्तु विद्युत मन को नष्ट नहीं कर सकती। क्योंकि उसमें घृत नहीं होता, उसमें केवल सबसे सूक्ष्म परमाणु होता है। आज तक जितने वैज्ञानिक हुए हैं, नाना ऋषियों के मस्तिष्कों में विज्ञान रहा है, आज तक कोई भी वैज्ञानिक ऐसा यन्त्र निर्धारित नहीं कर सका है जो इस प्रकृति में से मन का साक्षात्कार कर सके, अथवा मन को दर्पण में ला सके। जैसे मानव का मुखारविंद दृष्टिपात आता है ऐसे किसी यन्त्र में यह मन दृष्टिपात नहीं आता। क्योंकि ऐसे सूक्ष्म यन्त्र आज तक वैज्ञानिकों ने निर्धारित नहीं किया। क्योंकि गति करने वाली जो वस्तु है। अथवा जिसको हम मन कहते हैं, जो विभाजन करने वाली शक्ति है परमाणुओं का विभाजन करती रहती है, अग्नि के परमाणुओं को, जल के परमाणुओं की भिन्न भिन्न रूपों में गति होती रहती है तो वह मन है। प्रकृति के आँगन में, प्रकृति का जो सूक्ष्मतम तत्त्व है वह विभाजन करने वाला वह मनस्तत्व माना जाता है परन्तु वह आत्मा के सन्निधान मात्र से चेतना का होता है। इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि ने कहा हे ऋषिवर! मैं तो यह स्वीकार करता हूँ, कि आत्मा के साथ में यह मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये इसके आश्रित रहते हैं और ये इसके साथ गति करते हैं। यह ऋषि मुनि आचार्यों ने कहा है कि यह जो आत्मा है यह शरीर में भासने वाला है जैसे मानव के चित्त व मन

को कोई नष्ट नहीं कर सकता इसी प्रकार आत्मा को भी कोई नष्ट नहीं कर सकता। यह आत्मा के कारण से रहते हैं, आत्मा इनके कारण से नहीं रहता, आत्मा इनका कारण है और यह आत्मा के कार्य कहलाए जाते हैं, इसके आश्रित हो करके कार्य करते हैं।

महर्षि वाल्मीकि का इस सम्बन्ध में बहुत ही विचार विनिमय रहा है। उन्होंने तीन पदार्थों को अनादि स्वीकार किया है। इन तीन पदार्थों को अनादि स्वीकार करने से मानव का ज्ञान ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है। अब रही विज्ञान की चर्चाएं, मैं विज्ञान की चर्चाएं कर रहा था। यह जो सर्वत्र तत्त्व विराजमान हैं, जैसे अग्नि है वह प्रत्येक लोक में कार्य कर रही है। जैसे जल है वह प्रत्येक लोक में कार्य कर रहा है। यह जो प्रत्येक पदार्थ है यह प्रत्येक लोकों में कार्य कर रहा है, अब जब यह प्रत्येक लोकों में कार्य कर रहा है तो मन भी प्रत्येक लोक में कार्य कर रहा है। क्योंकि मन प्रकृति की वह सूक्ष्म धारा है। परमात्मा के सन्निधान मात्र से मन संसार का विभाजन कर देता है, लोकों का विभाजन कर देता है और लोकों में जो सृष्टि है उसका भी यह विभाजन करता रहता है। तो आज हमें इस मन को विचारना है। आज मन ही एक ऐसी धारा है प्रकृति की जो प्रकृति को भिन्न भिन्न रूपों में परणित कर देता है। इस का सृष्टि रूप बना देता है, सूक्ष्म से स्थूल में परणित कर देता हैं परन्तु वह सन्निधान तो चेतना का है और उस चेतना में जो आभा है उस आभा का नाम मन माना गया है।

आज हम उस मन के ऊपर अनुसन्धान करने वाले बनें। ऋषि वाल्मीकि ने यह भी कहा ऋषिवर! मैं इसे स्वीकार नहीं करता जब मन को एक रस पर स्थित कर देते तो मानव को परम आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। यदि हम चित्त को ही आवागमन का मूल कारण स्वीकार कर लेते हैं उसी में आनन्द स्वीकार कर लेते हैं, उसी में हर्ष को स्वीकार करते हैं तो देखो, जब मानव के हर्ष और आनन्द दोनों में अन्तर द्वंद्व माना जाता है। जिस प्रकार एक मानव को दूसरे मानव के मिलने पर हर्ष उत्पन्न होता है, हर्ष ध्वनि करता है, उस हर्ष का जो परिणाम होता है वह शोक होता है और शोक का परिणाम मोह है, ऐसा भी किन्हीं आचार्यों ने माना है कि शोक का परिणाम क्रोध है।

क्योंकि क्रोध का परिणाम मोह है परन्तु मैं आचार्यों के मन्तव्य पर जाना नहीं चाहता। विचारना यह है कि इस प्रकार जो हर्ष है इसका परिणाम वह शोक है।
जो आनन्द है वह आत्मा का गुण है आनन्द की पिपासा में यह अपने सखा के लिए मार्ग को प्राप्त करता है। जैसे समिधाओं में अग्नि विराजमान है और जब अग्नि विराजमान रहती है तभी समिधाएं भस्म होती हैं और यदि वह अग्नि नहीं होगी तो अग्नि में उसका स्वाहा (भस्म) नहीं हो सकता। वह अग्नि में प्रविष्ट हो करके सूक्ष्म अग्नि को साकार अग्नि में जब प्रविष्ट कर देते हैं तो वह अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और वह अग्नि प्रकाश देने वाली बनती है। वह वही अग्नि है और वह अग्नि सूक्ष्म बन करके द्यू मण्डल में देवताओं की सभा में मन्थन होती है और जब अग्नि का मन्थन होता है तो कुछ अग्नि द्यू लोक को प्राप्त हो जाती है, कुछ अग्नि लोक में प्रदीप्त हो जाती है, वह जो द्यु मण्डल की अग्नि है वही अग्नि नाना प्रकार की विद्युत बन करके वह अणुओं में भी प्रविष्ट होती रहती है। परमाणुओं में भी परणित रहती है। वह सूक्ष्म से सूख्म अणु में भी विराजमान रहती है। मेरे प्यारे! वह जो अग्नि है वह परमाणुओं में विराजमान होने लगती है तो वह अग्नि वही है जो लोक की अग्नि थी। दोनों स्वरूप उसके बने, लोक की अग्नि बनी और वह वैश्वानर नाम की अग्नि द्यु लोक को प्राप्त होने वाली अग्नि बनी। परन्तु वह जो मन्थन की जाने वाली अग्नि है इसी अग्नि में प्रतिभा अश्वात विराजमान रहता है। आज इस सम्बन्ध में मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। विवेचना केवल यह है कि जैसे आज हम सूर्य का अश्वात कर रहे थे जैसे अग्नि यज्ञशाला में प्रतीप्त हो रहे हैं, अग्नि का जो सखा है वह ऊर्ध्व में रहने वाला है। इसी प्रकार हे मानव! तेरे शरीर में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है, अग्नि का जो सखा है वह ऊर्व में रहने वाला है इसी प्रकार हे मानव! तेरे शरीर में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है, अग्नि की जो प्रभा चल रही है वह अग्नि कृतियों में विराजमान होती चली जाती है, इस अग्नि को हम सदैव अपने में धारण करने वाले बनें और अग्नि पर प्रायः अनुसंधान करने वाले बनें।
मेरे प्यारे! विचारना यह है कि जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ता इस अग्नि के ऊपर और वायु के ऊपर, जलों के ऊपर अनुसंधान करते हैं और उन्हीं परमाणुओं को एकत्रित करके

नाना प्रकार के यन्त्रों के आविष्कार करते हैं इसी प्रकार आध्यात्मिकवेत्ता जो जिज्ञासु हैं आध्यात्मिकवादी जो पुरुष हैं वह जो विचारता है कि मैं आध्यात्मिक मार्ग को प्राप्त करने चलता हूँ क्योंकि चित्त में परमानन्द आ जाए। आध्यात्मिकवेत्ता आत्मा के लिए चेतना के उफपर वह अनुसन्धान करता है। आत्मा को जानने वाले चार प्रकार के पुरुष होते हैं। सबसे प्रथम तो जो मानव दुखित होता है, द्वितीय अर्थार्थी होता है और तृतीय जिज्ञासु होता है और चतुर्थ ज्ञानी होता है, ये चार प्रकार के प्राणी होते हैं, जो आध्यामिक पिपासा के लिए अपने स्थली को त्याग देते हैं।

मुनिवरों! सबसे प्रथम वह मानव है जो दुःखित होता है। दुखी कौन है? वह दुखी है जो यह नाना प्रकार का विडम्बनावाद है, रूढ़िवाद है जो मानो एक दूसरे में मानव व्यथित होता रहता है उससे वह मानव दुःखित हो जाता है और वह यह उच्चारण करता है कि मैंने जब से जन्म लिया है मैंने संसार में अपने जीवन में आनन्द का कोई श्वास नहीं लिया है। तो वह मानव यह नाना प्रकार का जो रचनावाद है मानो नाना प्रकार की जो विडम्बनावाद है उससे वह मानव दुःखित हो जाता है। मानव अपमान के जगत में रहने वाला जो मानव है वह सदैव दुःखित हो जाता है।

मुनिवरों! जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा शिक्षा ग्रहण करते थे तो हम सदैव दुःखित नहीं थे। परन्तु जैसे एक शिष्य गुरु के द्वारा आ पहुंचे तो महर्षि विभाण्डक जो महर्षि स्वाति मुनि के पौत्र होते थे जब वे आए तो वे बड़े दुःखी थे। उनके दुःख का कारण यह था कि वे माता की ममता, यह जो जगत का व्यापार है यह मुझे जटिल किए जाता है। प्रभु! इससे मुझे दूर कीजिए। आज जो मैं मान और अपमान में अपने जीवन को दृष्टिपात कर रहा हूँ तो मेरा अन्तरात्मा दुःखित होता है और यह कह रहा है कि मैंने जगत में माता पिता की सेवा की, मैंने जगत में नाना प्रकार का कार्य किया, उसके पश्चात भी यह जगत मुझे अपमानित किए रहता है, मुझे यह जगत ताड़ना देता है। जब यह वाक्य उनके समीप आया। आगे निवेदन किया तो भगवन! मैं ये चाहता हूँ कि मैं इतना दुःखित हूँ कि मैं संसार के वैभव को भी नहीं चाहता। तो देखो, वह मानव दुःखित कहलाता है और वह दुःखित हो करके अपनी स्थली को त्याग करके वह

जिज्ञासुओं के द्वारा जाता है और परमपिता परमात्मा की उपासना करने के लिए सदैव तत्पर हो जाता है। प्रकृतिवाद से दुःखित होने वाला जो मानव है वह अब परमात्मा के क्षेत्र में आनन्द को चाहता है।

इसके पश्चात द्वितीय प्रकार के जिज्ञासु होते हैं। जिज्ञासु वे होते हैं जिनको यह जिज्ञासा होती है कि प्रभु! यह जगत क्या है? मैं माता के गर्भ में आया, गर्भ में निर्माण वेत्ता ने निर्माण किया कौन निर्माण वेत्ता था? क्यों निर्माण हुआ? किसलिए निर्माण हुआ? मेरे जगत में आने का मन्तव्य क्या था? तो वे मानव जिज्ञासु होते हैं। जिज्ञासु अपने आचार्यों के द्वारा अपने को समर्पित करता हुआ यह कहता है कि प्रभु! मेरा इस संसार में आने का उद्देश्य क्या है? मैं यह जानना चाहता हूँ। उस समय आचार्य जो बुद्धिमान होते हैं, जो ब्रह्मवेत्ता होते हैं वे कहते हैं कि तुम्हारे आने का उद्देश्य है कि तुम किसी वस्तु से दूर हो गए थे। उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए तुम संसार में आए हो। इस मानव शरीर को तुमने प्राप्त किया है यह प्रभु ने तुम्हें दिया है। तुम्हारा आने का उद्देश्य यह है जैसे विद्युत प्रकाश दे रही है और विद्युत के प्रकाश में नाना प्रकार के प्राणी अपने प्राणों को न्यौछावर कर देते हैं। नाना प्राणी अग्नि के, विद्युत के उस प्रकाश में अपने को नष्ट कर देते हैं तो वह जो प्रकाश है वह अग्नि का प्रकाश है परन्तु वह जो प्राणी हैं जो प्राणी किसी काल में वास्तविक प्रकाश से दूर हो गए थे और वह प्रकृति के प्रकाश में आकर के अग्नि के जड़वत प्रकाश में आकर के अपने प्राणों को न्यौछावर कर देते हैं तो परिणाम क्या? इसी प्रकार मानव के जीवन का उद्देश्य है इस जगत में कि तुम किसी वस्तु से दूर हो गए थे, किसी प्रकाश से दूर हो गए थे। अब तुम उस प्रकाश के लिए आए हो उस प्रकाश को प्राप्त करो। मेरे प्यारे! हम मोक्ष में थे और मोक्ष की अवधि समाप्त होने पर हम चेतना से दूर हो गए तो आज हम उस चेतना से, उस आनन्द से दूर हो गए हैं। तो उस आनन्द की पिपासा के लिए हमारा जन्म होता है। तो ब्रह्मवेत्ता यह उसे निर्णीति कराता है और वह वाक्य उसके मस्तिष्क में आ जाता है। वह जिज्ञासा उत्पन्न करता रहता है, नाना प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न करता है, नाना प्रकार की जिज्ञासा उसके मस्तिष्क में आती रहती है और जब नाना जिज्ञासा ब्रह्म वेत्ताओं से

करता तो ब्रह्मवेत्ता उसका उत्तर देते रहते हैं।

मुनिवरों! इसके पश्चात तृतीय जो होते हैं वे अर्थार्थी होते हैं। अर्थार्थी वह प्राणी होते हैं जो यह विचार रहे हैं कि मैं कितना अर्थार्थी हूँ, मैं कौन हूँ? मेरा जो यह शरीर है, यह क्या है? यह कितने तत्त्वों से निर्माण हुआ है? वह परमात्मा के आँगन को चलने का प्रयास करते हैं।

चतुर्थ प्रकार का ज्ञानी होता है। ज्ञानी कौन होता है? जो यह जानता है कि यह जो मानवीय जगत है, यह जो रचनाकार है जिसमें मुझे वास्तविकता दृष्टिपात नहीं हो रही है। एक मानव किसी को कटु वाक्य उच्चारण करके दोष आरोपण करता है तो दूसरा मधुरता से करता है परन्तु आरोपण दोनों करते हैं। एक मधुर वाक्य से करता है और दूसरा कटुता से करता है। कटुता वाला जो प्राणी होता है उसके मस्तिष्क में अपमान और कटुता वाला जो प्राणी होता है उसके मस्तिष्क में अपमान और हिंसा दोनों एक ही स्थली में रहते हैं और जो मधुरता से अपमानित करता है उसके गर्भ में मोह होता है। उसके मस्तिष्क में एक स्थली में मोह और द्वितीय स्थली में उसकी जिज्ञासा होती है। वह ज्ञान पूर्वक उसको जानता है जो करना चाहता है।

मेरे प्यारे! ज्ञानी और अर्थार्थी का अन्तरद्वन्द्व रहता है। जो मानव अहंकार और अपमान की दृष्टि से अपमानित करता है उस मानव का तो पुण्य समाप्त होता है और जो मानव ज्ञान पूर्वक किसी वस्तु का निर्णय लेना चाहता है और उसमें अभिमान नहीं होता उस मानव का पुण्य प्रबल होता चला जाता है। परिणाम यह कि ज्ञानी पुरुष जो होते हैं वे जानते हैं कि यह मेरी माँ है, ममता है। यह भौजाई है और इसका अन्तिम परिणाम क्या है? इसको वह जानता है। आज मेरे द्वारा मोह की उपलब्धि होती है, मोह आता है तो उसका अन्तिम परिणाम क्या है? क्रोध आता है तो उसका अन्तिम परिणाम क्या है? ज्ञानी यह जानता है और जानता हुआ इनको त्यागता रहता है। ज्ञानी वह होता है जैसा मैंने इससे पूर्व काल में कहा कि अवस्था के साथ में मानव का परिवर्तन होता है। इसी प्रकार उस परिवर्तन को ज्ञानी पुरुष जानता है और उस परिवर्तन को त्यागता रहता है, उस अवस्था को जो त्याज्य है उसको त्यागता रहता है और त्यागता हुआ

ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता रहता है। जैसे योगाभ्यासी प्राणी ऋद्धि सिद्धियों को त्याग देता है। वह केवल परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्राण को और ममता (मन) दोनों का सन्निधान करने में लगा रहता है। उसमें सूर्य की किरणें आ जाएं, कोई भी पदार्थ आ जाओ उन्हें नष्ट करता रहता है मानो उन चमत्कारों को नष्ट करता रहता है। उन चमत्कारों के लोभ में नहीं फंसता। ब्रह्मवेत्ताओं ने यह कहा है कि संसार में जो द्रव्यपति हैं उनको प्रबल रूप में मत स्वीकार करो। आज जो मानव ऋद्धि सिद्धियों में, चमत्कारों में रमण करने वाला है वह कोई प्रबल नहीं है। स्वर्ण की मात्रा एकत्रित करने वाला कोई प्रबल नहीं है। चन्द्रमा में, सूर्य मण्डलों में जाने वाला प्राणी भी प्रबल नहीं है। अरे, प्रबल वह प्राणी है जो अपने को प्रभु को समर्पित कर देता है, वह प्राणी संसार में समाज में ऊर्ध्व गति को प्राप्त करने वाला है, वह ज्ञानी पुरुष कहलाता है।

ज्ञानी कौन होता है? जो प्रभु के समीप पहुंच जाता है और प्रकृति को जान करके इसके ऊपर विश्राम करने लगता है, वह प्रबल होता है, वही महान होता है। तो हमें ऐसे महान ब्रह्मवेत्ताओं के ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए। मुझे स्मरण आता रहता है पुरातन काल में राजा महाराजाओं को यह ज्ञान होता था। उन्हें इतनी महत्ता होती थी कि ऋषि मुनियों के ऊपर महापुरुषों के ऊपर विश्वास होता था। जो अपनी प्रवृत्ति को प्रभु को समर्पित कर देते हैं, उनके ज्ञान विज्ञान समीप होता है।

मैं कल के वाक्यों में तुम्हें प्रकट करा रहा था कि भगवान राम ने लक्ष्मण के द्वारा माता सीता को महर्षि वाल्मीकि महाराज! के आश्रम में प्रविष्ट कराया। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने तो मुझे यह प्रकट कराया कि उन्होंने एक शूद्र के कथनानुसार मर्यादा को रखने के लिए सीता को त्यागा और वह सीता रुदन भी करती रही, नाना प्रकार की व्याकुलता उसके द्वारा रही। परन्तु मुझे साहित्य में कहीं ऐसा प्राप्त नहीं है।

साहित्य में हमने यह श्रवण किया है कि महर्षि वाल्मीकि के यहाँ जाने का कारण यह था कि वे ब्रह्मवेत्ता थे, ब्रह्म की शिक्षा उन्हें प्रायः प्राप्त होती थी। जो माता के गर्भ में रहने वाला पुत्र था उनके आश्रम में पुत्र को उत्पन्न होने का एक मूल कारण आयुर्वेद था। मर्यादा तो उस काल में प्रविष्ट हो गई थी। जब लंका से सीता को लाया गया था।

लंका से सीता को लाना ही नहीं था और यदि लाना था तो उसको त्यागना नहीं था। यह विचार कोई महान नहीं है। यह विचार साहित्य को कलंकित करने वाला और राजाओं के राष्ट्र को कलंकित करने वाला है। महापुरुषों को कलंकित करने वाला है। केवल विचार यह है कि माता सीता आनन्दित हो करके ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में प्रविष्ट हुईं। उस समय महर्षि वाल्मीकि ने राम और रावण का साहित्य स्थिर कर दिया है। राम ने जब राजसूय यज्ञ किया तो सीता और लव कुश दोनों उनके पुत्र अयोध्या में आ गए। ऐसा भी मुझे स्मरण है कि संग्राम का भी वर्णन आता है, यह संग्राम वास्तव में प्रायः मर्यादा को विनाश के मार्ग पर ले जाने वाला है। अस्त्रों शस्त्रों में वे ब्रह्मचारी पारांगत थे, धनुर्विद्या में, शास्त्रीय विद्या में वह पारायण हो गए थे।

उसके पश्चात राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ने अपनी इच्छा से शरीर को त्याग दिया। भगवान राम ने चारों विधाताओं को पंक्ति में एकत्रित किया और यह कहा कि मैं शरीर को त्याग रहा हूँ। क्योंकि राम का जीवन तो ऋषि जीवन था। बाल्यकाल से वृद्धपन तक उनके जीवन की प्रतिभा बड़ी ऊर्ध्वमय थी। प्राणायाम करके उनकी दिनचर्या ऊर्ध्व रहती थी। वह अपने द्वारा मन और प्राण दोनों का सन्निधान करने का प्रयास करते थे। लक्ष्मण का जीवन चरित्र भी इसी प्रकार का था। भरत का भी ऐसा ही और शत्रुघ्न का भी इसी प्रकार का था। मैं तो यह कहा करता हूँ कि राम है तो भरत जैसा विधाता होना चाहिए। राम वन में हैं तो भरत उसके निचले स्थान में रहता है। एक समय महर्षि शुषेवा ऋषि उनके आश्रम में पहुंचे, वह पादुका विराजमान हैं नियम बनाने वाले मन्त्रीगण हैं और राष्ट्र के नायक बने हुए भरत हैं केवल राम की पादुका की पूजा करने के लिए। उस समय ऋषि ने कहा कि महाराज! तुम पृथ्वी के गर्भ में क्यों रहते हो? उन्होंने कहा कि महाराज! मैं इसलिए रहता हूँ कि यह जो पृथ्वी का आसन है यह मेरे विधाता राम का है और मैं राम के आसन के निचले भाग में रहना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! ऐसे विधाता होने चाहिए तो यह संसार ऊँचा बनेगा। कैसे विधाता? वे कहते हैं कि राम का आसन है मैं उसके समान आसन नहीं बनाना चाहता, मैं उनसे निचले स्थान में रहना चाहता हूँ। पर्वत ही उनकी शय्या रहती, पृथ्वी की धूली उनकी शय्या रहती, पृथ्वी की धूली

उनकी शय्या रहती। वह जीवन कितना ऊर्ध्व गति में रहने वाला है। जब मैं यह कहा करता हूँ कि जहाँ राम हो तो भरत भी होना चाहिए, राम हो तो लक्ष्मण होना चाहिए। मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है राम सदैव लगभग एक सहस्र गायत्री का जाप करते थे। वे गायत्री का पाठ वह मस्तिष्क में करते थे, शब्दों से नहीं। उनका अभ्यास इतना ऊर्ध्व में था कि वह मस्तिष्क में प्रत्येक स्थल को सहस्रों समय उसकी पुनरुक्ति करते और पुनरुक्ति करते हुए मन गायत्री में रमण करता रहता। वह गायत्री हमारे यहाँ महापुरुषों का गुरु मन्त्र कहलाता था। गायत्री सावित्री भी कहलाती है। भगवान राम लगभग सहस्रों प्रकार के गायत्री रूपों से गाते थे तो उनका जीवन ऋषि जीवन था। ब्रह्मचर्य से संलग्न उनके जीवन में किसी प्रकार की त्रुटि न थी। जब भगवान राम आदि चारों विधाता पंक्ति में विराजमान हो गए तो राम ने कहा कि हे विधाताओ! आज मैं अपने शरीर को त्याग रहा हूँ, आज मुझे माता गायत्री ने मुझे भान किया है कि तुम्हारा समय इस जगत से समाप्त हो गया है। भगवान राम ने गायत्री का पठन पाठन किया और ओइम् की ध्वनि ऊँचे स्वरों से की और ध्वनि के साथ अपने प्राणों को अपनी आत्मा को शरीर त्याग कर ऊर्ध्व गति को ले गए। वह भगवान राम का जीवन था। मैं इस सम्बन्ध में टिप्पणी नहीं करूंगा। आज का विचार विनिमय यह है कि उन्होंने अपनी इच्छा से शरीर को त्यागा। लक्ष्मण ने माता गायत्री जाप करते हुए वेद ध्वनि में रमण करते हुए यह कहा कि हे परमात्मन! मैं भगवान राम के आश्रम में रहा हूँ मैं यह चाहता हूँ कि मैं भी अपने शरीर को नहीं चाहता। उन्होंने भी उससे तृतीय दिवस प्राणाया किया और गायत्री का जपन करते हुए अपने शरीर को त्याग दिया। इसके पश्चात भरत ने त्यागा। इसके पश्चात उनके विधाता शत्रुघ्न ने त्यागा। चारों विधाताओं ने बारी बारी से अपने शरीरों को त्याग दिया। वह ऋषि जीवन होता है जो अपने अन्तरात्मा को इच्छा से त्यागने वाले हों, जिनकी अन्तरात्मा में ध्यान होता हो कि अब मैं शरीर को त्याग रहा हूँ।

मुझे स्मरण है जब हम पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा शिक्षा का अध्ययन करते थे उसके पश्चात जब प्रबल हो गए तो गुरु कुछ समय के पश्चात शरीर को त्यागने लगे तो सब

शिष्य पंक्ति में विराजमान हुए और पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि अब मैं अपने शरीर को त्याग रहा हूँ। उनकी ध्वनि हुई और अपने शरीर को त्याग दिया। वह मानव का जीवन सौभाग्यशाली होता है। हे मानव! तुम संसार के विवाद में क्यों जाते हो? तुम अपने मानव जीवन से विवाद क्यों नहीं करते। जो मानव इस संसार में अपने काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से विवाद करता है वह अपने जीवन को ऊँचा बना लेता है। वह मानव इच्छा से शरीर को त्याग करके वह परमात्मा के गर्भ में, गोद में विराजमान हो जाता है।

मेरे प्यारे! यह वाक्य आज मैं इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ क्योंकि मेरा वेद कह रहा है। मुझे बारम्बार प्रेरणा आती रहती हैं, मैं इसके आधार पर अपने विचारों को देता रहता हूँ। मैं आज अधिक विचार देने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह है कि आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए, वेद रूपी ज्ञान का प्रसार करते हुए अपने में अपना पन धारण करते हुए शरीर को त्यागते चले जाएं। हे मानव! तू अपने मस्तिष्क को इस संसार के स्वार्थवाद में और नाना प्रकार की विडम्बना में अपने मानव जीवन को नष्ट न कर। मानव जीवन का उद्देश्य है कि तू अपने प्रभु को जानने के लिए, अपनी अन्तरआत्मा को जानना ही तेरा कर्तव्य है तेरी महत्ता है। उसके पश्चात तुझे यह संसार त्रुटिमय दृष्टिपात नहीं आएगा। यह संसार तुझे यथार्थत्ता में दृष्टिपात आएगा।

यह है आज का वाक्। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार होते रहें, ज्ञान और विज्ञान में रमण करते रहें। ज्ञानी जो प्राणी है वह यह जानता है अपने जीवन के भविष्य के सम्बन्ध में क्या वह यह जानता है कि मेरे प्राणों की गति किस प्रकार की हो जाती है। ज्ञानी पुरुष वह होता है जो नक्षत्रों के विज्ञान को जानता है। जिज्ञासु ऐसा कहते हैं कि मृत्यु से पूर्व ही ध्रुव मण्डल का दिग्दर्शन नेत्रों से ओझल हो जाता है, मानो देखो, स्वाति नक्षत्र उसके पास नहीं होता। तृतीय दिवस अपनी जो चेतना है मन की उसे नेत्रों की ज्योति से वह द्वादश मण्डल को दृष्टिपात नहीं कर पाता, उसको ब्रह्म का ज्ञान होता है, वह ज्ञानी होता है और वह ज्ञान से

संसार को दृष्टिपात करता है, वह संसार की त्रुटि नहीं दृष्टिपात करता, वह संसार के द्रोह (द्वेष) का अनुवादन (उपेक्षा) करता है। गुणों को दृष्टिपात करता है। गुणों को दृष्टिपात करने वाला जो प्राणी होता है उसमें स्वार्थवाद नहीं होता और जब स्वार्थवाद नहीं होता तो मोह भी नहीं होता और जब मोह नहीं होता तो क्रोध भी नहीं होता, जब क्रोध नहीं होता तो उस ज्ञानी को आत्मा का भान होता है।

यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय कि हम ज्ञान और विज्ञान दोनों को जानते हुए हम आत्मवेत्ता बनते रहें और विचार यह कि त्रैतवाद जो हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने ज्ञानियों ने स्वीकार किया है उसी के आधार पर अपने जीवन को बनाएं अपने मार्ग वेत्ता बनते चले जाएं। हमारा जो प्रथम गुरुमन्त्र है, गुरु वचन है वह गायत्री छन्द के रूप में है। उसी के आधार पर रूढ़ियों का विनाश होता है। ज्ञान से हम विज्ञान में रमण करते रहें रूढ़ि विनाश को प्राप्त होनी चाहिए। ज्ञान और विवेक से ऊर्ध्व गति को प्राप्त होते हुए संसार सागर से पार हो जाएं। आज का हमारा वाक्य अब समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

६ 01 08 1973 पुष्प 25 आयुर्वेद की महता

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। आज का मनोहर पाठ हमारे हृदय को छूता चला जा रहा था। हमें ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे हम परमपिता परमात्मा की इस पवित्र वाणी का प्रसारण करते ही चले जाएं और वह जो आनन्दमयी माँ है उसकी ज्ञान रूपी लोरियों का हम पान करते ही रहें। यह जो ज्ञान विज्ञान रूपी वेद है यह मानव के अन्तःकरण को ऊर्ध्व बनाने वाला है। वह वेदवाणी हमारे जीवन को ऊर्ध्व और मानवता में परिणित करती चली जा रही है। जहाँ हम उपसंहार करते हैं वहाँ हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इसका उपसंहार न हो। जैसे हमारे उदर की जब पूर्ति हो जाती हैतो माता को पवित्रमयी, आनन्दमयी, जीवनमयी पवित्रता हमारे में धारण हो रही है, वह जो परमपिता परमात्मा है वह उपास्य देव है, हम उसकी उपासना करते रहते हैं।

वेद मन्त्रों के द्वारा हम उस प्रभु की प्रतिभा का वर्णन करते रहते हैं। प्रभु की जो प्रतिभा है वह प्रकृति के कण कण में दृष्टिपात आती है।

हमारे यहाँ महर्षि भारद्वाज मुनि आश्रम में एक त्रेता नाम के ब्रह्मचारी रहते थे। उनकी विज्ञान में बहुत ही गति थी और वह अग्नि के परमाणु, जल के परमाणु और पृथ्वी के परमाणुओं पर उनका बड़ा अधिपथ्य रहता था। एक समय वे विज्ञान में उड़ान उड़ रहे थे और वे गुरु यान का निर्माण कर रहे थे तो निर्माण करते हुए चित्त की जो प्रतिभा थी वह उसके मस्तिष्क में आने लगी और उसने यह कहा कि यह जो परमाणु है, इन परमाणुओं का हम मिलान कर रहे हैं, हमने इसमें अग्नि के परमाणुओं की पुट अधिक लगाई है, वायु के परमाणुओं की पुट इससे भी ऊर्ध्व गति में है, पार्थिव परमाणुओं की पुट न्यून है, इसी प्रकार जल के परमाणु हैं। अब उस ब्रह्मचारी के हृदय में यह वाक्य आया कि इन परमाणुओं का निर्माणवेत्ता कौन है? जिन परमाणुओं को हम एक दूसरे से मिलान करते हैं हम मान लेते हैं कि ये स्वाभाविक हैं जैसे सन्निधान हुआ तो वह स्वाभाविक जागृत हो गया। यदि किसी चेतना का सन्निधान न होता तो यह कैसे चेतनित हो सकते थे। यह ब्रह्मचारी के मस्तिष्क में आया। उस विज्ञानवेत्ता ने जब यह निर्णित करना प्रारम्भ कर दिया कि इसे वास्तव में हम निर्माण तो कर रहे हैं परन्तु इसका मूल निर्माणवेत्ता कौन है? तो ऋषि का बालक इस विचार से मौन हो गया और अपने अंतरात्मा से यह आग्रह करने लगे कि हे मेरे शरीर में रहने वाले अंतर चैतन्य। जो मुझे प्रेरणा दे रहा है, हे देव! तू मुझे यह और निर्णय करा कि इसका मूल क्या है? अब वह कार्य त्याग दिया और शान्त मुद्रा में विराजमान हो गए। जब चित्त शान्त हो गया, अहंकार की मात्रा भी समाप्त हो गई यह मन जब चित्त में परणित हुआ तो चित्त का आत्मा से सन्निधान होता है। जब आत्मा का सन्निधान होता है तो चित्त की प्रेरणा मन के द्वार पर जाती है। अब चित्त से यह प्रेरणा आई कि हे देव! यह तो परमाणुओं का निर्माणवेत्ता है वह चेतना है, उस चेतना का नाम ही ईश्वर कहा जाता है, उस परमात्मा का नाम सर्वशक्तिमान कहा जाता है।

जब यह प्रेरणा आई उसके चित्त से तो मनीराम के द्वार पर आ करके ब्रह्मचारी को

निश्चय हो गया कि यदि हम इस प्रकृति के जितने सेवक बने हैं अपने मन, तन और चित्त के प्रेरित होते हुए यदि हम परमपिता परमात्मा जो इसका निर्माणवेत्ता है यदि हम इसके सेवन बन जाते, यदि उसे हम अपने को समर्पित कर देते तो यह विज्ञान हमारे लिए कितना सहज हो जाता। ब्रह्मचारी इतने विश्वास में आ करके वह वहाँ से अपने कार्य को त्यागकर यज्ञशाला में प्रविष्ट हुआ। वहाँ महर्षि भारद्वाज विराजमान थे। भारद्वाज ने कहा बोलो ब्रह्मचारी! तुम्हें जितना कार्य मैंने निर्णीत किया था वह निर्णीत किया? ब्रह्मचारी बोला प्रभु! मैंने किया तो है, परन्तु मेरा अन्तरात्मा तो यह कह रहा है कि मुझे अपने को प्रभु को समर्पित कर देना चाहिए। महर्षि भारद्वाज ने कहा हे ब्रह्मचारी! यह जो तुम कार्य कर रहे हो प्रकृति विज्ञान का इसको भौतिकवाद तो कहते ही हैं परन्तु इसकी जानकारी तुम्हारे मस्तिष्क में होनी चाहिए और क्रियात्मक भी तुम्हारे मस्तिष्क में होना चाहिए। उसके पश्चात तुम प्रभु का विज्ञान भी क्रियात्मक जानने का प्रयास करो। ब्रह्मचारी ने आश्चर्य के इन शब्दों को ग्रहण किया और यानों में परणित हो गया और यानों का निर्माण करने लगे।

इस सम्बन्ध में ऋषि ने ऐसा कहा कि हम जब यज्ञशाला में विराजमान होते हैं तो हमारे द्वारा यन्त्र होते हैं और वे यन्त्र वायुमण्डल में से परमाणु को लेते हैं और उन परमाणुओं को एकत्रित करते हैं उन परमाणुओं से हम यानों का निर्माण करते हैं। ब्रह्मचारी जी ने कहा कि मैं सूर्य मण्डल में जाना चाहता हूँ। सूर्य मण्डल में जाने के लिए छह भौतिक यानों का निर्माण करते हैं तो उन्होंने जब यान का निर्माण किया तो सबसे प्रथम एक भाग उन्होंने पृथ्वी के परमाणुओं का लिया और उससे दुगना भाग जल के परमाणुओं का लिया और चौगुना भाग अग्नि का लिया, अब तीनों प्रकार के परमाणुओं को लेकर के परमाणुओं का विभाजन किया। जब विभाजन किया तो उन्होंने एक जाति की तरंगें उत्पन्न की, उनका मिलान करके तरंगें उत्पन्न कीं और द्रव्य एकत्रित किया। स्थूल परमाणुओं का द्रव्य बनाया इसी धातु से उन्होंने यानों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया। जब निर्माण किया तो अब उसमें चौगुनी गति केवायु के परमाणु ले करके पुट लगाई और अन्तरिक्ष के परमाणुओं को लेकर के उस यान में विराजमान हो गए। विराजमान

हो करके वह यान प्रारम्भ होने लगा, वह वायु में त्याग दिया गया। जब वायु मण्डल में वह यान गति करने लगा तो एक स्थूल यान (यन्त्र) पृथ्वी पर है और एक यान जो विज्ञानशाला में है वह गति कर रहा है। उसकी छाया निचले यन्त्र में आ रही है। जब वह चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में पहुंचा तो उसमें छाया आ रही है, वह मंगल के ऊर्ध्वगति के स्वेतकेतु नक्षत्र के ऊपरले कक्ष में पहुंचा तो स्वेतकेतु नक्षत्र के ऊपरले भाग में द्यु आस्वात्तन नक्षत्र है, उससे ऊर्ध्व गति में पहुंचा तो सप्त ऋषि मण्डल है। उससे भी ऊर्ध्व गति में पहुंचा तो उससे आगे सूर्य मण्डल की छाया आ जाती है, सूर्य मण्डल कक्ष से भीदूरी हो जाता है तो उससे आगे बृहस्पति, आरुणि इत्यादि मण्डलों का क्रित आने लगता है तो वह ध्रुव यानों में सफल होता है। इसी प्रकार एक वैज्ञानिक सूर्य मण्डल में जाना चाहता है तो उसे अग्नि के परमाणुओं को अधिक लेना होगा क्योंकि जिस लोक में जो तत्त्व प्रधान है उसी तत्त्व के परमाणु अधिक ले करके उसके यान का निर्माण करना होता है।

यह तो सर्वत्र सिद्ध है कि पञ्च महा भौतिक जो परमाणु हैं वह सर्वत्र लोकों में भ्रमण करते हैं जैसे सूर्य मण्डल में जाओ तो वहाँ अग्नि तत्त्व प्रधान है, वहाँ पार्थिव भी है, जल भी है, वायु भी है परन्तु जैसे पृथ्वी में पार्थिव तत्त्व प्रधान हैं। इसी प्रकार उसमें अग्नि प्रधान है। जिस भी लोक में तुम रमण करोगे, जिसमें गति करना चाहते हो उसी प्रकार के परमाणुओं की तुम्हें जानकारी करनी होगी। अब विचार यह आता है कि हमयह कैसे जानें कि कौन से लोक में कौन सा तत्त्व प्रधान है। जैसे सूर्य है उसमें ताप अधिक है, ताप के नाते उसमें अग्नि अधिक है। जैसे चन्द्रमा है उसमें शीतलता है तो उसमें वायु और जल की प्रधानता दोनों हैं परन्तु प्रधानता तो जल तत्त्व की मानी जाती है परन्तु वायु की और तत्त्वों की अपेक्षा पुट अधिक होती है। जैसे मंगल है तो मंगल में यह सिद्ध हो जाता है क्योंकि शान्त मुद्रा को दृष्टिपात करके उसके लोक में जब यान जाता है तो उसके मार्ग में धूल आती है, उसके मार्ग में पृथ्वी के परमाणु पृथ्वी के अवशेष आने प्रारम्भ हो जाते हैं तो उससे यह सिद्ध हो गया कि वहाँ पार्थिवता अधिक है। इस प्रकार लोकों की गतियों में वैज्ञानिक जन इस प्रकार जाने का प्रयास

करते हैं।
उस ऋषि बालक ने नाना प्रकार के लोकों में जाने के यानों का तब निर्माण किया और अन्त में उन यानों के निर्माण करने वाले विज्ञानवेत्ताओं ने यह विचारा अन्त में कि वह जो प्रभु है जो विज्ञानमय है, जिसका यह जगत निर्माण किया हुआ है, उसमें जो लोक लोकान्तरों की जो रचना है इसीलिए वह निर्माण करने वाला है, नियन्ता कहलाता है। उसे हमें अपने मनस्तत्व को समर्पित कर देना है क्योंकि उसके इस भौतिकवाद, इस विज्ञान की अपेक्षा यदि हम परमात्मा को जानेंगे तो यह विज्ञान हमारे लिए न होने के तुल्य हो जाएगा। इस विज्ञान में कोई वास्तविकता नहीं है। आज हमने यह निर्माण किया है, भौतिकवाद में हमारा मस्तिष्क है, उसमें हमें अभिमान की मात्रा जागरूक हो गई। अभिमान आ गया तो हमारे ऋषि मुनियों ने यह कहा यदि मानव अभिमान करेगा तो तेरी मृत्यु हो जाएगी हे मानव! यदि तेरे में अहंकार आ गया तो तेरी मृत्यु हो गई। हे मानव! तेरे मस्तिष्क में क्रोध् की मात्रा अधिक आ गई तो तेरी मृत्यु हो गई। तो ऋषियों ने यह कहा है कि शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं है क्योंकि इसका जो निर्माण हुआ है, परमाणुओं का संघात हुआ है, परमाणुओं का जो मिलान होता है उसका जब विच्छेद होता है तो वह तो स्वभाव है प्रकृति का। वह जो परमाणु सुगठित हुए हैं उनका बिखरना बहुत अनिवार्य है।
मैंने कल भी इस विवेचना को किया था। आज मैं अधिक विवेचना नहीं दूंगा। मृत्यु क्या है? जिस कर्म के करने के पश्चात जिस अवगुण के करने के पश्चात तुम्हारा अन्तरआत्मा तुम्हें धिक्कारने लगे वह तुम्हारी वास्तविक मृत्यु है। वह वास्तविक मृत्यु इसलिए है क्योंकि उन्हीं संस्कारों से, उन्हीं विचारों से हमारा आवागमन बनता है। इसी से पुनरुक्ति मरण और पुनरुक्ति जीवन प्रायः ऐसा हो जाता है। तो हमें विचारना है कि हम भौतिकवाद को जानें। मैं इसका विरोधी नहीं हूँ, परम्परा से हमारा जन्मसिद्ध अधिकार रहा है।
मुनिवरों! देखो,! महर्षि बाल्मीकि के आश्रम की विवेचना करता चला आ रहा हूँ। महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में राम के दोनों पुत्र लव और कुश थे, विज्ञानशाला भी उनके द्वारा

थी। यानों के निर्माण होते। हमारे वैदिक साहित्य में वह जो परमात्मा की वेद रूपी वाणी है उस वाणी में यह भौतिकवाद, परमाणुवाद, अग्निवाद, सर्व विद्या उसमें ओत प्रोत है। यदि कोई महापुरुष जन या हम भी विज्ञान का दुरूपयोग करेंगे तो वे परमपिता परमात्मा की विज्ञानमयी वाणी का अपमान है। क्योंकि उसकी वेदवाणी कहती है कि हे मानव! तू वैज्ञानिक बन परन्तु यह भी कहती है कि जैसे तू भौतिकवाद में संलग्न हो करके जानता है इसी प्रकार तू आत्मा को भी अपने शरीर में भासने वाले को अच्छी प्रकार जान।

मेरे प्यारे! वेद यह ही घोषणा करता है। वेद कहता है हे मानव! तू उड़ान को उड़ने वाला बन। कैसी उड़ान? तेरी आयुर्वेद में गति होनी चाहिए। आयुर्वेद किसे कहते हैं? जो आयु का प्रकाश है, उसे आयुर्वेद कहते हैं। क्योंकि आयुर्वेद से ही वह (आयु) ऊर्ध्व बनती है। ऊर्ध्व बनने वाले तुम कर्म करोगे तो तुम्हारा जीवन वास्तव में पवित्रता को प्राप्त होता रहेगा।

हमारे यहाँ अश्विनी कुमार दो वैज्ञानिक हुए जो आयुर्वेद पारंगत थे। महर्षि दधीचि द्वारा उन्होंने ब्रह्म विद्या का अध्ययन किया। तो यह जो विद्याएं हैं जो आयुर्वेद है, ब्रह्म विद्या है, दोनों का समन्वय हो करके हमारा जीवन विवेकी बनता है। आज जो मानव आयुर्वेद को जानता है और वह ब्रह्म विद्या को नहीं जानता तो आयुर्वेद में अधूरापन रहता है। जो ब्रह्मवेत्ता है वह ब्रह्म को जानता है, ब्रह्म के जानने वाले के गर्भ में आयुर्वेद नृत्य करता रहता है। आयुर्वेद को जानने वाला जो पंडित है, ब्राह्मण है उसके गर्भ में ब्रह्म नहीं रहता और ब्रह्म के जानने वाले के गर्भ में आयुर्वेद रहता है क्योंकि ब्रह्म में सर्व विद्याएं हैं और जो ब्रह्म के विमुख हो करके अध्ययन करता है तो उसमें ब्रह्म नहीं भासता। इसलिए ब्रह्म का ज्ञान होना, विवेक होना दोनों प्रकार की विद्या का अध्ययन करने के लिए कहता है।

मेरे प्यारे! महात्मा अश्विनीकुमारों, ने दोनों ने आयुर्वेद का अध्ययन किया। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, ऐसा ऋषि मुनियों ने वर्णन कराया। पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते थे जब वह निद्रा में तल्लीन होते और निद्रा से जब वह स्वप्न में जाते तो मन ऐसा दृष्टिपात होता

जैसेमन औषधियों को चरने जा रहा हो। चरने का अभिप्राय यह कि औषध्यिं को एकत्रित करने जा रहा हो। जब अश्विनीकुमार जागरूक होते तो मन उन्हें यह निश्चित करा देता कि अमुक औषधि अमुक रोग में कार्य करती है। उन्हें आयुर्वेद में इतना अभ्यास था। इसी अभ्यास के कारण वे आयुर्वेद के पंडित कहलाते थे। उन्होंने एक सौ एक वर्ष तक आयुर्वेद पर अनुसन्धान किया। आयु कैसे ऊँची बनती है। आयु के ऊपर उन्होंने बहुत ही बल दिया। उसके पश्चात नाना आयुर्वेद के पंडित हुए।

आयुर्वेद का जो सम्बन्ध है वह चन्द्र विज्ञान से है। क्योंकि चन्द्रमा औषधियों में रस प्रदान करने वाला है, रस को भरण करने वाला है और उससे अधिक जो सम्बन्ध है वह सूर्य से है। क्योंकि सूर्य उनको तपाता है। जैसे रस का भरण करना चन्द्रमा का कार्य है इसी प्रकार तपाने का कार्य सूर्य का है। अब जब सूर्य तपा देता है तो उससे गति अप्रेत वायु में मानी जाती है। जो वायु है वह तपे हुए को शुष्क बना देती है, आस्थापन कर देती है। और वायु चन्द्रमा को पुनः परमाणु दे करके उन्हें पुनः रस का भरण करके जल का उस औषधि का आश्रय ले करके हम जल के द्वारा शोधन करते हैं। कुछ औषधिएं अग्नि के द्वारा शोधन होती हैं। वह एक मूल औषधि बन करके मानव की आयु प्रबल होती है। श्वास की गति में धीमापन आता है, मन में शान्ति आती है क्योंकि औषधियों को हमारे यहाँ सोम कहते हैं। आयुर्वेद पंडित यह कहता है कि हे मानव! यदि तू अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहता है, तू अपने जीवन को आयुष्मान बनाना चाहता है तो तेरा मन प्रसन्न रहना चाहिए। क्योंकि मन का सम्बन्ध चन्द्रमा से है और चन्द्रमा से मन रस लेता है और मन के ही कारण यह पृथ्वी में औषधि हैं। इन औषधियों का मन से सम्बन्ध है इसलिए मन अधिक से अधिक प्रसन्न रहना चाहिए।

अब मन कैसे प्रसन्न रहेगा विचारना यह है। देखो, मन दो प्रकार से प्रसन्न रहता है एक तो उल्लास से होता है जो मैं कल उच्चारण कर रहा था। उल्लास कैसे होता है? जैसे एक मानव का मानव से मिलन हुआ जिससे कभी विच्छेद हो गया था, तो मन उल्लास से उल्लसित होता है। उससे भी मानव प्रसन्न हो जाता है, परन्तु उसके चले जाने के पश्चात वियोग हो जाएगा तो वह मन का कोई अति प्रसन्न होना नहीं है। यह तो क्षणिक प्रसन्न

होना है और क्षणिक वियोग में आना है। मानव को चाहिए कि उस आनन्द को प्राप्त करना है जिससे मन का चित्त से सम्बन्ध है और जब मन चित्त को सान्त्वना दे देता है। जैसे मैं चित्त की विवेचना कर रहा था जिसमें जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान रहते हैं उस स्थली को हमारे यहाँ चित्त कहा जाता है क्योंकि चित्त भी मन की एक दशा है, एक मन का ही स्वरूप माना जाता है जैसा मैंने कल के वाक्यों में कहा। इसको प्रसन्न करने के लिए हमें ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान होना चाहिए जो किसी भीकाल में हमारे अन्तरात्मा से वह जाने वाला न हो। उसका वियोग न हो तो ऐसा ज्ञान प्रभु का चिन्तन है जो सदैव बना रहता है और मन उसके आँगन में, उसके उल्लास में प्रकाशित रहता है तो चित्त प्रसन्न रहता है।

मानो एक मानव के हृदय में गति अशुद्ध हो गई है, गति मन्द हो गई है तो वह गति मन्द क्यों हुई? उसका मूल कारण क्या बनता है? उसके हृदय की गति उस काल में मंद होती है जब उसकी बाह्य भावना अधिक बलवती हो जाती है, बाह्य कामना अधिक बलवती हो गई और कामना की पूर्ति नहीं होती तो वहाँ क्रोध और मोह दोनों एक गृह में आ जाते हैं। एक ग्रह में आकर के वह मन के एक स्थल में आ जाते हैं। अब मन जो संसार में इस मानव शरीर में विभाजन करता था, वह जो प्राण का विभाजन करता था प्राण से मिलन नहीं होता, जब उसका प्राण से मिलन नहीं होता तो उसका परिणाम यह होता है कि मानव के हृदय की गति मंद हो जाती हैं। जब हृदय की गति मन्द हो जाती है तो उसे हमें पुनः से चेतना में लाना है। अब चेतना में लाने के लिए हमें क्या उपाय करने हैं? हमें कौन सा रस स्वादन करना है? कौन सी औषधि का पान करना है? हमें उस वस्तु का पान करना है जिससे वह क्रोध और ममता जिसको मोह कहते हैं उन दोनों का पृथक पृथक हो जाए।

वह औषधि कौन सी है? वह जो औषधि है वह सबसे प्रथम तो ईश्वर का चिन्तन है। जब प्रभु का चिन्तन आ जाता है तो जैसे सूर्य के उदय होने पर रात्री नष्ट हो जाती है, चन्द्रमा भी शून्यवादी बन जाता है, न चन्द्रमा भासता है न अन्धकार रहता है। इसी प्रकार जब मन और प्राण दोनों की सहकारिता में जब तुम प्रभु को अपना आश्रित बना

लोगे तो अहंकार और अभिमान, क्रोध तीनों पृथक पृथक हो करके मानव के हृदय की गति स्वस्थ बन जाती है। सबसे प्रथम औषध तो यह है। हमारे शरीर में जो पात बना हुआ है जिसको ब्रह्मरूपी औषध को चरते हैं। सबसे प्रथम तो उसे चरना है और यदि हमें भौतिक औषधियों का पान करना है, इन औषधियों को नहीं ला सकते तो हमें उन औषधियों को लाना होगा जिससे प्राण की गति तीव्र हो जाए और मन की गति धीमी बन जाए। मन की गति धीमी बन करके प्राण के द्वारा मिलान करने लगे तो हृदय में पुनः गति आ जाएगी। परिणाम यह है कि हमें आयुर्वेद को लाना है। आयु का जो सबसे प्रथम वेद है यह ऋग्वेद का उपदेव है, प्रकाश है उसको लाना है। अब प्रकाश है ज्ञान। जब ज्ञान रूपी प्रकाश मानव के समीप आ जाता है तो यह जो अन्धकार है, यह जो क्रोध की मात्रा है यह मानव की लुप्त हो जाती है।

मेरे प्यारे! जिसके हृदय की गति मन्द हो जाती है उसमें चंचलता अधिक हो जाती है और चंचलता कैसी कि वह किसी की वाणी को सहन नहीं कर पाता। कटुता की प्रतिभा उसमें आ जाती है। वह कटुता की आभा नहीं आनी चाहिए। इस कटुता की आभा में उत्तर प्राप्त होता है तो हृदय की गति और मन्द होने की सम्भावना रहती है। इसलिए मैं यह कहा करता हूँ कि संसार में वह गति नहीं होनी चाहिए क्योंकि हृदय की गति का जो प्रारम्भ होता है वह उस काल में होता है जब मानव का मन अशान्त है और मन की अशान्ति में मानव शरीर का जो विवाद, जो शरीर में शासन कराने वाला ब्रह्मचर्य है वह ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है, ब्रह्मचर्य के नष्ट होने पर मानो धातु के चले जाने पर मन में निराशा उत्पन्न हो जाती है। जब मन में निराशा आ जाती है, ह्रास आ जाता है तो मन प्राण से मिलन नहीं कर पाता। इसलिए हृदय की गति प्रायः मन्द हो जाती है। मन में जो गति है, यह ममता है वह ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसलिए जिनको हृदय की ऊर्ध्व गति को बनाना है और मन्दता को समाप्त करना है उन्हें अधिक से अधिक मौन रहना चाहिए, वाणी से मौन रहना चाहिए, आत्मा का चिन्तन होना चाहिए और उन्हें एकान्त में अपना कार्य को सदैव सुचारू रूप से करना चाहिए। ऐसे मानव का हृदय सदैव गतिमान बन करके ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो जाता है। उन्हें अधिक

से अधिक औषध का पान करना है तो उन्हें संयम इत्यादि का सेवन करना चाहिए जैसे आयुर्वेद में आता है कि संयम का पात बनाना चाहिए जैसे (1) वट वृक्ष है, (2) पीपल वृक्ष है, (3) शमी वृक्ष है, (4) स्वाति है, (5) वेलान्तरी वृक्ष है और (6) बेलपत्र वृक्ष है इनको पंचांगों को पान करना चाहिए।

अब पंचांग किसे कहते हैं? पंचांग कहते हैं प्रत्येक वृक्ष की पांचों वस्तुओं को ले लेना चाहिए। उनको एक सन्तुलन करके अग्नि में तपा करके उनका पात बना करके एकत्रित कर लेना चाहिए और जब सूर्य उदय होता है तो जैसे एक स्वाति धातु है जिस सूर्य की किरणें आकर के प्रतिबिम्ब बन जाती हैं, उस धातु में अनेक रंग की अनेक किरणें होती हैं, उसी किरण से हमारे शरीर में जिसकी प्रधानता से हृदय की गति मन्द हो गई है जैसे (1) पित्त प्रधान है, (2) वायु प्रधान है, (3) कफ प्रधान है इन तीनों में से कोई भी प्रधानता को प्राप्त हो गया तो वह मन के सुचारू रूप से कार्य न करने पर हुआ है, उसी प्रकार उसी रंग का उस दर्पण में उसी प्रकार का लेपन करके उसे सूर्य की किरणों से साथ साथ मानो जल (जाल) को सबसे प्रथम अग्नि में पंचांग बनाना चाहिए। फिर सात दिवस तक सूर्य में उसको तपाना चाहिए। उसे हमें लगभग 40 दिवस तक या 101 दिवस तक उसे पान करना चाहिए जिससे हृदय की गति मन्द से चैतन्य में आ जाए।

मेरे प्यारे! मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देना नहीं चाहता हूँ कि कौन कौन से वृक्ष का पंचांग होना चाहिए। जैसे (1) पीपल का वृक्ष है, (2) शमी वृक्ष है, (3) स्वाति वृक्ष है, (4) चेताम वृक्ष है, (5) वट वृक्ष है। इन नाना वृक्षों के सभी की पांचों वस्तुओं को लेकर के इनको सन्तुलन करके इसे अग्नि में तपाना चाहिए और पात बनाना चाहिए। उसे फिर सूर्य की किरणों में सात दिवस तक तपाते रहो। वह हृदय की गति को तीव्र बनाता है। आज मैं आयुर्वेद में जाना नहीं चाहता। मैंने बहुत कुछ आयुर्वेद परम्परा में अध्ययन किया था वह आज मुझे इतना स्मरण भी नहीं होता। परन्तु वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज हम अपने प्यारे प्रभु के उस विज्ञानमय जगत को जानना चाहते हैं परन्तु यह जो विज्ञान है यह प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में होना चाहिए।

हमारे यहाँ परम्परा में जितने आचार्य थे वे शिक्षालयों में ब्रह्मचारियों को शिक्षा देते हुए आयुर्वेद का अध्ययन कराते थे।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है जब हम पूज्य गुरुदेव आश्रम में प्रविष्ट हुए और हमने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि महाराजा! हम ब्रह्म विद्या को पान करना चाहते हैं और जिज्ञासु बनना चाहते हैं। उस समय हम आश्रम में सात ब्रह्मचारी थे और सातों ने जब अपनी जिज्ञासा प्रकट की तो पूज्यपाद गुरुदेव कहीं से औषधि लाए और औषधि लाकर के उसका मस्तिष्क पर लेपन किया। लेपन करने से पूज्यपाद गुरुदेव ने मस्तिष्क का अध्ययन किया और अध्ययन करने से उन्हें ज्ञान हो गया कि वास्तव में इनको ब्रह्मवेत्ता बनने को पिपासा है। उसके पश्चात उन्होंने अपने आश्रम में स्थली प्रदान की। फिर हम पूज्यपाद गुरुदेव से अध्ययन करने के पश्चात सेवा करते रहते, उनके चरणों की वन्दना करके उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयास करते। आयुर्वेद के पंडित जानते हैं, वे आचार्य जानते हैं कि वे कौन कौन सी औषधियां होती हैं। स्वाति नाम की औषधि होती है (1) स्वाति, (2) भृंगणी, (3) अनुवादन (4) स्वेतकेता, (5) अर्वभृति मानो ये औषधियां होती हैं। इनको ला करके स्वेतकेतु में वह देखो, (6) चन्दन और (7) तालिस पत्र उन सबको अग्नि में तपाते हैं और तपाकर के शीतल करके जैसे तिलक आंगित करता है इसको इस रूप में लाया जाता है और इन सब औषधियों को लेकर के मस्तिष्क पर जब इसका लेपन करते तो मस्तिष्क के गढ़े में गति होती है, उसके श्वांसों में घ्राण में और चक्षुओं में और श्रोत्रों में गति होती है। एक रात्रि और एक दिवस तक उन औषधियों का तीन चार समय लेपन होता है तो एक रात्रि और एक दिवस में आचार्य यह निर्णय कर देता कि यह कौन से वर्ण में जाने वाला बालक है। तो यह आयुर्वेद परम्परा से बहुत ऊँचा रहा है। इसके आधार से वर्ण व्यवस्था का निर्माण होता, उससे राष्ट्र ऊँचा बनता है, राष्ट्र में वर्ण व्यवस्था ऊँची बनती है, वहाँ जातीयता नहीं होती क्योंकि मुझे मेरे प्यारे! महानन्द जी ने निर्णय कराया कि महाभारत काल के पश्चात समाज में जातीयता आ गई। यह जातीयता जिस काल में आती है वह काल रक्त भरी क्रान्ति का होता है, उस काल में समाज में शान्ति की स्थापना नहीं होती। वर्ण व्यवस्था जो

होती है वह कर्म गुणों के आधार पर होती है। गुण कर्म का निदान करने वाले आचार्य होते हैं। आचार्य सर्व विद्या वाले होते हैं।

वर्ण व्यवस्था की जब राष्ट्र में स्थापना हो जाती है तो राजा के राष्ट्र में ब्राह्मण भी होते हैं, क्षत्रिय भी होते हैं, वैश्य भी होते हैं और शूद्र भी होते हैं। ये चारों अपने अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। विज्ञान भी होता है तो वह भी कर्तव्य की सीमा में होता है। जहाँ कर्तव्य होता है वहाँ राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति नहीं होती और वहाँ राष्ट्र की भी कोई विशेष आवश्यकता किसी काल में नहीं रहती। तो विचार यह कि हमारे यहाँ बुद्धिमान ज्ञानी पुरुष होने चाहिए और सर्वत्र विद्या के अध्ययनशील प्राणी होने चाहिए जिससे जीवन में एक महत्ता की स्थापना हो जाए। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझसे यह कहा करते थे कि हे बालको! हे ब्रह्मचारियो! आज जैसे तुम याजिक हो और वाद करते हो मानो याजिक पुरुषों का अकल्याण का अध्ययन नहीं करना चाहिए। पुरातन काल में जब हम अध्ययन करते थे तो हम पाठन का कार्य भी करते थे तो लगभग 40 40 वर्षों तक किसी सुन्दरी का दर्शन भी नहीं होता था। इससे हमारे मन में अशुद्ध संस्कार आते नहीं थे। केवल अध्ययन का ही कार्य चलता रहता। जब हम उसके उपराम होते गृहस्थ में रहते तो अकल्याण के पठन पाठन की प्रक्रिया को वे यह कहा करते थे कि इसका अध्ययन करना तुम्हारे लिए दुष्कर है। तो अकल्याण की पोथी को अध्ययन करने से मानव का अकल्याण होता है वह भी अध्ययन है जो कुअध्ययन है और जो धर्म शास्त्रों का ऋषि मुनियों के जीवन का अध्ययन करता है, उससे मानव में प्रेरणा आती है और वह जो प्रेरणा है वह मानव के दबे हुए संस्कारों को उदबुद्ध कर देती है। उसके पुण्य के संस्कार उदय हो जाते हैं और मानव का जीवन कृत कृत्य हो जाता है। जो अकल्याणकारी अध्ययन है वह कुअध्ययन है जिससे बुद्धि में वासना की वार्त्ता आती रहती है और जो वासना है वह मानव के पुण्यों को भी नष्ट कर देती है और पापों को एकत्रित करके आहार भी उसका अशुद्ध हो जाता है, उसकी प्रवृत्ति भी चंचल हो जाती है और मानव जीवन की जो निश्चिन्तता है वह सब समाप्त हो जाती है जो परिणाम कि

अकल्याण का अध्ययन नहीं होना चाहिए, वह कुअध्ययन है।

मुनिवरों! जब प्रातःकाल होता तो हमारे आचार्य यज्ञ कराते, यज्ञ में जो मन्त्रार्थ होते उससे ऐसा प्रतीत होता जैसे देवता यहीं विराजमान हैं। उसके पश्चात अध्ययन होता, उस अध्ययन में सुगठितता होती। आज कोई मानव यह उच्चारण करने लगता है कि यज्ञों में मेरी रूचि होनी चाहिए परन्तु रूचि उस काल में होती है जब हे मानव! तेरे सात्विक संस्कार होंगे। यदि असात्विक विचारों से याज्ञ भी करता है तो वह जो याज्ञ है वह तुम्हारे लिए विपरीत हो करके तुम्हारे सुकृत को नष्ट कर देता है। यही मत जानो कि यह जो याज्ञ है यह तुम्हें पुण्य ही पुण्य उपलब्ध करेगा, नहीं यज्ञ पापों को भी प्रदान कर सकता है। मैं याज्ञ में नहीं जाना चाहता हूँ परन्तु मैं यह उच्चारण करने जा रहा हूँ कि आयुर्वेद भी हमारा याज्ञ है, ब्रह्म विद्या भी याज्ञ है इसका हमें अध्ययन करना चाहिए, इसको हमें क्रिया में लाना चाहिए।

मेरे प्यारे! मैं अब इस वाक्य पर जाना चा रहा था कि कल मैंने कुछ वार्त्ता अधूरेपन में परणित की थी। जब बाल्मीकि आश्रम में माता सीता प्रविष्ट हो गईं तो वे बालक युवा होने लगे, आयुर्वेद की विद्या में पारायण हो गए। जब महाराजा राम ने अश्वमेध याग किया तो उस याग में अश्वमेध के घोड़े को छोड़ने का प्रचलन था जैसा नियम है। उसको किसी ने अंकित नहीं किया। परन्तु उन दोनों पुत्रों! ने अंकित कर लिया। माता सीता ने उनसे कहा पुत्र! ये भगवान राम तुम्हारे पिता मेरे स्वामी का यह अश्व नाम का पशु है, यह अश्वमेध याग का है बाल्मीकि पर उसका निमन्त्रण आया है। तब उन्होंने यह कहा कि अब हम बालक शिक्षा में उत्तीर्ण हो गए हैं। मेरे प्यारे! हनुमान उनके महामन्त्री और लक्ष्मण ये दोनों भ्रमण करते हुए बाल्मीकि आश्रम में आए और उन दोनों पुत्रों! को गमन करके माता सीता से प्रार्थना की हे माँ! अब तू राष्ट्र गृह में चल, तू राज लक्ष्मी है। हमारा उद्देश्य पूर्ण हो गया है क्योंकि जब यह बालक तुम्हारे गर्भ में था तुम्हारी जो गति थी तुम्हारे हृदय का जो एक भाग था, मानो शरीर का एक भाग रुग्ण हो गया तो हमने इस भय से कि तुम्हारा यह रोग शान्त हो जाएगा बाल्मीकि आश्रम में छोड़ा था तो अब वह पूर्ण हो गया है अब तू राष्ट्र गृह में प्रविष्ट हो। माता सीता ने

इस वाक्य को स्वीकार कर लिया।
मेरे प्यारे! देखो, महामन्त्री हनुमान और वे दोनों बालक गमन करते हुए अयोध्या में आए। अयोध्या में आ करके सीता ने राम चरणों को स्पर्श किया और स्पर्श करके राजेश्वरी याग (अश्वमेध याग) हुआ और उस याग में राम और सीता दोनों यज्ञमान बने और उनका याग पूर्ण हुआ। पूर्ण होने के पश्चात् माता सीता ने यह कहा कि हे भगवन! अब तुम्हारा यह याग पूर्ण हो गया है, आचार्य के कुल में मैंने कुछ पुत्रेष्टि याग भी पूर्ण कर लिया और आपका राजेश्वरी याग (अश्वमेध याग) भी पूर्ण हो गया परन्तु अब मुझे यह भान हो रहा है कि याग पूर्ण हुआ और आज से सातवें दिवस मेरी मृत्यु हो जाएगी। माता सीता ने याग की पूर्ण आहुति के सातवें दिवस शरीर को त्यागा। जैसा मैंने कल कहा उसके सातवें दिवस भगवान राम ने शरीर को त्याग दिया, तृतीय दिवस लक्ष्मण ने त्यागा। बारी बारी उन पांचों ने शरीरों को त्याग करके किसको राज्य का विधाता अधिराज बनाया गया? मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि मेरे प्यारे! महानन्द जी ने किसी काल में ऐसा कहा कि सीता पृथ्वी में समाहित हो गई, प्रायः उसी को समाना उच्चारण कर लो। वह समाहित नहीं हुई। उसने शरीर को स्थूलता से त्यागा, प्राणायाम के द्वारा त्यागा। क्योंकि वे तो सर्व धर्मात्मा महापुरुष थे, उन्हें पृथ्वी में समाहित होने की क्या आवश्यकता थी? क्योंकि पृथ्वी में समाहित होना आत्म हत्या मानी जाती है और शास्त्रों में आत्म हत्या एक पाप है। तो वह यह पाप कर्म क्यों करते जब कोई अपराध तो किया नहीं था।
इन्होंने (महानन्द ने) एक समय यह भी वर्णन कराया कि इन चारों विधाताओं ने राम, लक्ष्मण इत्यादियों ने जल प्रवाह किया था। जल प्रवाह भी शास्त्रों की प्रणाली में आत्म हत्या है। परन्तु प्राणायाम करके शरीर को त्यागना महा उत्तम कहलाया गया है। अब इस उत्तमता की चर्चा मैं कल करूंगा। इस शरीर को प्राणायाम से त्यागने पर आत्मा कहाँ जाता है। यह चर्चा मैं कल करूंगा आज का मेरा यह विषय नहीं। आज का यह विचार अब समाप्त। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल उच्चारण करूंगा। आज के विचारों का अभिप्राय कि हमारा विज्ञान उंफचा होना चाहिए। हमारी निर्माणशालाएं

ऊँची होनी चाहिए और आयुर्वेद भी हमारा ऊँचा हो जिससे हमारा जीवन ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता हुआ हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह है आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल उच्चारण करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा।

७ 02 08 1973 पुष्प 26 राष्ट्र और समाज

जीते रहो!

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया उनमें हम उस देव, परमपिता परमात्मा की उपासना करते चले जा रहे थे और उस देव से हम एक ही वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं और वह है ज्ञान द्वारा बुद्धि का निर्माण। हम बुद्धि को चेतना में दृष्टिपात करना चाहते हैं। क्योंकि मानव के द्वारा जब बुद्धि होती है तो इस संसार का जानना इसके लिए सहज हो जाता है। बुद्धि को हम अपना साथी बनाएं अथवा मित्र बनाएं और बुद्धि को महान बनाना है। बुद्धि उस काल में ऊँची बनती है जब इसके द्वारा ज्ञान होता है और मन की स्थिरता होती है। आज हम अपने प्यारे प्रभु से याचना कर रहे थे। कि हे प्रभु! हमें बुद्धि प्रदान कर। क्योंकि जब हमारी बुद्धि ऊर्ध्व में रमण करने लगती है तो मानव की उड़ान, मानव का विचार महत्ता में परिणित करने लगता है। जब मस्तिष्क में बुद्धि ही नहीं होगी तो प्रभु! की जानकारी क्या हो सकती है? अथवा इस संसार के जन समूह को अथवा समाज में जो परिक्रियायें होती हैं उसे हम बिना बुद्धि के निर्णय नहीं कर पा सकते, इसीलिए प्रभु से याचना करते रहते हैं।

परम्परा से हमारे ऋषियों ने संसार के वैभव को स्वीकार नहीं किया। संसार का चक्रवर्ती राज्य मानव को प्राप्त हो जाए परन्तु यदि बुद्धि नहीं तो राष्ट्र भी उसके लिए अराष्ट्र बन जाता है। यदि बुद्धि होती है तो सर्वत्र कार्य करने में दक्ष हो जाता है। बुद्धि से ही मानव अपनी इन्द्रियों का मन्थन करता हुआ वह चित्त, मन दोनों का अपना माध्यम बना करके उसमें अपने को समाहित कर देता है। तब चित्त अपनी गति प्रारम्भ कर देता है। केवल आत्मा के सन्निधान मात्र से यह जो मानव का चित्त है यह सदैव महत्ता में रमण करना

चाहिए।

मेरे प्यारे! महानन्द जी आज मुझे कुछ राष्ट्रवाद की प्रेरणा दे रहे हैं। मैं राष्ट्रवाद की चर्चा तो करने नहीं आया हूँ, संक्षिप्त वाक्य अवश्य प्रकट करता हूँ क्योंकि आज का वेद पाठ कह रहा है। मुनिवरों! राजा के राष्ट्र में बुद्धिमान पुरुष होने चाहिए अथवा विवेकी पुरुष होने चाहिए। जब तक राजा के राष्ट्र में विवेकी पुरुष नहीं होंगे अथवा समाज में बुद्धिमान पुरुष नहीं होंगे तो वह राष्ट्र और वह मानव समाज में अपंग रहता है, तो इसीलिए आचार्यों ने कहा है, हे राजन्! ब्राह्मण वाचांग धृति अस्ताः वाचन नमोऽसि वेद का ऋषि कहता है कि हे राजन! तेरे राष्ट्र में ऊर्ध्व गति वाले प्राणी होने चाहिए। आध्यात्मिकवेत्ता पुरुष होने चाहिए जिससे आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता तेरे राष्ट्र को ऊँचा बनाने वाले हों। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में विवेकी पुरुष होते हैं, पुरोहित ऊँचे बुद्धिमान होते हैं तो उस राजा के राष्ट्र में रूढ़ि नहीं होती और जब रूढ़ि नहीं होती तो समाज में सामान्यता रहती है। रूढ़ि को हमारे यहाँ अशुद्ध कहा है। रूढ़ि उसे कहते हैं कोई महापुरुष हुआ और उस महापुरुष ने एक विवेचना दी, उसके जो अनुयायी पुरुष होते हैं उनमें इतना तप न रहने के कारण बुद्धि का माध्यम सीमित है, वे उतने याज्ञिक नहीं होते, वेद के कुछ अंश को लेते हैं, और जब वह एक अंग को लेता है सर्व अंगों को नहीं ले पाता क्योंकि उसका अध्ययन एक ही अंग पर रहता है, उस अंग को ले करके वह तो संसार से चला जाता है और उसके अनुयायी जो होते हैं तो उनमें आरूढ़ता न रह करके, इतना तप न रह करके जिन सिद्धान्तों को वह स्वीकार करते थे उसमें त्रुटियां आ जाती और उन अशुद्धियों को जो उच्चारण करता है उन्हें वही दृष्टिपात आता है और जो उनके अनुकूल होता है उसे अपनाने का प्रयास करते हैं इसलिए वह रूढ़ि बन जाती है। अब वह जो रूढ़िवादी है वह राष्ट्र के ऊपर अपना अधिपथ्य करना चाहता है, क्योंकि वह रूढ़ि राष्ट्र से पृथक होकर के बनी, उसका निर्माण हुआ। परन्तु जब अधिक समय हो जाता है तो वह राष्ट्रवाद पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर देता है और राष्ट्रवाद भी अशुद्ध हो जाता है। जो विचारक पुरुष होते हैं, राष्ट्रवेत्ता होते हैं वे विचारते हैं कि इस समस्या को कैसे सुलझाएं। जब राजा के राष्ट्र

में महापुरुष नहीं होते तो उस राजा को कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता कि हम राष्ट्र को कैसे ऊँचा बनाएं?

परन्तु विवेकी पुरुष ही ऐसे होते हैं। मुझे स्मरण है एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ एक रूढ़ि बन गई। जब रूढ़ि बन गई तो राजा और मन्त्री का उन रूढ़ि के आचार्यों के द्वारा गमन हुआ। उन्होंने कहा कि तुम राष्ट्र में रूढ़िवाद में न जाओ धर्म को अपनाओ। उन्होंने यह वाक्य स्वीकार नहीं किया। उन प्राणियों का हम कैसे ह्रास कर सकते हैं। राजा अश्वपति और मन्त्री इसी बात को विचार विनिमय करते हुए आचार्य मुदगल के द्वारा आए और कहा कि महाराज! यह जो रूढ़ि बनी है इसका विनाश कैसे होगा? रूढ़ि धर्म का विनाश कर देती है। उस समय महाराजा मुदगल ने कहा कि भाई! इनको ज्ञान से शिक्षा दो और राष्ट्रीय नियम को अपनाने का प्रयास करो कि तुम विद्या को अध्ययन करो। आचार्य ने मध्य में उन्हें बुद्धि के निर्माण का उपदेश दिया। आचार्यों को लाया गया और उन्हें निर्णीत कराया, आचार्यों के मस्तिष्क में वह वाक्य आ गया। आचार्यों ने इस रूढ़ि को त्याग दिया।

रूढ़ि उस काल में नहीं होती जब महापुरुष होते हैं विवेकी पुरुष होते हैं। जब रूढ़ि आती है तो क्रान्ति भी होती है और यदि वह क्रान्ति रूढ़िवादियों के विपरीत होती है तो रक्तभरी क्रान्ति भी होती है। इसीलिए राष्ट्र को चाहिए कि वह बुद्धिमानों विवेकी पुरुषों योगियों संयमी पुरुषों को महत्वपूर्ण पद प्रदान करे। राजा के राष्ट्र में समय समय पर शिक्षण शिविर लगने चाहिए और वे जो शिविर होते हैं वे राष्ट्र को ऊँचा बनाने के सम्बन्ध में विचारते हैं। राष्ट्र सम्बन्ध में भी न विचारो। वैदिक प्रकाश में विवेकी होते हैं। विवेक जो होता है वह निष्पक्ष होता है। क्योंकि आत्मा का जो ज्ञान है वह निष्पक्ष होता है। आत्मा का ज्ञान कैसे निष्पक्ष होता है? क्योंकि उसमें रूढ़ि नहीं होती। जैसे मन है, बुद्धि है, चित्त है, अहंकार है। किसी भी रूढ़ि का प्राणी क्यों न हो परन्तु वह जो अरूढ़ि के प्राणी हैं जो चित्त वहाँ कार्य करता है वह यहाँ भी करता है। जैसे नेत्र हैं, नेत्र संसार को दृष्टिपात करने का कार्य करते हैं परन्तु नेत्र बुद्धिमान हो, वेद का ऊँचा ज्ञान हो, अपठित हों तो नेत्र अपना दृष्टि का कार्य करते रहें, इसका नाम धर्म है। रूढ़ि उससे

निचले स्थली पर रहती है। रूढ़ि कहाँ होती है जहाँ राष्ट्र में और द्रव्य को प्रधानता दी जाती है। राष्ट्र और द्रव्य को प्रधानता दे करके और अपने को उसमें संलग्न करना और यह जानना कि मैं जितना जानता हूँ उतना यह संसार है तो उसका नाम रूढ़ि कहलाता है। वह रूढ़ि नहीं होनी चाहिए।

बुद्धिमानों का कर्तव्य होता है, राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि यदि वह रूढ़ि निबटारे में नहीं आती तो उनके आचार्यों को, प्रवर्तकों को अपनाना चाहिए और उन आचार्यों को ले करके उनका एक संगठित समाज बनाना चाहिए और समाज बना करके अपनी रूढ़ियों की विवेचना प्रकट करें और उनका समर्थन करने वाला सभापति वेदों का पंडित होना चाहिए, विवेकी पुरुष होना चाहिए। वेदों का पंडित भी हो, विवेकी भी हो और विवेक में सार्थकता होनी चाहिए। ऐसा अध्यक्ष होना चाहिए जो रूढ़ियों का निर्णय करने वाला हो। अपनी अपनी रूढ़ि की चर्चा प्रत्येक आचार्य प्रकट करता है तो वह जो योगी पुरुष है उसका सर्वत्र आदर करते हैं जब वह अपना निर्णय देता है और राजा उसको स्वीकार कर लेता है कि यह निर्णय यथार्थ है। आचार्यों से जब यह निर्णय हो जाता है तो उस नियम को, विचार को राजा अपने राष्ट्र में निर्धारित करने वाला हो तो रूढ़ि समाप्त हो जाती है। रूढ़ियों के समाप्त होने पर समाज और राष्ट्र ऊँचे बन जाता हैं।

विवेकी पुरुष इसलिए भी होने चाहिए क्योंकि राजा के राष्ट्र में विज्ञान का दुरूपयोग न हो। ऋषि जो होते हैं वह दोनों विज्ञान के वेत्ता होते हैं, आध्यात्मिकवाद को भी भौतिकवाद को भी जानते हैं। आत्मा में लीन होने वाला ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष होता है वह भौतिकवाद के मार्ग से ही हो करके जाता है। भौतिकवाद को वह निचली स्थली में त्याग देता है और स्वयम् ऊर्ध्व चला जाता है। वह जो विवेकी अथवा योगी पुरुष हैं वह राजा के राष्ट्र में राजा की स्थली को ऊँचा बनाने वाले हैं और राजा के राष्ट्र में जो विज्ञान है उस विज्ञान का सदुपयोग कराने वाले हों। क्योंकि राजा के राष्ट्र में क्रान्ति नहीं होती। रक्त भरी क्रान्ति नहीं होती और क्रान्ति होती है तो वह बुद्धिवर्धक क्रान्ति होती है।

बुद्धिवर्धक क्रान्ति कैसे होती है? बुद्धिवर्धक क्रान्ति ऐसे होती है कि अपने अपने विकास

का कार्य, अपने जीवन के सम्बन्ध में विचारते हैं। जैसे विज्ञान है एक मानव ऊर्ध्वगति में जा रहा है। जैसे मेरी एक प्यारी माता है वह अपने गृह के कार्यों में दक्ष है, अपने गर्भस्थल में पुत्र को उत्पन्न करने में दक्ष है। अब यह विचार आता है कि माता दक्ष कैसे होती है? माता के गर्भ स्थल में जब जीव प्रविष्ट हो जाता है तो उस समय माता को यह विचारना चाहिए कि अब उसे अपने जीवन को कैसे व्यतीत करना है? वह शिक्षा गृह में प्राप्त न हो तो महापुरुषों का अपने गृह में आदर करे और महापुरुषों से नम्र हो करके यह प्रश्न करे कि मैं अपने जीवन चर्या के सम्बन्ध में जानना चाहती हूँ। मेरे गर्भ स्थल में आत्मा प्रविष्ट हो गया है। अब मैं जीवन चर्या को जानना चाहती हूँ जिससे मेरे गर्भ से ऐसे बालक का जन्म हो जो बुद्धिमान भी हो और राष्ट्र का नायक भी बने। यदि राष्ट्र का नायक न भी बने तो प्रभु! मैं आध्यात्मिक महापुरुष को चाहती हूँ। जब यह प्रश्न आचार्य से करते हैं तो आचार्य उत्तर देता है हे पुत्री! आज तू अपने जीवनचर्या के सम्बन्ध में जानना चाहती है तो नौ माह की नौ औषध होती हैं उन नौ औषधियों को तुझे पान करना है। जितना तुम्हारा चित्त शान्त होगा उतना ही तुम्हारे गर्भ में प्रविष्ट होने वाला जो बालक है, आत्मा है अथवा जरायुज है वह बुद्धिमान होगा। उतना ही तुम्हारा गर्भाशय पवित्र बनता चला जाएगा और उत्पन्न होने वाला जो बालक है अथवा पुत्र है वह सदैव ऊँचा बनता रहेगा।

बेटा! मुझे एक वाक्य स्मरण आ गया है। जब महर्षि शाण्डिल्य मुनि महाराज की पवित्र माता तिक्तवृत्ति मानो उसका नाम पुष्पांजलि था वह माता पुष्पांजलि सदैव अपने आँगन में विराजमान रहती। जब माता के गर्भ में शाण्डिल्य मुनि का आत्मा प्रविष्ट हो गया, उसके पति का नाम सुसिद्ध ऋषि था, वह माता सदैव विचारती रहती थी। जब यह आत्मा प्रविष्ट हो गया तो पति से बोली कि प्रभु! मेरे गर्भ स्थल में आत्मा प्रविष्ट हो गया है अब मुझे अपने जीवन को सुन्दरता से व्यतीत करना चाहिए। क्योंकि मैं ऋषि कन्या हूँ और ऋषि गृह में मैं प्रविष्ट हुई हूँ। तो प्रभु! मैं यह चाहती हूँ कि मेरे गर्भ से भी ऋषि बालक का जन्म होना चाहिए। पति ने कहा बहुत सुन्दर देवी। तो उसने ब्रह्मचर्य का संकल्प लिया। एक समय वह पति से बोली कि प्रभु! मैं अश्विनी कुमारों के द्वारा

जाना चाहती हूँ जिससे मैं अपने जीवन के सम्बन्ध में और आयु के सम्बन्ध में कुछ वार्त्ता प्रकट कर सकूँ। उन्होंने कहा कि चलते हैं। तो पति पत्नी दोनों अश्विनी कुमारों के मध्य में विराजमान हो गए। अश्विनी कुमारों ने ऋषि का आदर किया और उनके चरणों को स्पर्श किया। नम्र हो करके बोले कि भगवन्! हमारे लिए कोई आज्ञा है? उन्होंने कहा कि हां! आज्ञा है और वह यह कि इनके शरीर में आत्मा प्रविष्ट हो गया है अब हमें कौन कौन सी औषधियों का पान करना।

अश्विनी कुमारों ने ऋषि के वाक्यों का पान करते हुए कहा कि हे माता! हे पितर! मैं अपनी औषधियों का वर्णन कर रहा हूँ तुम अपनी लेखनी वद्ध करते रहो। प्रथम माह में आचार्य को निमन्त्रण दे करके व्रती संस्कार होना चाहिए। पुष्पांजली ने कहा कि प्रभु! वह संस्कार हो गया है। तो मातेश्वरी जिस समय द्वितीय मास प्रारम्भ हो उस समय वह जो निर्माणवेत्ता प्रभु हैं वह माता के गर्भ स्थल में निर्माण करता है। उस निर्माणवेत्ता को हमें स्वीकार करते हुए अपने चित्त को सान्त्वना देनी है और कर्म को विचारना है, प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को विचारना है। हमारे इस मानव शरीर में दिस इन्द्रियां कहलाती हैं जिनमें पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का अपना अपना विषय भिन्न है। जैसे नेत्रों का विषय है दृष्टिपात करना, घ्राण का विषय है मन्द सुगन्ध को पान करना और श्रोत्रों का विषय है शब्दों का ग्रहण करना। इसी प्रकार रसना का विषय रस को पान करना, त्वचा का विषय स्पर्श है, उपस्थ का विषय है अपने शरीर में जो नाना प्रकार के यन्त्र हैं उन यन्त्रों में जो जल रमण करता है उसे बाहर त्यागने का। नाना प्रकार की औषधियां विष आदि को पान करता है, अपान के द्वारा (गुदा) उसको त्याग देती है हस्तो का कार्य संसार को क्रिया में लाना और प्राणों का कार्य है शुभ मार्ग पर विचरण करना। तो देवी! प्रत्येक इन्द्रिय का भिन्न दृष्टिकोण है, उनकी विचारधारा उनका जो विषय है वह भिन्न भिन्न है और भिन्न भिन्न विषय की भिन्न भिन्न प्रकार की औषधियां हैं। इसी आधार को लेकर के प्रभु ने नौ द्वारों का निर्माण किया है दो श्रोत्र के द्वार, दो नेत्रों के द्वार, दो घ्राण के द्वार, एक मुखारविन्द, एक उपस्थ और एक (गुदा) यह नौ द्वार कहलाते हैं नौ मास ही माता के गर्भ स्थल में

आत्मा प्रविष्ट रहता है।

ये जो नौ द्वार हैं इन नौ द्वारों के भिन्न भिन्न स्थल हैं जैसे हमारे नेत्र हैं, एक नेत्र को हम जमदाग्नि कहते हैं और एक नेत्र को विश्वामित्र कहते है। एक श्रोत्र को हम वशिष्ठ कहते हैं तो एक श्रोत्र को हम भारद्वाज कहते हैं। घ्राण के एक छिद्र को हम सूर्य छिद्र कहते हैं तो एक को चन्द्र छिद्र कहते हैं। रसना का जो अग्र भाग है उस अग्र भाग में अश्विनी विराजमान है और (गुदा) और उपस्थ है उसमें एक में ब्रह्म और दूसरे में शिव विराजमान हैं। तो प्रत्येक इन्द्रिय का प्रत्येक देवता है। प्रत्येक द्वार का प्रत्येक देवता कहलाया गया है। प्रत्येक देवता की प्रत्येक प्रकार की औषधि है। जैसे हमारे यहाँ कश्यप शब्द भी आता है और कश्यप का स्थान हमारे यहाँ उपस्थ को भी माना गया है। इसी प्रकार हमारे यहाँ विश्वामित्र और जमदाग्नि जगरिता वृतं ब्रह्मे मेरे प्यारे! जमदाग्नि की जो औषधि है उसमें अग्नि कुछ प्रधान हो और जो विश्वामित्र जो मित्रता की औषधि हैं। वह कौन सी हैं? एक दूसरे को संगठित करने वाली औषधियों को हमें पान करना है। जैसे ब्रह्म बूटी है हमारे यहाँ जैसे, ब्रह्म जड़ी है, जैसे हमारे यहाँ शंख पुष्टी है (शंखाहुली) है। इसका हम संग्रह कर लेते हैं। द्वितीय माह में माता को गो दुग्ध के साथ में इसको पान करना चाहिए।

इसी प्रकार तृतीय माह आता है। तृतीय माह में शरीर में कश्यप देवता की प्रधानता होती है और कश्यप जो नक्षत्र है उसकी भी शरीर में प्रधानता होती तो उस समय माता को प्रायः स्वाती, शैल खंडा, अर्वनी, मानकेतु इन चारों औषधियों का चूर्ण बना लेना चाहिए और ऋतु अनुसार दुग्ध के साथ में पान करना चाहिए। उससे माता का जो स्वास्थ्य है वह बलशाली होता रहता है और माता के गर्भ स्थल में जो बालक है वह पनपता रहता है मानो उसे देवताओं की प्राप्ति होती रहती है।

अब जब चतुर्थ मास आता है तो गर्भाशय में इन्द्रियों का निर्माण पूर्ण हो जाता है, उसके सर्वत्र अंगों का निर्माण हो जाता है, अपनी अपनी स्थली में परमाणु अंकित हो जाते हैं और उनका निर्माण हो करके लेपन भी हो जाता है, अस्थियों का निर्माण हो करके उनके ऊपर त्वचा का लेपन हो जाता है। चतुर्थ माह में (1) स्वाती, (2) पीपल

के पंचांग को पान करना चाहिए। माता को पीपल का फल मानो उसकी कृति, उसके पत्र, उसकी पिपराणी कोमल पत्तों का अग्रभाग मानो उसकी पांचों वस्तुओं का पान करके, उसकी कृति बना करके प्रातः काल में जल के द्वारा उस कृति को पान करना चाहिए। जब पूर्ण गर्भाशय बन जाता है तो माता के शरीर में अग्नि मन्द हो जाती है, उससे अग्नि तीव्र बन जाए। माता के गर्भ में चतुर्थ माह में बालक में और कुछ प्रतिभा आती है तो उसे पंचांग पान करना चाहिए।

जब पञ्चम माह आता है तो शुद्ध हृदय हो और जैसे हमारे यहाँ पारा धातु है, सिद्ध धातु का पान इसको ले करके इसको हमारे यहाँ शिव कहते हैं और गन्धानी (गन्धक) को हमारे यहाँ पार्वती औषधि कहते हैं तो जब दोनों का अग्नि में शोधन होता है, जब तक पार्वती रहती है तो शिव भी रहता है तो उसको जो आयुर्वेद के वैद्यराज हैं वह जानते हैं कि उसमें जो गऊ के कण्डे होते हैं, गऊ का जी करीप्प (गोमय गोबर) होता है और गऊ के पुत्र (बैल) की भी ले करके और हमारे यहाँ एक पीपल की जो क्रीड़ा अवरेत जाति होती है, देखो, पीपल में दस प्रकार की जाति होती हैं और जो स्वाति जाति है उसकी कन्दरियों का हम चूर्ण बना करके और गन्धेनी को पार्वती और शिव को दोनों को पृथ्वी में मथ करके पृथ्वी के परमाणुओं को मानो देखो, उसका सम्पुट बना करके उसको अग्नि में प्रदान करना चाहिए और जब उसका शोधन हो जाता है तो वह औषध (1) स्वाति औषध (2) ब्रह्म डण्डी इन तीनों का चूर्ण बना करके गो दुग्ध के साथ में मानो देखो, इसको अग्नि में पता करके और घृत का उसमें पात बना करके ऋतु के आधार पर पान करना चाहिए। मैं इस विज्ञान को इसलिए प्रकट कर रहा हूँ कि हमारे यहाँ ऋषि मुनियों की उत्पत्ति होती थी तो प्रायः यह आयुर्वेद की दृष्टि से पात बनाए जाते थे। माता पिता इतने बुद्धिमान होने चाहिए। भक्ष्य अभक्ष्य पदार्थों का पान करने वाले न हों। वह शुद्ध औषधियों को पान करने वाले हों। पञ्चम माह में जब यह पान कराया जाता है तो बालक माता के गर्भाशय में बुद्धिमान बनता रहता है।

अब छठे माह में बालक का निर्माण होकर के बुद्धि के तन्तुओं में वायुमण्डल में से परमाणुओं का भरण होना प्रारम्भ हो जाता है मानो चन्द्रमा की कान्ति के द्वारा वह जो

बालक की बुद्धि का माध्यम धड़ है उसको ऊँचा बनाने के लिए माता पिता को विचारना है कि माता को अपने बालक को किस प्रकार का बनाना है। यदि उसे राजा बनाना है तो राष्ट्र की औषधियों का पान करना है, बालक को महापुरुष बनाना है तो महापुरुषों की औषध को पान करना है। महापुरुष का औषध तो (1) स्वाति है (2) कुम्भ प्रीति (3) घ्राण है (4) अचनेरू है, ये लेकर के और वट वृक्ष का पंचांग लेकर के इसको पान कराना है। इसको पान करती रहे माता और देखो, सांख्यवाद और जैसे हमारे यहाँ याग का जो मीमांसा दर्शन है उसका अध्ययन करना चाहिए। देखो, और वेदान्त का अन्तिम जो प्रभु का चरण है उसका अध्ययन जब माता करेगी तो छठे माह में बालक की बुद्धि का नर्माण, माता की बुद्धि से तारतम्य हो करके और उसी प्रकार जब पिता माता के द्वारा विराजमान हो तो वह ऊचे ऊचे दर्शनों की चर्चा, पारलौकिक चर्चाएं, ऋषि तपस्वियों की चर्चाएं होनी चाहिए।

मेरे प्यारे! तुम्हें स्मरण होगा जब अभिमन्यु माता के गर्भ में था तो छठे माह में उन्हें चक्र व्यूह को नष्ट करने की वार्त्ता प्रकट की थी जब चक्र व्यूह से बाहर आने की बात प्रारम्भ की गई तो माता को निद्रा आ गई। तो चक्र व्यूह का सर्व विज्ञान उसने माता के गर्भ में ही वह परणित कर गया था। परन्तु उससे बाहर निकलने का नहीं। देखो, यह विज्ञान हमारे यहाँ दर्शनों में प्राप्त होता है।

सप्तम माह होता है, सप्तम माह में माता का गर्भाशय पूर्ण हो जाता है, बुद्धि का निर्माण भी हो जाता है, चित्त का निर्माण भी हो जाता है। उस समय माता को सदैव बुद्धि वर्धक शरीर को पोषण करने वाली औषधियों को पान करना चाहिए। जैसे (1) स्वाधि है (2) घृणी है (3) आस्वातन है और (4) हड़ बूटी है, इन चारों का कूर्च (चिटनी) बना करके दुग्ध के साथ में पान करना चाहिए तो बालक का स्वास्थ्य ऊँचा बनेगा। सप्तम माह में बुद्धि का सम्बन्ध (1) ज्येष्ठा नक्षत्र और (2) आरुणी नक्षत्र से और (3) वशिष्ठ नक्षत्र से होता है। एक वशिशा नाम की औषधि होती है उसे पान करना चाहिए। उस समय यदि माता के गर्भ से बालक का जन्म होता है तो या तो माता की मृत्यु हो जाती है या बालक की मृत्यु हो जाती है। इसलिए अष्ट माह का बालक कोई जीवित

नहीं रह पाता। सप्त माह का बालक जीवित रह पाता है इसका मूल कारण यह है कि उसका स्वानकेतु नक्षत्र से सम्बन्ध होता है और स्वानकेतु नक्षत्र का सम्बन्ध पृथ्वी से होता है इसलिए उस बालक का जन्म होने से उसमें कोई किसी प्रकार की हानि नहीं हो पाती तो विचार यह है कि नवें माह में माता शयन करते हुए (1) गुणवन्तन (2) आस्वेती इन दो औषधियों का पान करते हुए, माता अपने गर्भाशय को सदैव पूर्ण करके नौ माह में अपने बालक को जन्म देती है। परिणाम कि वह जो बालक है वह माता के ऊँचे संस्कारों को लेकर के जन्म लेता है और जहाँ वह जाता है वहाँ उसकी कीर्ति होती है, वहाँ उसका नामकरण होता है। आचार्य उससे प्रसन्न रहता है, राष्ट्र में जाता है तो राष्ट्र प्रसन्न है, आध्यात्मिक वेत्ताओं में जाता है तो वह प्रसन्न है।

मुझे आधुनिक काल का तो प्रतीत नहीं है परन्तु हमारे यहाँ परम्परा का जो जगत रहा है उस जगत में ऋषि मुनियों को यहाँ क्या राष्ट्र गृहों में भी शिक्षा प्रदान की जाती माता जब अपने बालक को इसी प्रकार जन्म देने वाली बनती है तो माता का गर्भाशय सदैव ऊँचा रहता है माता का मस्तिष्क ऊँचा रहना है। जब माता को भक्ष्य अभक्ष्य पदार्थों का विचार नहीं होता तथा बालक उस गर्भाशय में है तो माता को बुद्धि की आवश्यकता है। माता चिनता में संलग्न है और ऐसी चिन्ता है जो उसके चित्तवत (बालक) को नष्ट कर रही है। अभक्ष्य पदार्थों को दूसरे जीवों का हिंसक बन करके उन्हें पान करना पिता को भी पान करना यह दोनों के लिए गृह को दूषित करना है। उस गृह में जो बालक उत्पन्न होता है और यह मानो कि हम उसे नारकिक बना रहे हैं और आगे हमारा गृह भी नारकिक बनेगा, इसलिए उन वस्तुओं का जैसा मैंने जिस विद्या का तुम्हें अध्ययन कराया है उस विद्या पर विचार विनिमय होना चाहिए।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है जब पुष्पांजलि माता ने यह प्रश्न किया तो उन्होंने इस विद्या को दक्षता से प्रकट कराया। माता ने वही कार्य किया। उस समय माता के गर्भ से शाण्डिल्य का जन्म हुआ। महर्षि शाण्डिल्य मुनि महाराज हमारे यहाँ प्रथम आचार्यों में महर्षि कहलाते हैं तो परिणाम यह कि माता ही निर्माण करने वाली है।

बेटा! आज मैं कहाँ चला गया हूँ, जिस विद्या में मैं पुनः से जाना चाहता था जाना

नहीं हुआ। यह जो विज्ञान है इसको हमें सूक्ष्मता से साकार रूप में लाना चाहिए। जब माताएं दक्ष होती हैं तो उनके गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक भी विज्ञान का दुरूपयोग नहीं करते। विज्ञान का दुरूपयोग किसे कहत हैं? विज्ञान का दुरूपयोग उसे कहत हैं जिस विज्ञान को हम दृष्टिपात करते हैं, श्रवण करते हैं यदि उस वैज्ञानिक यन्त्रों की वाणी को श्रवण करके हमारा चरित्र भ्रष्ट होता है, हममें अमानवता आती हो। वह विज्ञान तो है परन्तु उसका दुरूपयोग हो और वह दुरूपयोग ब्रह्मचारियों के चरित्र को भ्रष्ट कर दे तो उसमें छात्र नाश अधिक हो जाता है। राजा के राष्ट्र में जब विज्ञान का दुरूपयोग होना प्रारम्भ हो जाता है तो छात्रों का चरित्र भ्रष्ट हो जाता है और जानो कि राजा का राष्ट्र अब नष्ट होने जा रहा है। राजा के राष्ट्र में महत्ता नहीं रहेगी। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों का कथन है कि ब्रह्मचारी को माता के गर्भ से ले करके 25 वर्ष की आयु तक ऐसे अश्लील चित्रों का दर्शन नहीं करना चाहिए जिनसे उनका ब्रह्मचर्य दूषित हो जाए, जिससे जीवन की प्रतिभा नष्ट हो जाए। इन वाक्यों पर विचार विनिमय करना चाहिए, अनुसन्धान करना चाहिए। राजा के राष्ट्र में ऐसे आचार्य, ऐसे विवेकी पुरुष होने चाहिए, वह विज्ञान होना चाहिए जो विज्ञान हमारे यहाँ परम्परा से रहा है, यदि उन चित्रावली विज्ञान में ऋषि मुनि के जीवन चरित्रों का दिग्दर्शन कराया जाएगा और ऋषि मुनियों की वाणी को श्रवण कराया जाएगा तो चरित्र ऊंचा बनता है और विज्ञान सदुपयोग होगा। यदि उससे विपरीत होगा तो राजा के राष्ट्र में वह रक्तभरी क्रान्ति आ जाएगी।

परम्परा में मुझे स्मरण है जब महर्षि भारद्वाज ने नाना प्रकार की चित्रावलियों का निर्माण किया और उन चित्रावलियों में लाखों वर्षों से जो मानव की वाणी अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रही थी, उन यन्त्रों में उनके चित्र आते थे, उनकी वाणी आती थी, उनके वाक्य होते थे और वाक्य के साथ में उनका चित्र होता था। क्योंकि बिना चित्र के, बिना आकार के वाणी का अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता। इसलिए वाणी के साथ में परमाणुओं का और मानव का चित्र भी आता है। इसलिए वह ऋषि मुनियों के शब्द, ऋषि मुनियों के विचार और उनका आकार उन चित्रों में आता था। तो वैज्ञानिक जन ब्रह्मचारी श्रवण करते, विद्यार्थी श्रवण करते और पठन पाठन करते हुए अपने स्थलों का

त्याग करके उनके चित्र दर्शन करते थे। मुझे स्मरण आता रहता है राजा रावण ने यही कार्य किया परन्तु जब यह नियमावली भंग हो गई रक्तभरी क्रान्ति आ गई। क्योंकि चरित्र न रहा।

मेरे प्यारे! महाराजा अश्वपति के यहाँ यह चित्रावली रहती, उनका सदुपयोग होता। उनके यहाँ राज पुरोहित होते, मन्त्री होते, त्यागी और तपस्वी होते। अश्वपति के जो महामन्त्री थे वह 50 वर्ष तक अन्न को न पान करके वह सदैव प्रभु का चिन्तन करते और बुद्धि की याचना करते हुए वे त्यागी बने जिससे उन्हें महामन्त्री का पद प्राप्त हुआ जिससे वह राष्ट्र को, सुबुद्धि प्रदान कर सकें।

मेरे प्यारे! राष्ट्र तपस्या से ऊँचा बनता है। क्योंकि उसके लिए ब्रह्म ज्ञान और त्याग की आवश्यकता है। जिससे वह प्रजा के वैभव को प्रजा के श्रृङ्गार को अपने में श्रवण न करने वाला हो। जब राजा के राष्ट्र में संग्रह करने की प्रवृत्ति आ जाती है और राजा प्रजा के श्रृङ्गार को और प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाला हो जाता है वह राष्ट्र आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट होने वाला है। उस राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति आ जाती है।

आज मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। मैं प्रकट करने आया हूँ कि पुत्र! हमें अपने विज्ञान को, अपनी विद्या को सदैव धारण करना है और उस विद्या को ले करके रूढ़ि को नहीं पनपने देना है। जब राजा के राष्ट्र में रूढ़ि पनप जाती है, तो राजा का राष्ट्र भ्रष्ट हो जाता है। राजा के राष्ट्र में स्थिरता नहीं रहने पाती। राजा सान्त्वना नहीं दे सकता प्रजा को। मैं कौन सी रूढ़ि की चर्चा करूं, कौन सी रूढ़ि को राष्ट्र प्रकट करेगा, वही रूढ़ि विवाद में परणित हो जाएगी और राजा का समाज और राष्ट्र में विवाद नहीं रहना चाहिए। वह विवाद उस काल में नहीं रहेगा जिस काल में एक धर्म होगा, एक मर्यादा होगी और विज्ञान भी उसके अधिकृत होगा। यह हो सकता है उस काल में जब विवेकी पुरुष होंगे, तपस्वी पुरुष होंगे, वैदिक पुरुष होंगे। क्योंकि वेदों का ज्ञान निष्पक्ष माना जाता है। सदैव निष्पक्ष वह ज्ञान होता है जिसमें विज्ञान भी हो, ज्ञान भी हो, विवेक भी हो, मानवता का उपदेश हो वही ज्ञान राष्ट्र नायक बना सकता है। राष्ट्र नायक

बन करके राष्ट्र को ऊर्ध्व गति को ले जा सकते हैं। इस प्रकार जब राष्ट्र का निर्माण होता है तो राजा के राष्ट्र में महत्ता होती है। इसलिए मेरे पुत्र! राष्ट्र को उत्तम बनाना है। जो राष्ट्र उत्तम बनता है वह माताओं से ऊँचा बनता है। हे मां! तू वास्तव में विद्या रूपी शृङ्गार को अपनाने का प्रयत्न कर जिससे तेरा शृङ्गार ऊँचा बन करके तेरे गर्भ से ऊँची सन्तान का जन्म हो करके तेरी महत्ता, तेरा गृह ऊँचा बन जाए। यह है आज का वाक्। मैं कोई अधिक विवेचना देने नहीं आया। आज के वाक्यों का अभिप्राय कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए और आयुर्वेद की विद्या को अपनाते हुए हम अपने गृहों को ऊँचा बनाएं, हम अपने राष्ट्र को ऊचा बनाएं, महत्ता को लेकरके चलें। आज का यह वाक्य अब समाप्त अब वेदों का पाठ होगा।

८ 22 09 1973 पुष्प 26 इन्द्रियो का साकल्य

यह आत्मा तेरी अनुपम महत्ता में सदैव रमण करता रहता है। आपको नाना ऋषियों ने भिन्न भिन्न रूपों से आपका विवेचन किया है। क्योंकि आप प्रातःकाल की पवित्र अग्नि बन करके इस संसार को प्रकाशमान बनाते हैं। वह जो प्रकाश है जो इस संसार में ओत प्रोत है, इस प्रकाश का जो अनुपम भंडार है, वह आपकी महत्ता है। आपकी ही महत्ता से प्रत्येक प्राणीमान क्रियाशील हो रहा है। यह सर्वत्र जगत् आपका हृदय है। आपके हृदय में जिस प्रकार माता के गर्भ स्थल में बालक का अंग प्रत्यंग बन जाता है अथवा निर्माण हो जाता है, इसी प्रकार यह जो जगत् है, यह सर्वत्र आपका हृदय है। क्योंकि आपके हृदय के इस संसार का निर्माण होता है। और आपके हृदय में यह जगत् व्यापक बन करके, संकुचित्त हो करके समाहित हो जाता है। हे प्रभु! हम आपकी महिमा का गुणगान तो नहीं गा सकेंगे क्योंकि आप तो अनन्त हैं। हमारी यह सूक्ष्म सी वाणी आपके गुणों का अनुवाद क्या कर सकती है। क्योंकि वाणी में शब्द नहीं होते जितनी आपकी प्रशंसा है, आपकी विचित्रता है। उस विचित्रता के लिए हम सदैव आपकी ही प्रतिभा, आपकी ही महत्ता पर त्याग देते हैं।

हे प्रभु! आचार्यजन यह कहा करते थे कि संसार में न करने से कुछ करना बहुत सुन्दर है। परन्तु जब हम आपकी प्रतिभा, आपकी महिमा का गुणगान गाने लगते हैं तो प्रभु!

शरीर में हमारे कोई ऐसी इन्द्रिय नहीं है जो आपकी महिमा को अथवा आपकी रचना को और आपकी प्रतिभा को प्रकट न करती हो। आपकी महत्ता पर, हमारी इन्द्रियां संकीर्ण हो जाती हैं।

हे प्रभु! हम तो सदैव यह कह करते हैं प्रभु! हमारा कल्याण करो। क्योंकि आपकी ही प्रतिभा से सृष्टि के प्रारम्भ में यह समिधा का आपके द्वार से उत्पन्न हुआ है। हे प्रभु! आपका जो हम दिग्दर्शन करने लगते हैं, आपकी महत्ता को दृष्टिपात करने लगते हैं तो नेत्रों का प्रकाश, नेत्रों में जो ज्योति है वह आपकी महिमा को दृष्टिपात करते करते ओझल हो जाती है, और प्रायः ऐसा प्रतीत होने लगता है कि परमपिता परमात्मा की प्रतिभा तो इतनी अनन्त है कि नेत्रों की ज्योति मानो शान्त हो जाती है। परन्तु उसकी जो अनुपम ज्योति है, वह ज्योति कदापि भी ऐसी नहीं कि हमसे ओझल हो जाए। हमारे नेत्र ही उस ज्योति को पान करने में असमर्थ हो जाते हैं। हे प्रभु! हम आपकी उस महत्ता को आपकी समिधा में ही देखकर पुलकितमय हो जाते हैं।

यह कहा जाता है कि ब्रह्मा जी के कमण्डलु से यह समिधा मानो यह प्रातःकाल की उषा उसी की आभा से आभायित होती हैं। मानव कल्याण के लिए प्रभात में प्रातः की ऊषा को ले करके जब हम अपने में प्रकाशक होते हैं, नेत्रों का प्रकाश नेत्रों को प्राप्त हो जाता है। जहाँ आत्मा के प्रकाश से प्रभु प्रकाशित होते हैं वहाँ आत्मा अपनी सहायता से आत्मा के प्रकाश से प्रकाश होता है और आनन्द के लिए सदैव प्रदीप्त रहता है और यह विचारता रहता है कि मैं आनन्द को पान करना चाहता हूँ। आनन्द की प्रतिभा में जाना चाहता हूँ। क्योंकि वह जो आत्मा सत्चित है। वह आनन्द के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है, और विचारता रहता है कि मैं अपने सखा के द्वारा पहुंचूं। हे प्रभु! आपको सखा कहते हैं। क्योंकि जब आपके गुणों का गुणगान होने लगता है तो प्रभु! यह आत्मा तृप्त होता है। जहाँ आत्मा की सखा का गुणवादन नहीं होता वहाँ मानव कुछ समय तक उस प्रकृति के आवेशों भरे शब्दों को श्रवण करता रहता है। जिसके पश्चात् वह ऊब जाता है, और ऐसा ऊब जाता है कि उसे यह वाक्य श्रवण करने में भी लज्जा आती है। तो प्रभु! हमारे ऊपर ऐसी अनुपम कृपा करो कि हम आपकी ही महिमा का

गुणगान गाते रहें। आपके देवतव को प्राप्त होते रहें। क्योंकि प्रातःकाल की जो अग्नि है यह अग्नि सदैव हमारे जीवन को प्रकाश देने वाली है। हमें मग्न बनाने वाली है।

प्रातःकाल से सांयकाल तक मानव कार्य करता हुआ थकित हो जाता है। परन्तु जब रात्रि में उस महामना देवी की गोद में परणित हो जाते हैं जैसे माता का प्रिय बालक क्षुधा से पीड़ित हुआ। माता उसे अपने कंठ में धारण कर लेती है। लोरियों का पान कराती है, और उस बालक की क्षुधा शान्त हो जाती है। इसी प्रकार हम जब रानी की गोद में जाते हैं। कामधेनु की गोद में जाते हैं तो वह अपनी आनन्दमयी लोरियों का पान कराती हुई हमें विभोर कर देती है। नवीन बना देती है। बेटा! अब वह कहाँ चला गया अन्धकार जिस अन्धकार को हम ले करके ऊषा की गोद में आए हैं। जैसे हम कार्य व्यस्त होकर थकित हो गएं थे। वह थकित होना कहाँ चला गया? उस माता ने अपने में ग्रहण कर लिया और माता ने वह अनुपम शक्ति हमें प्रदान कर दी जिस शक्ति को पान करके हमारा जीवन विभोर और नवीन बन जाता है।

मेरे प्यारे! प्रत्येक प्राणी को संसार में नवीन बनना है, नवीन बनता रहता है। मैं परमपिता परमात्मा की उपासना करने नहीं आया हूँ। क्योंकि परमात्मा तो अनन्त हैं। यह अनन्तता में रमण करने वाला है। परन्तु मन को विचित्र बनाने वाला प्रभु है। जब हम दर्शनों में जाते हैं, अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा विराजमान होते तो प्रातःकाल के समय में यह कहा करते थे, हे पुत्रो! आओ और तुम प्रभु के गुणगान गाओ। हम प्रभु के गुणगान गाने के लिए तत्पर हो जाते उनका उपदेश प्रारम्भ हो जाता और यह कहा करते थे कि संसार में मानव को साधना शक्ति को प्राप्त करना है। ईश्वर का जो प्रिय भक्त होता है उसका संसार में कोई शत्रु नहीं मानो वह संसार का प्रिय बन जाता है, हम सब प्राणियों का भी वह बन जाता है। कैसा प्रिय बनता है कि उसके हृदय में उसके मन में हिंसा नहीं आ पाती। क्योंकि वह विचार लेता है कि संसार में जो मन और प्राण जो जगत् में ओत प्रोत हो रहा है। यह हिंसक प्राणी में भी है। यह देवदूत में भी है। अहिंसा परमोधर्मः में भी है। इन दोनों की विचित्रता संसार को विचित्र बना रही है। यह विचार आता रहता है जो हिंसक प्राणी हिंसक नहीं रहता, वह देवदूत बन जाता है।

अहिंसा में परणित हो जाता है।
हम सदैव अपने आचार्य से कहा करते थे। प्रभु के निकट जाने का कोई मार्ग है तो वह क्या (कौन सा) है? तब उस समय पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि (1) प्राण (2) अपान (3) उदान (4) समान (5) व्यान (6) नाग (7) देवदत्त (8) धनंजय (9) कर्म (10) कृकल दस प्राण कहलाते हैं। मानव शरीर में, इन दसों प्राणों को नियन्त्रण में करने वाला मन कहलाया जाता है। मन और प्राण दोनों का समन्वय करना है। समन्वय करते हुए जो मन का व्यापार है, मन का इन्द्रियों का जो जगत् है। इन्द्रियों का जो व्यापार है इन इन्द्रियों के व्यापार को एक साकल्य बन जाता है और साकल्य बना करके हमें प्राण अपान को एकाग्र करके इनका समन्वय करते हुए मन और प्राण दोनों के मिलान का नाम साधना कहलाई जाती है।
आज कोई मानव संसार में साधक बनना चाहता है, साधना में रमण करना चाहता है तो साधना कहते हैं मन और प्राण दोनों के मिलान को। उसको हमारे यहाँ योग कहा जाता है। क्योंकि योग की परम्परा में हमारे यहाँ चित्त की तरंगें होती हैं तरंगें इन्द्रियों का भावावेश होती हैं और वह जो इन्द्रियों का भावावेश है उस भावावेश को हम मन में सन्निधान करने वाले बनें। क्योंकि वह भी प्राण की ही क्रिया है। चित्त का जो एक स्थल है, दूसरे स्थल में जाना मानो चित्त अपने स्थल से दूर हो जाना यह सब प्राण की प्रतिभा है और मन प्रकृति की वस्तु होने के नाते मन की प्रतिभा से यह ज्यादा हो जाता है और प्राणों का विभाजन होना प्रारम्भ हो जाता है। जब मन और प्राण दोनों का समन्वय कर देते हैं, दोनों का मिलान कर देते हैं। तो मन और प्राण दोनों आत्मा के गुण कहलाए गए हैं। जिनको हम ज्ञान और प्रयत्न कहते हैं। क्योंकि प्रयत्न प्राण का अधिपति है, और ज्ञान मन का अधिपति है। जितना विभाजन वाद है वह विभाजन चाहे अन्तरिक्ष में ही रहा हो अथवा पृथ्वी में रसों का हो रहा है वह मन की ही क्रिया कहलाती है। आज जैसे पृथ्वी में नाना प्रकार के रस स्वादन प्राप्त होते हैं और नाना प्रकार का विभाजन तुम्हें दृष्टिपात होता है। जैसे वृक्षों में नाना प्रकार का रसास्वादन है उन रसों का विभाजन कौन करता है? बेटा! इनका विभाजन करने वाला मन है और

विभाजित होने वाला प्राण है। यह मन सृष्टि के गर्भ से भी विराजमान रहता है। यह मन ही है जो मानव के हृदय में ओत प्रोत रहता है और उसी मनस्तत्व की यह महा गतियों में रमण करता रहता है। तो विचार यह कि यदि कोई मानव संसार में साधक बनना चाहता है उसके लिए दर्शनों का अध्ययन करना, वेदों का अध्ययन करना यह भी प्रियतम है। परन्तु जो हमने अध्ययन किया है उस अध्ययन के ऊपर हम यदि अपने जीवन को क्रिया में लाने का प्रयत्न करते हैं, क्रिया में ला देते हैं तो वह मानव की साधना बन जाती है। संसार में वेद का ऋषि यह कहता है वेदों का उद्गान गाने से, उनका व्याख्यान देने से और प्रतिभा में रमण करने से मानव कदापि ऊँचा नहीं बनता। परन्तु ऊँचा उस काल में बनता है जब जो हमने अध्ययन किया है उस अध्ययन को क्रिया में मन और प्राण दोनों का सन्निधान करने लगते हैं। तो हे मेरे पुत्र! वह अपना स्वतः कल्याण करने लगता है।

मेरे प्यारे! आज प्रभु की आराधना कर रहे थे। प्रभु से हम क्या चाहते हैं? प्रभु से हम अपनी महत्ता नहीं चाहते, केवल यह चाहते हैं कि प्रभु हमारे ऊपर करुणा करता रहे, वह दयालु बना रहे, हमारे ऊपर दया करता रहे, हम सदैव दया ही चाहते रहते हैं। आज हम साधक बनें। प्रत्येक मानव प्राणायाम करता है मानो 1. प्राण 2. अपान 3. उदान और 4. सामान को एकाग्र करने का प्रयास करते रहते हैं। वह क्यों किया जाता है? इससे हमारे जीवन की गति ऊर्ध्व बन जाती है। मन को तुम्हें स्थिर करना है, मन से यदि संसार में शक्तिशाली वस्तु है तो वह प्राण है। इसलिए मन को प्राण में सन्निधान करो, जब यह मन और प्राण दोनों का सन्निधान होता रहता तो आत्मा का जो गुण है वह मानव को साक्षात्कार दृष्टिपात होता है और उसी से हम आनन्द का स्वादन करते हैं। आनन्द कहाँ प्राप्त होता है? जब इस प्रकृति बिखरे हुए परमाणुओं को एकाग्र कर लेते हैं, और चेतना में रमण करना चाहते हैं तो मन और प्राण दोनों ही यह प्रकृति के आवेश (अंश) हैं, आत्मा के गुण कहलाते हैं। जैसे दो सूत्र होते हैं, इसी प्रकार ये भी दोनों माने जाते हैं। जब मन और प्राण दोनों का सन्निधान हो जाता है, ज्ञान और प्रयत्न दोनों का सन्निधान हो जाता है तो वह आत्मा में समाहित हो करके उससे यह आत्मा

मुक्ति में यह उस आनन्द को प्राप्त करता है जिसको आनन्द कहते हैं। आनन्द वहाँ प्राप्त होता है जहाँ मन और प्राण दोनों का सन्निधान हो जाता है और जिस आनन्द के लिए यह आत्मा पिपासु है।
यह मानव नाना प्रकार के गुणगान गाता है। वह जो पिपासा है वह पिपासा वहाँ नहीं रहती। यह आत्मा आनन्द में रमण करता रहता है। वहाँ विभाजनवाद की क्रिया भी समाप्त हो जाती है औश्र जो विभक्त होता है वे भी दोनों समाप्त हो जाते हैं। इस आत्मा को केवल एक आनन्द प्रतीत होने लगता है। विचारना यह है कि आज हम साधक बनना चाहते हैं। अतः इन्द्रियों का निग्रह करना अनिवार्य है। क्योंकि मानव का जो धर्म है मानव के चार कृति कहलाए जाते हैं (1) सत्य (2) तपस्या (3) दान और (4) दया ये चार पाद कहलाए गए हैं। सबसे प्रथम सत्य आता है और द्वितीय तप आता है। सत्य कहते हैं जो प्रभु है वह सत्य है, आत्मा भी सत्य है, प्रकृति भी सत्य है परन्तु इनके स्वरूप को जान करके इनको वैसा ही उच्चारण करने का नाम सत्य माना जाता है। उसके पश्चात् तप है, तप कहते हैं। जो मानो अपनी इन्द्रियों का निग्रह करता है, निग्रह करने वाला मानव तपस्वी कहलाता है। वह जो तपस्वी प्राणी है उस मानव के हृदय में दया तो स्वतः ही धर्म हो जाता है। दया आ जाती है। दया किसे कहते हैं? दया कहते हैं कि मानव अपने हृदय में करुणामय हो जाए। वह प्रभु के आनन्द में इतना विभोर हो जाए कि उसके लिए इस संसार में कोई वस्तु मिथ्या नहीं रहती। वह मानव यह विचारता है कि यह जो संसार है, प्राणी मात्र है यह अपने अपने संस्कारों पर कटिबद्ध हो करके अपनी क्रीड़ा कर रहा है, नृत्य कर रहा है। जैसे सूर्य चन्द्र इत्यादि अपने अपने आसन पर नृत्य कर रहे हैं। जगत् चल रहा है, इसी प्रकार यह प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या अपने अपने आँगन में नृत्य कर रहे हैं। उसको अच्छी प्रकार जानना। जान करके आगे का जो मार्ग है। उसका नाम हमारे यहाँ दया कहलाया गया है। उसको दया कहते हैं जो ऊँची श्रेणी को चला गया है। वास्तव में निम्न श्रेणी की भी दया होती है मानो एक क्षुधा से पीड़ित है, उसके ऊपर भी हमें दयालु बनना है। परन्तु

जो प्रारम्भिक दया है, उसे भी विचारना है।

दान का अभिप्राय क्या है? वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है कि हमें दानी बनना है। दान किसे कहते हैं? दानी वह मननशील प्राणी होता है, वह प्राणी कहलाता है क्योंकि हमारे यहाँ दान की मीमांसा करते हुए ऋषि मुनियों ने यह कहा है कि हमारे द्वारा जो वस्तु हो उसका दान करो। यदि द्रव्य का सदुपयोग करोगे तो द्रव्य तुम्हारा सहायक बनेगा। द्रव्य तुम्हें मुक्ति तक पहुंचाएगा। यदि तुम द्रव्य का दुरूपयोग करते रहोगे तो अदान होगा वह। तुम्हें नारकिक बनाता रहेगा। इसलिए द्रव्य का सदुपयोग किया जाए। सबसे प्रथम जो दान है वह याग करना है। याग किसे कहते हैं। याग उसे कहा जाता है जैसे प्रभु की विवेचना में आता है जैसे हूत की विवेचना में भी आता है, हूत कहते हैं देवताओं को परणित करना जैसे घृत और साकल्य है अग्नि में परणित करने का नाम हूत कहलाता है, वह हम देवताओं को प्रदान कर रहे हैं। देवताओं को क्या दे रहे हैं? उनका जो अधिकार है उन्हें प्रदान कर रहे हैं।

मुनिवरों! यह न विचारो कि मैं इतना दानी हूँ। जो मानव यह विचारता रहता है कि मैं दानी हूँ। तो इसमें भी अभिमान की मात्रा उत्पन्न हो जाती है। यहाँ ऋषि कहते हैं अरे, यह तो मैं अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ। जैसे मुझे स्मरण है एक समय महाराजा अश्वपति जब प्रातः काल में याग करते थे तो वे तीन प्रकार का याग करते थे। वे हूत भी करते थे वे प्रहूत भी करते थे और अपने राष्ट्र में जो एक दूसरे के ऋणी हो जाते थे उस ऋण से उऋण होने का प्रजा के लिए प्रयास करते थे। मेरे प्यारे! वह भी याग है। वह राष्ट्रीय याग कहलाया जाता है। उसको हम दान कहने लगें, तो वह दान नहीं याग है। हमारे यहाँ विज्ञान में परणित होना, विज्ञान में सहायक होना वह भी याग है। एक तपस्वी की सेवा करना, उस तपस्वी को अन्न इत्यादि का पान कराना वह भी याग है। तो यहाँ दान ही याग में स्वीकार किया गया है। वह जो दान है वह दान मानव को दानी बना देता है। मुनिवरों! दान तप भी एक प्रकार से अभिमान में परणित माना गया है। मानव संसार में याग करने के लिए आया है याग उसे करना चाहिए। परन्तु आत्म कल्याण के लिए याग कर रहा है। कहीं दूसरे संसार के लिए याग कर रहा है। कहीं

क्षुधा से पीड़ितों को भोजन देने का याग कर रहा है। कहीं जो पक्षीगण हैं, उनके भोजन का याग कर रहा है। ये सर्व याग कहलाए जाते हैं। ये कर्त्तव्य में आते हैं। ये दान नहीं। दान भी हमारे यहाँ आता है। एक स्थूल रूप में दान उच्चारण कर देते हैं। परन्तु विचारना यह कि हे मानव! तुम्हें दानी बनना है। क्योंकि धर्म के लिए चार पग माने जाते हैं। उन पगों को तुम्हें विचारना है। दानी बनना है और दान क्या कि हमें याग करना है। जो मानव यह विचार लेता है कि मैं इतना दानी हूँ, मैं इतना कर्मठ हूँ तो वेद का ऋषि कहता है कि वे परमात्मा के राष्ट्र में अग्रणी नहीं होंगे। इसकी (अभिमान की) अवहेलना करनी चाहिए। क्योंकि उसके हृदय में अभिमान आ गया है, वह मानव अपने आत्म कल्याण के मार्ग में बाधक बन रहा है। इसलिए उसे मैं का प्रतिपादन अथवा मैं इतना प्रबल हो गया हूँ, मैंने इतना अध्ययन किया। अरे, मैंने अध्ययन तो किया है। परन्तु यह नहीं जाना कि मैं हूँ क्या? मैं क्या वस्तु हूँ? जिसे मैं उच्चारण कर रहा हूँ। वह तो प्रकृति का वाची शब्द है। आज मैं मैं ही मैं उच्चारण करने लगूं तो यह तो अभिमान है और इस अभिमान में अहंकार की उत्पत्ति हो करके अन्तःकरण में आवागमन के संस्कारों का जन्म होने लगता है। उसे मानव का आवागमन के आँगन में आता रहता है।

मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या कि हम अपने प्यारे प्रभु की शरण में जाएं। उसकी प्रतिभा को विचारने लगें। क्योंकि परमात्मा की विचारधारा एक महान् है, आनन्द है। उस आनन्द को हमें पान करना है और उस आनन्द के आँगन में रमण करने वाला प्राणी संसार में निराशा को प्राप्त नहीं होता, वह सदैव उत्साहित रहता है। उत्साह उसका गुण बन जाता है। मेरे प्यारे! आज मैं इस वाक्य को अधिक प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि हम धर्म के चारों पगों को ले करके जब हम मार्ग में रमण रकते हैं, सत्य को अपनाएं, सत्य के पश्चात् तप को अपनाएं, तप क्या है? इन्द्रियों का निग्रह, इन्द्रियों के विषय को विचारना, उन विषयों पर अनुसन्धान करना, उनका शाकल्य बनाना और मन और प्राण को अर्पित करना। इसके पश्चात् दया आती है और दान आता है, इन चारों पगों को ले करके जब हम संसार में चलते हैं तो हमारे जीवन की

गति ऊर्ध्व बन जाती है।

विचार विनिमय यह कि आज प्रत्येक मानव प्रत्येक ऋषिवर अपने जीवन में महत्ता चाहता है। ऊँची उड़ान चाहता है, योग में परिणित होना चाहता है। परन्तु योगी वह होता है जो मानव इस संसार से उदासीन बनता हुआ और अपनेपन में अपने में समाहित रहता है, और जनता जनार्दन में जनार्दन (परमात्मा) को दृष्टिपात करता है।

आज मैं अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। प्रभु की याचना कर रहे थे, हे प्रभु! आप तो महान् हैं। हमारे ऊपर करुणा करो। हे प्रभु! आप ममतामय हैं, आपको वेद ने वसुन्धरा कहा है, कामधेनु कहा है, आप कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। हे प्रभु! मैं आपको बारम्बार नमस्कार कर रहा हूँ। आप मेरे ऊपर अनुपम कृपा कीजिए और हम सदैव आनन्द में विचरण करना चाहते हैं। हमें आनन्द को प्रदान कीजिए। यह है बेटा! आज का वाक्, अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ। (समाज रानी तालाब, फिरोजपुर शहर प्रातः 6 1/2 बजे।)

९ 03 12 1973 पुष्प 26 ईश्वर जीव और प्रकृति

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन किया जाता है। वह जो परमपिता परमात्मा है वह विज्ञानमयी माना जाता है अथवा उसकी ज्ञान और विज्ञानमय प्रतिभाओं को जो मानव अपना लेता है वह इस मानवीय क्षेत्र में महापुरुष बन जाता है।

हमारे यहाँ परम्परा से आचार्यों ने नाना प्रकार की उड़ान इस सम्बन्ध में उड़ी है। हम परमात्मा को साक्षात करना चाहते हैं। उसकी मौलिकता को जानने के लिए प्रत्येक प्राणी ने नाना प्रकार का प्रयास किया। वह उड़ान में भी प्रायः सफलता को प्राप्त करता रहा परन्तु उनका जो अन्तिम परिणाम था वह एक मानो नेति का प्रतिपादन रहा।

क्योंकि उस परमपिता परमात्मा को मापा नहीं जाता। आज कोई विज्ञान के युग में, आध्यात्मिक युग में, दोनों युगों में जाने वाला प्राणी उस परमपिता परमात्मा को मापना चाहता है तो मापा नहीं जाता। हमने कई काल में यह वाक्य प्रकट किया और यह कहा कि यह परमात्मा का आभामय जो जगत है यह ऐसा विचित्र है इसको मापा नहीं जाता। नाना प्रकार का जो विज्ञान है वह परमाणुवाद में निहित रहता है। उसको हमारे यहाँ प्रायः प्रत्यक्षवाद कहा जाता है। परन्तु जो परोक्ष वाक्य हैं वे प्रत्यक्ष से भी भिन्न माने गए हैं। जैसे मानव को क्षुधा प्राप्त होती है। परन्तु मानवीय क्षेत्र में इसका मौलिक स्वरूप कुछ नहीं माना जाता। मानो क्षुधा लग रही है। परन्तु कोई मानव यह प्रश्न करें कि क्षुधा का स्वरूप क्या है? अथवा क्षुधा को साक्षात्कार करो। परन्तु वह उसे कर नहीं पाता। क्योंकि यह अनुभव का विषय है। अनुभव हो रहा है अब मुझे क्षुधा लग रही है। इसी प्रकार वह जो परमपिता परमात्मा का विज्ञान है अथवा उसकी जो प्रतीति है वह मानव के अन्तःकरण में होती है। उस प्रतीति को हम सदैव अपने में धारण करते रहें और उसकी जो एक स्वरूप है जो मानव को प्रेरणा देता है उसे हमें साक्षात कर ले जाने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि उससे मानव का अन्तःकरण, मानव की जो आन्तरिक प्रतिभा है वह प्रायः विचित्र बनती रहती हैं।

आज का हमारा विचार क्या कह रहा था कि हे मानव! तू परमपिता परमात्मा की आभा को अपने में अपनाने का प्रयास कर। क्योंकि जो परमात्मा के विमुख होते हैं वे मानव नाना प्रकार के ऐसे वातावरण में, ऐसी प्रतिभा में रमण करने लगते हैं जहाँ मानव को अन्धकार ही अन्धकार दृष्टिपात आता है। उन्हें प्रकाश प्राप्त नहीं होता। इसलिए मानव को प्रकाश में आने के लिए उस परमपिता परमात्मा की आभा अथवा उसकी प्रतिभा को प्रायः जानना होगा, जो मानव उसकी महत्ता में परणित होना चाहता है।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि शदस मुनि महाराज के यहाँ एक सभा हुई। उस सभा में आदि ऋषि मुनियों का एक समाज था। इसमें महर्षि याज्ञवलक्य मुनि महाराज भी थे। मेरे प्यारे! शदस मुनि के आश्रम के निकट ही महात्मा भंजु मुनि महाराज का, श्वेतकेतु मुनि का एक आश्रम था। उनके आश्रम में एक कन्या

रहती थी, महात्मा शाण्डिल्य गोत्र में उस कन्या का जन्म हुआ था। महर्षि शाण्डिल्य मुनि महाराज ने उस कन्या का उन ऋषियों द्वारा पुनीत विद्या का पठन पाठन कराया। महात्मा भुंजु मुनि महाराज ने उन्हें ब्रह्म विद्या और दार्शनिक विद्या का अध्ययन कराया। उसमें आयुर्वेद की विद्या भी थी। सब विद्याओं का अध्ययन कराते हुए उस ब्रह्मचारिणी को ब्रह्मवेत्ता बनाया। ब्रह्मवेत्ता बनाने का परिणाम यह था कि वह आत्मा के अपने स्वरूप को जान सके। वह कन्या अबोध थी। भुंजु मुनि उन्हें महान शिक्षा प्रदान करते थे। शदस मुनि के यहाँ सभा थी वह सभा इस उपलक्ष में थी कि कोई ब्रह्मवेत्ता उस कन्या से शास्त्रार्थ करे। क्योंकि ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में प्रायः ब्रह्मवेत्ता से ही शास्त्रार्थ होते रहे हैं। तो मेरे प्यारे! जब शदस मुनि महाराज के यहाँ होने वाले शास्त्रार्थ में सम्मिलित होने वाला ऋषि मुनियों का एक समूह था उस समय ब्रह्मवेत्ताओं में केवल याज्ञवलक्य ही ब्रह्मनिष्ठ कहलाते थे और भी अन्य ऋषि थे, परन्तु वे ही विख्यात कहलाए जाते थे, उनका जो ब्रह्म का वाक्य था, उनकी जो ब्रह्म वेदना थी वह विचित्रतव में परणित रहती थी। शदस मुनि महाराज ने ऋषियों का स्वागत किया वे विराजमान हो गए और उसके पश्चात महात्मा भुंजु ने महर्षि याज्ञवलक्य से कहा कि हे महाराज! आपको प्रतीत है हमारा इस सभा में आने का क्या अभिप्राय है? क्योंकि हमारा जो यह विराजमान होना है वह एक विचार विनिमय करने के लिए है। यह तो तुम्हें प्रतीत होगा कि हमारा आज का विचार विनिमय क्या है? उस समय महर्षि याज्ञवलक्य मुनि बोले कि मुझे यह प्रतीत नहीं है कि आज का विषय क्या है? उन्होंने कहा कि आज ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में एक विचार विनिमय होना है। उन्होंने कहा कि वह विचार विनिमय क्या है? उन्होंने कहा कि विचार यह है कि संसार में यह जानना चाहते हैं कि संसार में तीन प्रकार के पदार्थ हैं। तीन पदार्थ अनादि माने जाते हैं। जिनको (1) प्रकृति, (2) आत्मा और (3) परमात्मा कहते हैं। इन तीनों के स्वरूप को वर्णन किया जाएगा। इन तीनों के स्वरूपों का वर्णन करने के लिए अपनी अपनी मिमांसा करने के लिए इस सभा में एकत्रित हुए हैं। उस समय याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने कहा कि महाराज! विचार विनिमय हो सकता है। परन्तु यह ऐसा विचार क्यों किया जा रहा है? मैं इसको नहीं जान पाया हूँ। उन्होंने

कहा कि ऐसा प्रायः होना ही चाहिए। क्योंकि ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में, बुद्धिमानों में यदि यह विचार विनिमय नहीं होगा तो यह ब्रह्म विद्या लुप्त हो सकती है। यह जो आत्मा का विषय है, प्रकृति का विषय है यह प्रायः लुप्त हो सकता है। परन्तु इनके पृथक पृथक स्वरूप को जानना हमारा कर्तव्य है और वह कर्तव्य हमारी बालिकाओं में होना चाहिए जिससे समाज को उन्नत बना सकें और अपने गृह को प्रबल बना सकें।

मेरे प्यारे! हमारे यहाँ परम्परा में ब्रह्मवाद में कन्याएं ब्रह्मवेत्ता थीं। विद्या को धारण करने वाली मेरी पुत्रियां वेदों का अध्ययन करती रहीं और वेद की विदुषियों ने अपने जीवन को निचोड़ा और निचोड़ करके संसार के समक्ष नियुक्त किया। हमें विचार आता है कि वेद की ऋचाओं को निचोड़ने का मन्तव्य है गायन और गायन को निचोड़ने का मन्तव्य है छन्द और छदों को निचोड़ने का मन्तव्य है ब्रह्म विद्या। क्रियात्मक में अपने जीवन को बनाना है और उस रस को पान करना है। वह जो निचोड़ा हुआ रस है उसे जो मेरी पुत्री और ब्रह्मचारी पान कर लेता है वह इस संसार सागर से पार हो जाता है अथवा उसके मस्तिष्क में अज्ञान नहीं रहता। अज्ञानता का ही न रहना प्रकाश में आना है और उस प्रकाश को अपने में धारण करना ही ब्रह्म का ज्ञान, ब्रह्म को साक्षात्कार करना है। आज मैं ब्रह्म के साक्षात्कार करने की विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि मानव को कर्त्तव्यवाद में इतना पारायण होना चाहिए।

भुंजु मुनि महाराज के आश्रम में जो शाण्डिल्य गोत्र में उत्पन्न होने वाली कन्या थी उसकी अवस्था उस समय 15 वर्ष की थी। परन्तु वह ब्रह्मचारिणी, उसका तेजोमय जीवन, वेदमय जीवन, प्रकाशमय जीवन था। जब याज्ञवलक्य मुनि महाराज के समक्ष वह उपस्थित हुई तो उस समय याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने कहा कि यह क्या हो रहा है? उस समय महात्मा भुंजु बोले और ऋषियों ने कहा कि महाराज! आपको इस ब्रह्मचारिणी से शास्त्रार्थ करना है। क्योंकि यह तीनों वेदों की प्रकाण्ड बुद्धिमती है। उन्होंने नाना प्रकार की विद्याओं का अध्ययन किया है। इसकी अवस्था हम 15 वर्ष की ही उच्चारण करते हैं। परन्तु इसकी अवस्था इस समय 31 वर्ष की है। यह एक बड़ा आश्चर्यजनक प्रश्न था मानव के समक्ष कि 15 वर्ष और 31 वर्षों में बड़ा ही अन्तर पड़

जाता है। याज्ञवलक्य मुनि बोले कि प्रथम तो यही वाक्य उच्चारण करो 15 वर्ष 31 वर्ष में बड़ा अन्तर है। यह आपने कैसा कहा है? इसको हम नहीं जान पाए हैं। उन्होंने कहा कि महाराज! आप ही जानते हैं कि 15 वर्ष की अवस्था कितनी अबोध है परन्तु इसके द्वारा जो वेद की विद्या है, वह विद्या 31 वर्ष में अध्ययन की जाती है। परन्तु उसके तुल्य ही 31 वर्ष का ब्रह्मचारी 15 वर्ष की कन्या से तुलना नहीं कर पाता। उन्होंने जब ऐसा कहा तो ऋषि का आत्मा गद् गद् हो गया। महात्मा भुंजु ने कहा याज्ञवलक्य मुनि महाराज! संसार में कोई भी मानव अपनी सन्तुलना चाहता है तो कवेल उसकी बुद्धि से सन्तुलना होती है। आयु से सन्तुलना नहीं होती। एक मानव अबोध है, यह कन्या बहुत अबोध है परन्तु शिक्षा में यह बड़ी पारायण है। जब ऋषि मुनियों के मध्य में विराजमान होती है तो इसमें ऐसी विद्या इसके समीप आ जाती है जैसे मानो वर्षा काल के समय इन्द्र नाम की वायु के समीप मेघ मण्डल आ जाते हैं, सूर्य की तिखी किरण होते ही विद्युत के प्रकाश का समय आ जाता है इसी प्रकार इस कन्या के समीप वह विद्या ऐसे शब्द, ऐसे खण्ड, ऐसे गायत्री उत्पन्न होने लगती हैं जैसे वर्षा काल में अग्रतम् वनस्पतियों का जन्म होता है।

मेरे प्यारे! याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने कहा बहुत सुन्दर। मैं इनसे अवश्य शास्त्रार्थ करूंगा। शास्त्रार्थ के समय उस विदुषी कन्या ने कहा कि हे महाराज! ऋषिवर। आपको ब्रह्मवेत्ता कहते हैं। परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ कि ब्रह्मवेत्ता कौन होता है। (1) उस समय कहा कि देवी! ब्रह्मवेत्ता तो वह होता है जो ब्रह्म की आभा को जानता है। द्वितीय प्रश्न किया कि हे ऋषिवर! ब्रह्मवेत्ता कौन होता है? (2) उन्होंने कहा कि ब्रह्म वेत्ता वह होता है जो ब्रह्म की विद्या को चर लेता है। तब तृतीय प्रश्न किया कि ब्रह्मवेत्ता कौन होता है? तो उन्होंने कहा कि (3) जो ब्रह्म को अपने में और अपने को ब्रह्म में स्वीकार करता है वह संसार ब्रह्मवेत्ता कहलाता है।

मेरे प्यारे! उस विदुषी कन्या ने कहा कि महाराज! (4) मैं यह जानना चाहती हूँ कि क्या आप यह जानते हैं कि संसार मेरे में है और मैं संसार में हूँ। तब ऋषि आश्चर्य चकित होकर के बोले। देवी! यह तुम क्यों जानना चाहती हो? उन्होंने कहा कि आप

जो यहाँ शास्त्रार्थ करने के लिए उपस्थित हुए हैं मैं यह नहीं जान पाई हूँ कि जब आप आप संसार को अपने में स्वीकार करते हैं और अपने को संसार में और संसार अपने में स्थित हो रहा है तो आप शास्त्रार्थ किससे कर रहे हैं। जब यह वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो वे शान्त हो गए। उन्होंने कहा देवी! वाक्य तो बड़ा ही प्रियतम है। परन्तु मैं तुम्हारे मन्तव्य को नहीं जान पाया हूँ। उन्होंने कहा हे ऋषिवर! आप तो ब्रह्मवेत्ता हैं। जब आप मेरे मन्तव्य को नहीं जान पाए तो भगवन! मैं अपना मन्तव्य आपको जनाना (बताना) नहीं चाहती। मैं इस विद्या को क्यों जताऊँ? क्योंकि मैं भी आत्मा हूँ। आप भी आत्मा हैं। आत्मा का कोई लि्ंग नहीं होता (5) यह आत्मा स्वरूप चेतना है और जब चेतना से मिलान करता है, चेतना चेतनाका समागम होता है तो उस समय प्रभु यह प्रसंग समाप्त हो जाता है। अब याज्ञवलक्य मुनि महाराज मौन हो गए। मौन होकर के बोले इसका उत्तर मैं क्या दे सकता हूँ। उत्तर न दे करके उन्होंने कहा देवी! मैं तुम्हें अच्छी प्रकार नहीं जान पाया। यह शास्त्रार्थ मेरा इससे द्वितीय काल में होगा। आज नहीं हो पाएगा। क्योंकि मैं इन वाक्यों के लिए अध्ययनशील बनूंगा और मैं तप में परिणत होना चाहता हूँ। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर! हे ऋषिवर! मैं ब्रह्म वेत्ताओं की सभा में आपका अपमान नहीं चाहती क्योंकि यह सभा ब्रह्मवेत्ताओं की है। मेरे पांच प्रश्न हैं, उन पांचों प्रश्नों का उत्तर देना हो तो प्रभु! आप मेरे सम्मुख आइए अन्यथा मेरे सम्मुख आने का आपका कोई मन्तव्य नहीं है। मेरा आचार्यों से यह प्रश्न है मैं जब वेद का अध्ययन कर रही थी उस समय गायत्री माँ का पठन पाठन करते हुए मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो मेरे इन पांच प्रश्नों का उत्तर दे दें उसी से मेरा संस्कार होगा वही मेरा पति बन सकता है। तो भगवन! मेरा तो यही मन्तव्य है। मैं अधिक मन्तव्यवादी नहीं बनना चाहती हूँ। क्योंकि मैंने शाण्डिल्य गोत्र में जन्म लिया है। शाण्डिल्य गोत्र ब्रह्मवेत्ताओं का समाज रहा है। जिसमें प्रायः ब्रह्म की विवेचना होती रहती है।

तो मेरे प्यारे! आज मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। ऋषि ने जब विदुषी की यह वार्त्ता श्रवण की तो वे मौन हो गए और मौन होकर के यह कहा कि मैं तुम्हारे से कल ही शास्त्रार्थ कर पाऊँगा। शास्त्रार्थ क्या है विचार विनिमय करना है, उत्तर प्रश्नावली चलनी

हैं। मुझे तुम्हारे से यह मन्तव्य नहीं है कि मैं संस्कार कराऊँ। मेरा तो एक ही मन्तव्य है कि मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर भली भांति दे सकूँ। जब उन्होंने ऐसा कहा तो दोनों मौन हो गए क्योंकि वे दोनों आचार्य थे। वह विदुषी भी आचार्या थी और ऋषि भी ब्रह्म समाज में ब्रह्मवेत्ता और अपने विषय के आचार्य थे। तो यह प्रसंग द्वितीय दिवस के लिए हो गया। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय होता रहा।

एक समय मेरे प्यारे! महानन्द जी ने यह वाक्य कहा था कि महाभारत के काल के पश्चात कुछ काल ऐसा आया जिस काल में मानो अपनी मनोवांछित कल्पना कर लीं और वह कल्पना क्या थीं कि पुत्रियों को, कन्याओं को वेद को पढ़ने का अधिकार नहीं है। गायत्री छन्दों को पठन पाठन करने का अधिकार नहीं है। परन्तु मैं आज महानन्द जी के इन प्रश्नों का उत्तर दे रहा हूँ जो इन्होंने किसी काल में किए थे। जिस समाज में कुरीतियां आ जाती हैं उन कुरीतियों का निवारण करना मानव का मुख्य कर्तव्य है। यह मैंने बहुत पुरातन काल में भी कहा है कि हमारे यहाँ ब्रह्मवेत्ताओं की समाज में परंपरा का काल इस प्रकार का नहीं था। क्योंकि प्रत्येक मानव जो वेद की आभा को जानता है, वेद की प्रतिभा को जानता है वह गायत्री गायन को जानता है। जब मेरी माताएं यदि गायन नहीं गा सकेंगी तो गान कौन गाएगा? क्योंकि माताओं के गर्भ स्थल से ऋषि मुनियों का जन्म होता है और ऋषि मुनियों का जो जन्म है वह माता की प्रेरणा से होता है। मुझे स्मरण आता रहता है, मैंने बहुत पुरातन काल में ब्रह्मवेत्ताओं के समीप माता के द्वारा जब प्रसंग उत्पन्न होते हैं तो प्रायः यह माना जाता कि मेरी जो माताएं होती हैं वे प्रायः हृदय की कोमल होती हैं, उनका हृदय नम्र होता है। जब वह ब्रह्म विद्या में कोमल होकर के प्रविष्ट होती हैं तो ब्रह्म विद्या का मिलान हो करके उनका हृदय भी इसी प्रकार का कठोर भी बन सकता है क्योंकि वह अपनेपन में मानो ब्रह्म को साक्षात करने वाली बनकर मेरी पुत्रियां अपने जीवन में सदैव सफलता को प्राप्त हुई हैं।

मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें स्मरण कराया था। जब माता सीता जनक कन्या, राजा पुरोहित स्वाती मुनि महाराज के द्वारा जब वह अध्ययन करती थीं तो वे

वेदों का अध्ययन करती थीं। धनुर्विद्या का अध्ययन किया जाता। हमारे यहाँ परम्परा में विद्यालय में ऐसी प्रथा रही है। मुझे स्मरण है मैंने तुम्हें कल के वाक्यों में प्रकट कराया था। राम की चर्चाएं कर रहा था। उसी आश्रम में माता अरुणागति कन्याओं को शिक्षा प्रदान करती थीं। वे ब्रह्मवादिनी होने के नाते वेदों का अध्ययन करने वाली कन्याओं को वर्ण व्यवस्था में परणित कराती थीं। गुण कार्य स्वभाव वाले ब्रह्मचारियों का निर्वाचन होता अथवा चुनाव होता है। इसी प्रकार कन्याओं का भी चुनाव होता है। पुत्रियों का भी चुनाव होता है। किसी का कर्म काण्ड में विश्वास होता है, किसी का धनुर्विद्या में। इसी प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार का निर्वाचन हमारे यहाँ विद्यालय में कन्याओं का परम्परा से होता रहा है। मुझे वह काल स्मरण है जब महाराजा अश्वपति के यहाँ मुझे भी 101 वर्ष तक उनका राज पुरोहित रहने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मैं गौरव के सहित यह कहा करता हूँ कि इनके यहाँ ब्रह्मचारियों का चुनाव होता। एक समय महाराजा अश्वपति बोले! हे ऋषिवर! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मैं अपने राष्ट्र में कन्याओं का निर्वाचन चाहता हूँ। कन्याओं का भी तो निर्वाचन होना चाहिए। उस समय कहा कि बहुत सुन्दर। कौन विदुषी ऐसी है जो वेदों का पठन पाठन कराने वाली जो देव कन्याओं को उसमें पारायण कराती रहे। उस समय जो उनके महामन्त्री थे वह वानप्रस्थ में जाने वाले थे। उनकी जो पत्नी की साकल्य देवी उसने संकल्प किया कि मैं निर्वाचन कर सकती हूँ।

मेरे प्यारे! उनका एक आश्रम बनवाया। आश्रम का निर्माण करते हुए उसमें कन्याओं का निर्वाचन होता। विचार विनिमय क्या कि हमारे यहाँ परम्परा से ही ब्रह्मचारिणियों का ब्रह्मचारियों का सर्वदा का निर्वाचन होता रहा है उस निर्वाचन का अभिप्राय क्या है? निर्वाचन इसलिए होता है जिससे समाज की परम्परा, समाज की प्रतिष्ठा ऊँची बनती रहे और समाज में एक मानवता का प्रसार होता रहे। आधुनिक काल का समाज यदि यह उच्चारण करता है कि कन्याओं को पुत्रियों को वेद के पठन पाठन का अधिकार नहीं तो विचार आता है कि उन्होंने वेद की विद्या का अध्ययन नहीं किया उन्होंने दर्शनों का अध्ययन नहीं किया, उपनिषदों में प्रविष्ट नहीं हुए क्योंकि उपनिषदों में नाना विदुषियों

का वर्णन प्रायः आता रहा है। मुझे तो स्मरण है महाराजा अश्वपति के यहाँ कन्याओं का शास्त्रार्थ ऋषि मुनियों के द्वारा होता था। ब्रह्मवादी जो कन्या होती वह ब्रह्म वेत्ताओं से प्रश्न करती और जब वह थकित हो जाती, उसकी सन्तुष्टि हो जाती तो उनका संस्कार होता रहा है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा विचार विनिमय क्या है? हमारा जो प्रसंग है वह केवल यही है कि हमें अपने जीवन में ऐसी महत्ता को अपनाना चाहिए जिस महत्ता को ले करके हम सदैव अपने जीवन को एक मानवता में परणित कर सकें। वेदों का अध्ययन करने वाली मेरी प्यारी माताएं सती थीं। तुम्हें प्रतीत होगा जब सती हैं पति की आज्ञा का उल्लंघन किया पति की आज्ञा का उल्लंघन क्या? जब दोनों ने ही वेद की आज्ञा का उल्लंघन किया, पति की आज्ञा का ही नहीं। क्योंकि हमारे यहाँ वेदों में आता है, शास्त्रकार कहते हैं कि जब किसी का निमन्त्रण न आए और उस अनिमन्त्रण की अवेहलना करके जो मानव अपने महत्व को प्रवृत्ति से जाता है उस व्यवहार में शास्त्र का उल्लंघन होता है, उसमें पति का भी उल्लंघन होता है।

मेरे प्यारे! जब राजा दक्ष के यहाँ यज्ञ था, जब देव याग कर रहे थे तो निमन्त्रण सर्वत्र ऋषियों को पहुंचा। परन्तु उन्होंने महाराजा शिव को निमन्त्रण न दिया। जब न दिया तो महारानी सती ने कहा महाराज! मेरे पिता दक्ष के यहाँ यज्ञ हो रहा है। मेरी इच्छा यह है कि प्रजापति दक्ष के यहाँ मैं प्रविष्ट होना चाहती हूँ। उस समय महाराजा शिव बोले कि देवी! शास्त्राणी अवृताम् आज्ञा हिरयणं वृत्ति अस्थाः हे देवी! शास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन न करो। क्योंकि तुमने त्रयी विद्या का अध्ययन किया है। इसलिए मैं तुम्हें उच्चारण कर रहा हूँ। त्रयी विद्या को अध्ययन करने वाली जो विदुषी होती हैं। वह जानती हैं कि बिना निमन्त्रण के किसी भी याग में जाना नहीं चाहिए। किसी भी कर्म में नहीं जाना चाहिए। क्योंकि न जाने वह किस मन्तव्य से अपने कर्म को रचा रहा है। हम शास्त्रों के विद्वान होते हुए हमारे आँगन में यदि कोई वाक्य न आए और उसमें हम प्रश्न कर दें तो उनका याग जिस मन्तव्य से है उसमें विक्षेप हो सकता है। जब उन्होंने यह कहा तो उन्होंने ममता में आ करके कहा कि मेरे पिता और माता हैं। उनसे मैंने जन्म लिया

है। मेरा जो शरीर है, उसका जो निर्माण है वह माता के गर्भ स्थल में हुआ है। परन्तु पिता ने मुझे अपने आँगन में मानो मेरे से खिलवाड़ की है। मैं अपने ममतव को नहीं त्यागूंगी। जब उन्होंने ऐसा कहा तो शिव बोले कि हे देवी! ममता में अज्ञान होता है। इस ममता के अज्ञान में तुम न आओ। ममता का अज्ञान तुम्हारे लिए हानिप्रद हो सकता है। क्योंकि ममता के प्रभाव में आकर शास्त्र का उल्लंघन करना, वेदों का उल्लंघन करना जो ईश्वरीय वाणी है, जो पक्षपात रहित वाणी है, जो दार्शनिकता से लिप्त है, जो प्रकाश से गुथी हुई है आज यदि तुम उसका उल्लंघन करोगे तो तुम्हारे मनुष्यत्व नष्ट हो जाएगा। जब उन्होंने ऐसा कहा तो शिव की आज्ञा का उल्लंघन किया। उन्होंने कहा प्रभु! कुछ भी हो मेरा तो यह मन्तव्य रहा है कि मेरे द्वारा ममतव आ गया है। मैं इस ममता के आधार पर माता पिता को सर्वोपरि स्वीकार करती हूँ। महाराज शिव ने कहा कि देवी जैसी तुम्हारी इच्छा हो। परन्तु इसमें मैं कोई अपनेपन की वार्त्ता प्रकट नहीं कर रहा हूँ। कहा जाता है कि उस सती ने अपने पति और दर्शनों की आज्ञा का उल्लंघन करके जब वह महाराजा प्रजापति के यहाँ उनका गमन हुआ।

जब सती पिता के द्वार पर जा पहुंची तो याग उनके यहाँ प्रारम्भ होने वाला था। याग के प्रारम्भ में सर्व देवताओं का पूजन हुआ। पूजन का अभिप्राय क्या है कि सबके गुणों का वर्णन हुआ। वर्णन होने के पश्चात उन्होंने विचारा कि मेरा सभा में अपमान हो रहा है। क्योंकि महाराजा! शिव के गुणों का कोई गुणवादन नहीं किया महाराजा शिव वेद के मर्मज्ञ बुद्धिमान थे। उनके राष्ट्र में कोई भी दुखारी नहीं था। उनके राष्ट्र में सदैव एक महत्ता की वृष्टि होती रहती। उनका राष्ट्र ऐसे ऊर्ध्व गति में रहता जैसे सूर्य उदय होता है। उदय वाला उनका राष्ट्र था। उनके राष्ट्र में कोई भी मानव एक दूसरे मानव का ऋणी नहीं था। ऋषि मुनियों की पूजा होती। वेद की विद्या का प्रसारण होता। परन्तु जब उसके गुणों का वर्णन सभा में दृष्टिपात नहीं किया प्रजापति ने तो सती और माता में भी अपने ममतव की चर्चा नहीं की। मानो अपनी पुत्री से उनका कोई विशेष मिलन नहीं हुआ। मिलन न होने के कारण उन्होंने अपने अन्तःकरण में यह स्वीकार किया कि मेरा अपमान हो रहा है। उस अपमान के लिए मैं क्या करूं? क्योंकि इस अपमान को

लेकरके पति के गृह में प्रविष्ट हूँगी तो मेरे पति भी मेरे लिए नाना प्रकार के अपशब्दों का प्रतिपादन करेंगे और यदि मैं इस अपमान को यहाँ अपने में शोषण करती रही तो यहाँ मैं अपनी आत्मा का हनन कर रही हूँ। क्योंकि दर्शन कहता है आत्मो हननतानि ग्रता अशुद्धो सुप्रजा आत्मा को हनन करना यह मानव का सबसे प्रथम पाप कहलाया जाता है। मैं इसे सहन कैसे कर पाऊँ? परन्तु मैंने जो संकल्प किया है यदि वह नष्ट हो जाएं तो मानो मेरा आत्मबल नष्ट हो जाएगा। आत्म प्रवृत्तियां समाप्त हो जाएगी। उस समय सती ने कहा कि हे पिता! हे माता! तुम्हें इतना अभियान है। इस पुत्री ने मेरे गृह में जन्म लिया है तुम्हारे इस शरीर को तुम्हें अर्पित कर रही हूँ।

कहा जाता है वह जो याग हो रहा था, उसमें जो नाना अग्नि प्रदीप्त हो रही थी, उस अग्नि में जहाँ पठन पाठन का क्रम चल रहा था वहाँ उसने उस स्थान पर कहा कि इसे याग नहीं कह सकते। याग का अभिप्राय है जहाँ सर्व प्राणियों का मान होता हो, सर्व प्राणियों के प्रति एक सी भावना रहती हो, आज इसको याग नहीं कहा जा सकता कि एक का मान है तो एक का अपमान है। मानो एक का गुणवादन है और एक का अपमान हो रहा है। मेरा अपमान है मैं इसको सहन नहीं कर सकती। इसलिए मैं याग को याग स्वीकार नहीं करती। मैंने त्रयी विद्या का अध्ययन किया है, त्रयी विद्या में जो यागों की मीमांसा है वह यह है कि याज्ञां ब्रह्मों कृता अस्ति याज्ञाः याग उसे कहते हैं जहाँ संसार का पालन होता हो, परमात्मा का प्रतिपादन होता हो और परमपिता को सृष्टि में जितने प्राणीमात्र हैं उनके हित की चर्चा होती हो, उसके गुणों का अनुवादन होता हो, ऐसा जो याग है वह मानव के लिए कल्याणकारी है। इसलिए इस याग को मैं याग स्वीकार नहीं करती। माता सती ने अपने उस शरीर को अग्नि में परणित कर दिया। अग्नि में परणित करके स्वेच्छा वाक्य गायत्री छन्दों का पठन पाठन करके अपने शरीर को त्याग दिया। आत्मा उस शरीर से पृथक हो गया।

मेरे प्यारे! परिणाम क्या? आज हम इस अपमानमय जगत को न बनाएं और वेदों का अध्ययन करते रहें। मेरे यहाँ पुत्रियों को भी वेद का अध्ययन करना चाहिए। जिससे वह दूसरे के मनों की प्रवृत्ति को ममतव को जानने वाले बनें और उनके समीप अज्ञान न

आए। अज्ञान को नष्ट करने का नाम और वेदों को प्रकाश में लाने का नाम ही जीवन कहा जाता है। अज्ञान तो मृत्यु है।

तो मुनिवरों! सती की अज्ञान में मृत्यु हो गई। और प्रकाश में रहने वाले शिव का स्वाभिमान बना रहा। इन वाक्यों को उच्चारण करने का हमारा मन्तव्य यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आभा को सदैव अपने में परिणत करते चले जाएं और अपनी आभा को सदैव आभायित करते रहें। हम परमपिता परमात्मा को साक्षी बनाते हुए और अपने यागों में परिणत होते रहें, राष्ट्रीयता की परम्परा को ऊर्ध्वगति में बनाते रहें। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में, समाज में, जिस गृह में मेरी पुत्रियों का पूजन होता है अथवा उनकी प्रतिष्ठा होती है वह गृह स्वर्ग के तुल्य होता है। संसार में पति का यदि कोई मित्र है तो वह पत्नी कहलाती है। यदि वह पत्नी विदुषी है तो और भी सौभाग्य। पति को पत्नि की प्रेरणा देती है कि हे भगवन! यह कार्य हमारे हित का नहीं है। यह कदापि नहीं होना चाहिए। आज विवेक जिसके द्वारा है, जो यह जानता है कि मानो यह मेरा कर्तव्य है, मित्रों की वार्त्ता को स्वीकार करता है। जो मानव अपनी आत्मा में इतना क्लिष्ट बन जाता है, आत्मबल को नष्ट कर देता है, वह अपने हित की चर्चा भी उसको प्रियतम प्रतीत नहीं होती, वह केवल उसी को अपने में आनन्द स्वीकार करता है। वह अपने जीवन कष्टमय बना लेता है। जीवन को नष्ट कर लेता है।

आज का हमारा विचार क्या कि हम परम्परा में ही निर्वाचन करते रहे और अपने जीवन को महान् बनाने का प्रयास करें। बेटा! आदि ऋषियों की चर्चा प्रकट कर रहा था। वह पुनीत कलका काल आया। नाना ऋषियों का समाज एकत्रित हो गया वह कन्या पुनः याज्ञवलक्य मुनि महाराज के समीप आ गई। याज्ञवलक्य मुनि बोले कि हे देवी! मैं रात्री को गायत्री माता की गोद में जा पहुंचा। मैंने ऋचाओं से यह प्रश्न किया कि मेरी विदुषी पुत्री के प्रश्नों का उत्तर दिया जाए। तो देवी आज मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आया हूँ। यह जो आत्मा प्रकृति के आँगन में वद्ध हो रहा है परन्तु यहाँ एकता का उपराम हमारे समीप शुद्ध नहीं हो रहा। इस शुद्धता को तुम्हारे समीप लाना चाहता हूँ। भगवन! यह तो मेरा प्रश्न है, यह तो मैं जान रही हूँ कि जो शब्द मैं उच्चारण कर

रही हूँ यह शब्द प्रकृति की सहकारिता से हो रहा है यदि प्रकृति का मन और बुद्धि दोनों का समावेश नहीं होगा तो उन शब्दों की उपलब्धि नहीं हो सकेगी। यह जो शब्दों की उत्पत्ति हैयह मन के विभाजनवाद से हो रही है और आत्मा का गुण विभाजनवाद है नहीं। इसलिए भगवन! मैं आपके वाक् को स्वीकार करती हूँ।

मेरे प्यारे! जब त्रैत वाद की पुष्टि हो गई तो उन्होंने तृतीय प्रश्न किया कि भगवन! मैं यह जानना चाहती हूँ कि मानव के द्वारा ऐसी कौन सी आभा है जिससे वह प्रकृति पर विजय पा सकता है? उन्होंने कहा कि हे देवी! वह जो आभा है वह अन्तःकरण को विजय करना है। और मन, बुद्धि और अन्तःकरण ये तीनों एक समावेश हो करके अहंकार में परणित हो जाते हैं तो इस प्रकृति के ऊपर मानव विश्राम करने लगता है और प्रक2ति की आभा को त्याग करके मानो अन्तःकरण इतना स्वच्छ बन जाता है कि वह केवल क्षेत्र रह करके धर्म द्वारा मोक्ष को पाता है और प्रकृति से उपरामता को प्राप्त होता है तो प्रकृति का जो क्षेत्र है वह हमसे छूट जाता है। पृथक हो जाता है और हम परमात्मा के आँगन में स्वेच्छापूर्वक विचरण करने लगते हैं।

मेरे प्यारे! याज्ञवलक्य मुनि महाराज का यह उत्तर उनके आँगन में आ गया और कहा धन्य हो। प्रभु! अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि मानव के द्वारा (सामने) जो दो नुकीले बाण हैं वे कौन से हैं? जिससे वह संसार क्षेत्र में भी और परमात्मा के क्षेत्र में भी सफलता प्राप्त कर सकता है? उस समय उन्होंने कहा कि हे देवी! ये जो दो नुकीले बाण हैं ये वे वाण हैं जिनको धर्म कहता है कि ऋत और सत दोनों को धारण करने से दोनों में सफलता प्राप्त कर सकता है। ऋत कहते हैं मानो प्रकृति को सत कहते हैं ब्रह्म को, जो ब्रह्म और ऋत (प्रकृति) दोनों का मिलान करना जानता है, दोनों को एक सूत्र में लाता है और लाकर के अपनेपन में परमात्मा को एक एक कण में दृष्टिपात करके अपराध से रहित हो जाता है। जो मानव इस संसार में दोनों को धारण करता है इस संसार क्षेत्र से वह पार हो जाता है।

बेटा! जब याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने उनके प्रश्नों का उत्तर दिया तो कन्या मौन हो गई। मौन होकरके शाण्डिल्य गोत्र में उत्पन्न होने वाली कन्या ने यह कहा कि भगवन!

अब आप मुझे अपने में अपना लीजिए। मेरे ये प्रश्न थे मैं यह जानना चाहती हूँ ब्रह्मे पिताः भगवन्! मैं गृह में प्रविष्ट होना चाहती हूँ। क्योंकि आप वास्तव में ब्रह्मवेत्ता हैं। आगे का प्रश्न मैं इसलिए नहीं करना चाहती हूँ क्योंकि मैं अपना और आपका अपमान ब्रह्मवेत्ताओं की समाज में नहीं चाहती। अब मैं भगवन्! । आज्ञा पाती हूँ आप मेरे से संस्कार कीजिए। मेरे प्यारे! ब्रह्मवेत्ताओं ने यह वाक्य स्वीकार किया कि कन्या से याज्ञवलक्य तुम्हारा संस्कार होगा। मेरे प्यारे! शाण्डिल्य मुनि महाराज जी उस सभा में उपस्थित थे। शाण्डिल्य मुनि ने कहा हे ऋषिवर! कन्या का जन्म मेरे गोत्र में हुआ है और महात्मा भुंजु गोत्र में इनकी शिक्षा हुई है त्रयी विद्या का इन्होंने अध्ययन किया है। मेरे प्यारे! उनका संस्कार हुआ। संस्कार हो करके याज्ञवलक्य मुनि महाराज अपने गृह मुखियापुरी में मानो उस कन्या का प्रविष्ट हुआ। मुखियापुरी में जब वह प्रविष्ट हुए तो मुखियापुरी से उनका एक स्थान पृथक था उस आश्रम में प्रविष्ट हो गए।

यह है बेटा! आज का वाक्। इन वाक्यों को उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है? आज हमें यह उच्चारण करना था कि संसार में प्रत्येक मानव को उस विद्या का अधिकार है जो परमपिता परमात्मा की विद्या है। क्योंकि परमपिता परमात्मा सर्वत्र हैं प्रत्येक मानव चाहे वे पुत्र हों, पुत्रियां हों समस्त विद्या का उन्हें अधिकार है। क्योंकि उसके पुत्र पुत्रियां ही यदि उसकी विद्या का अध्ययन नहीं करेंगे तो और कौन कर पाएगा। यह है आज का हमारा वाक्य कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए ऋत् और सत् में परणित होते रहें और हम सदैव विद्या का अध्ययन करते रहें। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी कुछ आधुनिक काल के बुद्धिमानों की और कन्याओं के सम्बन्ध की कुछ चर्चाएं प्रकट करेंगे। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि महानन्द जी के उन प्रश्नों का उत्तर देने जा रहा था, इस प्रसंग में उन्होंने पुरातन काल में यह प्रकट किया था कि संसार में अज्ञान आ गया उस अज्ञानता की चर्चा को कल मेरे प्यारे! महानन्द जी प्रकट करेंगे। आज का यह वाक्य समाप्त अब वेदों का पाठन होगा, इसके पश्चात यह वाक्य समाप्त

हो जाएगा।

१० 15 11 1974 पुष्प 26 मन और प्राण

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया।

हमारे यहाँ परम्परा से ही ऋषि मुनियों की बहुत ऊर्ध्व उड़ान रही है। आज मैं तुम्हें कुछ उड़ान उड़ने के लिए अवश्य जांऊगा। हमारा जो मानवीय जीवन है यह परमपिता परमात्मा की आभा से रचा हुआ है। उसकी जो विज्ञानमय धारा है, वह मानव के जीवन से ओत प्रोत है। जब हम यह विचारने लगते है। कि परमपिता परमात्मा की जो आभा है उसका कोई भी मानव दिग्दर्शन करना चाहता है अथवा उसकी बलवती इच्छा बन गई है कि आज हम परम पिता परमात्मा की आभा को दृष्टिपात करना चाहते हैं तो मानव को ब्रह्म जगत् को त्याग करके आन्तरिक जगत् में जाना बहुत अनिवार्य है।

यह संसार परम्परा से ऊर्ध्व उड़ान को उ़ता चला आया है। इसकी उड़ान प्रत्येक विद्या पर रही है और प्रत्येक मानव अपने अपने जैसा उसके हृदय में अवाशेष होते हैं अथवा अंकुर होते हैं, उसी के आधार पर उसका कर्म प्रारम्भ हो जाता है। आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जिस क्षेत्र में प्रत्येक मानव अपनी आत्मा के सम्बन्ध में विचार विनिमय करते रहे हैं। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने इससे पूर्व काल में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि यह संसार कहाँ है? यह ऐसा क्यों बन गया है? इनके हृदय में एक वेदना रहती है और वह वेदना ऐसी जिससे समाज को ऊर्ध्व बनाया जाए और समाज में एक महान क्रान्ति आए। आत्मवेत्ता बनने को क्रान्ति आ जाए। तो यह संसार ऊर्ध्व गति वाला बन जाता हैं यदि वह भी न आ पाए तो वैदिक ऋषि ने बहुत ऊँची उड़ान उड़ते हुए कहा है कि संसार में प्रत्येक मानव का जो उद्देश्य है वह केवल एक ही लक्ष्य रहा है कि हम परमपिता परमात्मा को और अपने मानवीय जीवन से उसका मिलान करना चाहते हैं। मानव ने द्वितीय मार्ग को अपनाया उस मार्ग को त्याग करके उसमें द्वितीय मार्ग का कोई लक्ष्य मानव का नहीं है। द्वितीय मार्ग में चला जा रहा है

तो उसे कोई अन्तिम लक्ष्य प्राप्त नहीं होता। इसीलिए वैदिक ऋषियों ने कहा है कि जिस मार्ग को मानव अपनाना चाहता है उसका कोई लक्ष्य होना चाहिए। जब सात्विक उद्देश्य मानव बनाता है और अग्रणी बनता है तो उसके उद्देश्य में एक आभा ओत प्रोत रहती है। वेद का ऋषि कहता है कि उस आभा को अवश्य जानना चाहिए। उस आभा को जान करके मानव अपने जीवन को एक महान् और पवित्र बनाना चाहता है तो इसके जीवन की आभा में एक मानवता की एक कृति उत्पन्न हो जाती है।

आज मैं तुम्हें उस मार्ग पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ आत्मवेत्ता अपने लक्ष्य की चर्चाएं करते हैं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब एक समय महर्षि दालभ्य मुनि महाराज के आश्रम में महर्षि गदगद महाराज का आगमन हुआ। महर्षि गदगद मुनि महाराज और महर्षि दालभ्य दोनों की विवेचना प्रारम्भ होने लगी। इसमें महर्षि प्रवाण, महर्षि तिलक और महर्षि रेवक्य मुनि महाराज आदि विराजमान थे। जब विवेचना प्रारम्भ होने लगी तो उस विवेचना का मन्तव्य था कि इस मानव के चित्त में इस प्रकार के शरीर आवास माने जाते हैं तो महात्मा गदगद मुनि महाराज और दालभ्य मुनि महाराज दोनों का विचार विमर्श होने लगा। उन्होंने कहा कि इस मानव के शरीर में आत्मा के कितने शरीर आवास माने जाते हैं? तब ऋषि कहता है आत्मा विरेह कृता असचत्म्, विरेणी अस्व्रताम् देवश्वता तीनों धाम त्री कृता असुतो वेद के ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा कि आत्मा इस शरीर में भास रहा है। परन्तु यह मनस्तत्व प्रकृति का एक अनुपम वृक्ष उत्पन्न करता है। उस वृक्ष को बंधाना चाहिए। वह ऐसा अनुपम वृक्ष है जिस वृक्ष के लिए यह मन संसार का एक वृक्ष उत्पन्न करता है। यह जो हमारे शरीर में भासने वाला अथवा विभाजन करने वाला इस संसार का जो मनस्तत्व माना जाताहै उस मनस्तत्व में एक नवीन से नवीन मानव के जीवन में वृक्ष उत्पन्न कर लेता है। कैसा उनके रूपों से विराजमान रहता है। यह मानव जो स्वप्न अवस्था को प्राप्त होता है उस समय यह मन जैसे अंकुर होता है एक वृक्ष उत्पन्न करता है। मानव के शरीर में उस एक वृक्ष की उत्पत्ति करना है। शरीर में नस नाड़ियां नहीं होती परन्तु उस स्वप्न अवस्था में विरह (वियोग) होता है, स्वप्न अवस्था में नस नाड़ियां नहीं होतीं। परन्तु मानव एक

ऐसा विशाल नस नाड़ियों का समूह बना लेता है जिसको बनाता हुआ अपने में यह अनुभव करता है कि मैं क्या रचना रच रहा हूँ। इसी रचना को ले करके जब इस संसार की रचना कर लेता है अंकुरों के आधार पर और कैसी रचना रचता है? स्वपन्न अवस्था में नदियां नहीं होती, कोई भी गृह नहीं होता परन्तु अंकुर रूपों से अवाशेष मानव के चित्त में विराजमान रहते हैं। उन्हीं चित्त के आधार पर आत्मा के प्रकाश में क्योंकि आत्मा चेतनावादी है उस चेतना में इस संसार की रचना कर लेता है। कैसी सुन्दर रचना करता है? नदियों को निर्माण कर लेता है, पत्नियों के गृह में पति नहीं होते परन्तु पति पत्नी के निर्माण हो जाते हैं। मानव के शरीर में स्वप्न अवस्था में पत्नियां नहीं होती परन्तु निर्माण कर लेता है, मन ऐसा विचित्र है।

मेरे प्यारे! यही मन है जब जागरूक में यह विराजमान होता है मानो संसार का विभाजन कर रहा है, नाना प्रकार के रसों का विभाजन कर रहा है। इस माता वसुन्धरा के गर्भ में यही मन तो विराजमान है जो नाना प्रकार के रसों का आदान प्रदान कर रहा है। कहीं कसैले का, कहीं मधु का आदान प्रदान। इनका विभाजन करने वाला एक ही स्रोत चलता है। वह जो मनस्तत्व है यह सर्वत्र रसों का विभाजन करने वाला है। वह विश्वभान मन बन करके इस संसार को विभाजनवाद की क्रिया में परणित कर रहा है। यह जो ब्रह्माण्ड है, नाना प्रकार के जो लोक लोकान्तरों में विभक्त होता हुआ दृष्टिपात आ रहा है। ये जो नाना प्रकार की पृथ्वी है जो सूर्य की परिक्रमा कर रही है। मानो सूर्य के अन्तर्गत नाना मण्डल गति कर रहे हैं। एक दूसरे मण्डल की परिक्रमा हो रही है। एक दूसरा परमाणु में गति कर रहा है, वह विभाजन करने वाला कौन है? मेरे प्यारे! इस मानव के शरीर में मन है जो कुटुम्ब का भी निर्णय देता है और इसी प्रकार की तरंगें मस्तिष्क में ओत प्रोत हो जाती हैं। एक पिता अपनी पुत्री का परिचय दे रहा है। परन्तु परिचय देते हुए मानव के हृदय में करुणा है, स्नेह है। पत्नी का निर्णय दे रहा है वहाँ और प्रकार का स्नेह माना जाता है। जब पिता का परिचय देता है तो वहाँ और प्रकार की तरंगों का जन्म हो जाता है। माता का परिचय देता है तो वहाँ ममतामयी हृदय में एक तरंगें उत्पन्न हो जाती है। , वहाँ प्रकृति और ही प्रकार की हो

जाती है। जब पुत्र का निर्णाय देता है तो भिन्न प्रकार की तरंगें हैं। तो इस मन को नापना चाहिए जो शरीरों में विभाजन कर रहा है। मानो सर्वत्र ब्रह्माण्ड का विभाजन कर रहा है।
मेरे प्यारे! आज हमें विचारना चाहिए कि हम प्रभु के राष्ट्र में आए हैं, प्रभु के जगत् में यह कैसी सुन्दर रचना है? इस रचना के ऊपर प्रत्येक मानव आश्चर्य चकित होता रहता है। परन्तु विचार विनिमय यह करना है जिस समय मन इस संसार का विभाजन कर रहा है, नाना प्रकार की वनस्पतियों में रस प्रदान कर रहा है और उसी प्रकार का रस दे रहा है जिस प्रकार का उसमें अंकुर विराजमान है। इस प्रकार का वह रसा स्वादन हो रहा है, उसी प्रकार का वह विभाजनवाद है, उसी प्रकार का रस आदान प्रदान किया जा रहा है। उस मन को हमें जानना चाहिए। यह मन ऐसा विचित्र है कि जब यह ज्ञान और विवेक में जाता है तो उसे यह संसार न होने के तुल्य प्रतीत होता है। जब यह विडम्बना में इतना भयभीत होने लगता है, विवेचना मय बन जाता है, इस मानव के शरीर में जितने पापों के अवाशेष हो सकते हैं वह मानव के मन से उत्पन्न हो रहे हैं।
मेरे प्यारे! मुझे बहुत पुरातन काल में इस मन की अवस्था को दृष्टिपात करने का सौभाग्य भी प्राप्त हो रहा है। यह मन ऐसा विचित्र है, इसमें वायु की ऐसी तरंगें भरण कर जाती है कि जहाँ उसे इन वायु की तरंगों वाला वातावरण प्राप्त होता है वहाँ इस मन की प्रतिक्रियायें होने लगती हैं और यह मन वहीं ओत प्रोत होने लगता है। वहीं इसको पुजारने लगता है और जब तक इस वायु के क्षेत्र में यह मन नहीं आता मानो इतना विभाजन हो जाता है। इसके मन के साथ में, आत्मा की बलिष्ठता से इतना विभक्त हो जाता है, इतना दूर चला जाता है कि तरंगें उसकी तरंगित नहीं हो पातीं तब तक द्वितीय क्षेत्र में उसके मन की विभिन्न कृतियां प्राप्त नहीं होती। वह शरीर से रुग्णा बना रहता है। यहाँ वेद का ऋषि कहता है मनसचत प्रभे वृत्ताः हे मन तू कितना विचित्र है। आज मन की अवस्था को जाना जाए कि यह कितना विचित्र है। आज हमें इस मन के अवशेषों में जाना चाहिए, जहाँ ववेक उत्पन्न होता है। परन्तु विवेक में रह करके मानव के अन्तःकरणा में जो इन्द्रियों से इस मन का सम्बन्ध है क्योंकि यह इन्द्रियों

का सारथी बना हुआ है। यह मन आभा से मुक्त होता हुआ अब्रेक दृष्टिपात होने लगता है। तो मेरे प्यारे! यह मन ऐसा विचित्र है कि इसी अवाशेषों के वातावरण में जा करके इसकी आभा वहीं मिलान करने लगती है। क्योंकि इन्द्रियों से इसका सम्बन्ध रहता है। जहाँ ज्ञानेन्द्रियां कर्मोन्द्रियां विराजमान हैं इन्हें स्थिर किए रहता है यह मन ही है। परन्तु यह बुद्धि इस शरीर का सारथी बना हुआ है और बुद्धि के द्वारा मन को स्थिर किया जाता है और आत्मा अब्रेह, उस मनस्तत्व में आत्मा के प्रकाश में बुद्धि विराजमान है और विराजमान हो करके यात्रा कर रहा है। वह जो यात्रा हो रही है वह मनस्तत्व और बुद्धि के आधार पर हो रही है। इसी प्रकार आज हमें विचार लेना चाहिए कि वह जो मन है वह कितना विचित्र है। मन ही में संसार विस्तार को प्राप्त होता है। संस्कार होते हैं पति पत्नियों के परन्तु आगे जो संसार क्षेत्र में प्रबलता उत्पन्न होती है। वह मन आत्मा के प्रकाश में विभाजन, मानो देखो, मन आत्मा का प्रकाश ले करके इस संसार को विभक्त कर रहा है। नाना रूपों में, रज रूपों में क्या, वीर्यत्व में क्या इनका विभाजन कर रहा है। उनको ग्रहण कर लेता है वायु अवशेषों में क्या मनस्तत्व की सहायता ले करके।

आज मैं इस वाक्य को गम्भीर बनाना नहीं चाहता हूँ। इस मन को जानने के लिए मानव को बहुत तपस्या की आवश्यकता है। कहीं कहीं मानव ऐसे अवाशेषों में चला जाता है, एक मन से ही इतना प्रभाव हो जाता है कि द्वितीय प्राणी के मन से उसकी मृत्यु के अवाशेष उत्पन्न हो जाते हैं। आज विचारना चाहिए कि इस मन को प्राण से विभक्त न होने दें। हम आत्मा से इतना विभक्त न होने दें जिससे हमारा यह जो पञ्च महां भौतिक शरीर है इसे इन्द्रियों में नाना प्रकार के अवाशेष पापाचार की उत्पत्ति होती है, मन इतना विभक्त हो जाएं कि मानव का शरीर सदैव इस मन के साथ रुग्ण न रह करके इस मन को जान करके कि तन के अवशेष कहाँ जाते हैं। मन की आभा को जानने के लिए मानव को सदैव तपस्या की आवश्यकता रहती है। मैंने बहुत पुरातन काल में यह कहा है कि एक मानव शरीर की इच्छा को प्राप्त करके, मन, आत्मा इतनी बलवती हो जाती है इस प्रकृति को जानने के लिए, आत्मा की पिपासा जब जागरूक

हो जाती है परमात्मा को जानने के लिए। ऐसे ही भौतिकवाद में इतनी पिपासा परमाणुवाद की जागरूक हो जाती है कि यह मन आत्मा को प्रकाश में सदैव परमाणुओं को ही खोजता रहता है, परमाणुओं को जानता रहता है। मानो उसकी कितनी प्रबल इच्छा बन चुकी है कि उस इच्छा के आधार पर नाना प्रकार के परमाणुओं को ले करके इतना भौतिकवाद में रमण किया जाता है कि उसकी उड़ान इस पृथ्वी से ले करके ऊर्ध्वगति को चली जाती है कि सूर्य मण्डलों में क्या स्वाति नक्षत्रों तक चली जाती है। जहाँ सहस्रों सूर्य प्रकाश देते हों उस क्षेत्र में चले जाते हैं। वहाँ जा करके इसी प्रकृति से अपने प्रकाश से ही यह पकाशमान होता रहता है, शरीर की इच्छा नहीं रह पाती। यह मन ऐसा विचित्र है आज इसको जानने के लिए उत्कट इच्छा होनी चाहिए। हम इस मन को जानें। यह मन कैसा मृतक सा बना हुआ है। पापाचरणों पे आ करके जब पाप अधिक एकत्रित हो जाते हैं उसी काल में यह मन ऐसे भयंकर अंकुर इस प्रकृति में से लाता है जिससे उसके पापी अवाशेषों में मन के द्वारा उसके अन्तःकरण में छा जाते हैं। अन्तःकरण पर छा करके ऐसे अवशेष अंकुर उत्पन्न होते हैं जिससे मानव शरीर को ही त्याग देता है। और भी नाना प्रकार के अंकुरों की उत्पत्ति होती रहती है। मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं दिया करता है।

विचार विनिमय यह कि महर्षि पतंचलि ने क्या आदि आदि ऋषियों ने यह कहा है कि यदि तुम इस मन को जानना चाहते हो तो विभक्त होने वाली जो प्रक्रिया उससे इसका मिलान करना प्रारम्भ कर दो। क्योंकि मन और प्राण का दोनों को एकाग्र करने वाला प्राणी ही संसार में योगी बनता है। जितनी भी साधना हैं सब इसके अन्तर्गत ही हुआ करती हैं। विभक्त होने वाली और विभाजन करने वाली दोनों शक्तियों को एक चित्त में पिरोने का प्रयास करो। बेटा! जब दोनों एक चित्त में पिरोई जाती हैं तो योगी इनके ऊपर विश्राम करता है और विश्राम करता हुआ जो आत्मा के प्रकाश में कार्य कर रहे थे आत्मा उनके ऊपर शयन कर जाता है और शयन करता हुआ आदि ऋषियों ने यह कहा है कि चित्त के क्षेत्र में रमण करता हुआ मानव के ब्रह्मरन्ध्र में संचित्त कर देता है

और संचित्त करने पर यह संसार इसके लिए एक सहज बन जाता है।
इस मानव के शरीर में एक स्थूल रूप में यह मन और आत्मा सर्वत्र वृक्ष बनाने वाला एक मन विराजमान रहता है। वह इन्द्रियों से ही संसार का वृक्ष बनाता है और वृक्ष बना करके उस वृक्ष को किसी में लय कर देता है। लय करने का अर्थ मेरे प्यारे! देखो, इस शरीर को त्याग कर यह आत्मा जाता है। यह प्रकृति के मूल पञ्चतनमात्राएं और ज्ञानेन्द्रियों की तरंगें मन बुद्धि, चित्त अहंकार तथा पञ्च प्राण सर्वत्र सूक्ष्म शरीर के साथ इस स्थूल शरीर को त्याग करके जाता है। वह जो स्थूल शरीर बना हुआ है इसमें प्रकृति की गाथा गा रहा है, प्रकृति का हमें निर्णय करा रहा है कि मैं यह प्रकृति हूँ जो इस शरीर में छाई हुई हूँ, शरीर में मेरा वास रहता है। इसी प्रकार अब्रेह जब यह सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है तो वह चित्त नाम की जो स्थली है इसमें करोड़ों जन्मों के संस्कार अंकुर रूपों से विराजमान रहते हैं, वह सूक्ष्म शरीर के साथ गायन करता है।
हमारे यहाँ दो प्रकार के सिद्धान्त माने जाते हैं एक सिद्धान्त तो इस सूक्ष्म शरीर में यह माना जाता है कि ज्यों ही इस शरीर रूप को त्यागा, त्यों ही द्वितीय शरीर आत्मा को प्राप्त हो जाता है। एक शरीर को त्यागा है दूसरा शरीर उसके लिए नियुक्त है। वायु में कुछ गति करता हुआ माता के गर्भ स्थल में प्रवेश कर जाता है और प्रवेश करके माता का गर्भाशय बलवत् होने लगता है। एक सिद्धान्त तो यह माना जाता है। द्वितीय सिद्धान्त यह माना जाता है कि कुछ अवशेष ऐसे है। जो आत्मा अन्तरिक्ष में कुछ दिवस के लिए गति करता है और वह गति करता हुआ माताओं के शरीरों में प्रवेश करता है उसे पुनः शरीर प्राप्त हो जाता है। तृतीय गति यह है कि कुछ आत्मा ऐसी होती हैं जिनका सूक्ष्म और कारण शरीर दोनों के मध्य एक अवस्था होती है मानो देखो, यह कारण में प्रवेश होने जा रहा है और सूक्ष्म से इसका उपराम हो गया है। यह आत्मा पितरयान में रमण करने लगता है उसको पितरयान कहते हैं परन्तु आत्मा कैसी होती हैं? उन आत्माओं के कैसे लक्षण हैं? वह जो आत्मा पितरयान में रमण कर गई है वह देव आत्मा कहलाती हैं। वे देव आत्माएं ऐसी होती हैं जो समय समय पर शरीरों को प्राप्त

हो करके इस वैदिकता का क्या किसी सत मार्ग का अनुसरण ले करके इस संसार से चली जाती हैं। वह पितरयान कहलाता है, वे पितर आत्मा कहलाती हैं, वे पितर कहलाती हैं।

तो मेरे प्यारे! वह आत्मा जो शरीर में न रह करके अन्तरिक्ष में कुछ गति कर रही हैं परन्तु इन आत्माओं की अवधि होती है कि इतने समय तक अन्तरिक्ष में गति करने के पश्चात् हम शरीरों को प्राप्त कर सकते हैं, माता को श्रेष्ठ स्वीकार करके माता के इस शरीर में भी प्रवेश कर सकते हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में यह कहा है कि वह आत्मा जो प्राण में प्रविष्ठ कर जाती हैं और परमात्मा को प्राप्त होने वाली हैं वह आत्मा संसार में जीवन मुक्त कहलाती हैं। उन आत्माओं को यह भान हो जाता है, वह आत्मा इस प्रकृतिवाद के परमाणुओं को अच्छी प्रकार जानती है। क्योंकि यह प्रकृति सत् है और आत्मा सत् और चित् है और परमात्मा सत् चित् आनन्द कहलाया गया है। आत्मा सदैव आनन्द की पिपासी में रमण करता रहता है और आनन्द उसे प्राप्त होता है। उस आनन्द के प्राप्त करने के लिए आत्मा को अवशेषम् विरेह की अस्तो, वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है कि वह जो आत्मा है जो इस प्रकृति के अवशेषों को, परमाणुओं को जानती हैं और जान करके इस स्थूल शरीर को भी प्राप्त कर सकते हैं और सूक्ष्म को भी प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि वह परमाणुवादों से शरीर का निर्माण होता है और संकल्प मात्र से उन परमाणुओं से अपने उन शरीरों का निर्माण कर लेते हैं और शरीरों को प्राप्त होते रहते हैं।

मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा करने नहीं आया। यह तो विशाल आभा है। इस विशाल आभा में मैं इतना रमण करना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय केवल यह कि आत्मा कोजानने के लिए सदैव तत्पर हो जाओ। संसार में पितर यान और पितर लोकों को जाना जाए। पितर लोक क्या हैं? मैंने पुरातन काल में भी इन वाक्यों को निर्णय किया था, आज मैं इस क्षेत्र के विस्तार में जाना नहीं चाहता हूँ। हम इस आत्मा को और मन को जानने का प्रयास करें। ये मन के ही बन्धन कहलाए जाते हैं। जब सूक्ष्म शरीर होता है वहाँ भी आत्मा का चक्र चलता है क्योंकि वहाँ प्रकृति के अवशेष द्वारा हैं,

(समक्ष हैं) सत्ता द्वारा है, यहीं प्रकृति के आवेश एक मण्डल सा बनाए रहते हैं। इसके पश्चात् कारण में भी यह मन साथ रहता है। परन्तु जब ये मोक्ष में जाते हैं तो केवल मन का आवेश इससे विच्छेद हो करके कारण औश्र कार्य रह करके मानो ज्ञान और प्रयत्न की आभा आत्मा के साथ में रह करके मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का नाम हमारे यहाँ मोक्ष माना गया है। उसे मोक्ष की गति कहा गया है। परन्तु आज मैं इस मोक्ष के सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय केवल यह है कि हम इस मन को जानें कि यह कितना विशाल है। यह मन ही है जो एक दूसरे से आभायित हो जाता है अथवा प्रभावित हो जाता है। हम उन आवरणों में, उन कृतियों में जाने का प्रयास करें जिन कृतियों में जाने के पश्चात् माता अपने मन के द्वारा अपने बालक को सुशोभित बना देती है। वही माता है जो भय के अवशेष ले करके बालक को भयभीत बना देती है। यह मन ही है जो प्रत्येक वस्तु को आत्मा के प्रकाश में ग्रहण करता है।

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। माता मन्दालसा जो अपने पुत्र को लोरियां दे रही है और तीन शब्दों को प्रतिपादित करती है। यह आत्मा मानो अखण्ड है, शुद्धोसि, बुद्धोसि का विवेचन चल रहा है माता का और माता कह रही है। हे बालक तू बुद्धिमान है किसी काल में भी अबुद्धि नहीं है, तू शुद्ध है, किसी भी काल में तू अपवित्र नहीं होता, तू अखण्ड रहने वाला है, किसी काल में भी तेरा ह्रास नहीं होता, किसी भी काल में तू मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। परन्तु आत्मा ब्रह्मे कृताः इस प्रकार की जब आभा होती है तो मेरे प्यारे! देखो, माँ अपने बालक को अथवा गति की शिक्षा दे रही है। ऊर्ध्व गति में ले जाने के लिए वह प्रयास करती चली जा रही है।

आज हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए इस मनुष्यत्व को जानने का प्रयास करें। यह मन है जो तुम्हें नाना रूपों में दृष्टिपात आ रहा है। नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की आभा में तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है। निर्णय कराने वाला यह आत्मा है परन्तु मन को जानके मरण करते हुए दृष्टिपात करो। अज्ञानता से दृष्टिपात करोगे तो तुम्हारे पाप कर्म ही मानो नाना रूपों में दृष्टिपात आने से वे तुम्हारे मृत्यु का मूल कारण

बन जाते हैं मानो तुम्हारे शरीरों को रुग्ण कर देते हैं। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं अश्विनी कुमार की चर्चा करूंगा। आयुर्वेद के ऊपर आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। हमें इस मन को जानना चाहिए। मन की आभा को ले करके जब हम अग्रणी बनते हैं। और मन को जानने का प्रयास करते हैं। एकान्त स्थान में विराजमान हो करके इस मन के ऊपर विचारा जाए। मन स्वयं विचारता है। शरीर का वैद्यराज बन जाता है।

कल मैं आयुर्वेद के ऊपर कुछ विचार प्रकट करूंगा। आज का विचार यह है कि हम इस मनस्तत्व को और प्राणत्व दोनों को एक ओ३म् रूपी धागे में तू अपने को पिरो। माता के आदेशों का पालन करने वाले बालक ब्रह्मवेत्ता बने। पांच पांच वर्ष की आयु में मन की व्यापकता से, मन के आवेशों से बालक ब्रह्मवेत्ता बन गए। आत्मा के स्वरूप को जानने वाले बन गए पांच वर्ष की आयु में। माँ तू अपने मन की आभा से अपने ज्ञान के द्वारा अपने पुत्रों! को ज्ञान में परणित करा सकती है। ज्ञान की आभा जब मनस्तत्व के द्वारा आती है तो यह मनस्तत्व विचित्र बन करके मानव के शरीरों में प्रवाह से कार्य करता है। परन्तु जब अज्ञान आता है तो अपने आनन्द को जो शरीर में प्राप्त होता है उसको द्वितीय जगह दृष्टिपात कर रहा है। जब हम अपनी वृत्ति के अवशेषों को द्वितीय स्थली पर दृष्टिपात करते हैं तो देखो, वह मन के कारण क्योंकि हमने मन को इतना आवरण वाला बना लिया कि हम आन्तरिक मुख को जगत् में दृष्टिपात कर रहे हैं। वह हमारे मन की जो तृष्णा है उसे स्थिर करना चाहिए। हमें जितना आनन्द आन्तरिक जगत् में आता है इतना मानो ऋषि मुनियों ने लोक लोकान्तरों को जानने के पश्चात् ब्रह्माण्ड को जानने के पश्चात् अन्त में उन्होंने यह कहा कि आत्मा के क्षेत्र में चले जाओ। परमात्मा के क्षेत्र में चलो। वहाँ तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी। शान्ति की स्थापना के लिए ऋषि ममुनि भौतिकवाद को त्याग करके उसका ज्ञान करके, वेद को दृष्टिपात करके जब यह आत्मा के क्षेत्र में आते हैं, परमात्मा के क्षेत्र में जाने का प्रयास करते हैं। आत्मा का चिन्तन करना, दार्शनिक विचारों में प्रवेश करना अनिवार्य है।

यह मन सर्वत्र इसी प्रकार हमें जगत् पर आधारित रहता है। हम परम पिता परमात्मा

की आराधना करते हुए इस मनस्तत्व को जानते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। हम इस मन को प्राण सहित आत्मा से दूर न करें। इतना प्रकृतिवाद में न ले जाएं। जिससे हमारे पाप ही हमारी मृत्यु का कारण इस मन में प्रवेश करके बनें। यह मन और प्राण शरीर को त्याग करके सूक्ष्म शरीर को धारण करें। हम दर्शनों को विचारते हुए अपनी बुद्धि से परमात्मा के क्षेत्र में पहुंचते हुए ऊर्ध्व गति में जाने का प्रयास करें। ऊर्ध्व गति में जाने का प्रयास करके परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए हम देव की आभा का गुणगान गाते हुए संसार सागर से पार होना चाहते हैं। यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा कल मैं महर्षि अश्विनीकुमारों और दधीचि के मनस्तत्व की कुछ चर्चा करूंगा इस सम्बन्ध में। क्योंकि अश्विनी कुमारों ने एक सौ एक वर्ष तक आयुर्वेद का बहुत सुन्दर अध्ययन किया। आयु का जो वेद बना वह मन के ऊपर बना है। इसके ऊपर विचार विनिमय होगा। अब शेष चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा।

आज का वेद का ऋषि क्या कह रहा था कि हम इस मन और प्राण को जानने का प्रयास करें। योग के द्वारा लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ें और उड़ान उड़ते हुए इस गान को हम अपने हृदय में दृष्टिपात करें। इसी को हम जानते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। यह है बेटा! आज का वाक्। आज का वाक् क्या कह रहा है कि हम अनुसन्धान करें। प्रत्येक वस्तु को मनस्तत्व की आभा में दृष्टिपात करें। यह है आज का वाक्। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं हम कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा। श्री नन्द किशेर काशी पुर

११ 17 05 1975 पुष्प 27 पवित्र संकल्प पवित्र आहार

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया।

परमपिता परमात्मा की आभा और उसकी प्राचीनता और नवीनता के ऊपर प्रायः अनुसंधान करना। सबसे प्रथम तो मानव को यह जानना है कि परमात्मा नवीन रहता

है, अथवा वह प्राचीनता में। विचार आता रहता है कि परमात्मा तो सदैव नवीन रहता है। क्योंकि उसके ज्ञान और विज्ञान में अथवा उसकी रचना में कदापि भी प्राचीनता नहीं है, उसमें वृद्धपन नहीं आता। जैसे मानव के जीवन में एक सत् है उस सत् का कदापि भी अभाव नहीं होता। सत् सदा सत् ही बना रहता है। वह करोड़ों वर्ष पूर्व भी सत् था, वर्तमान में भी वह सत् रहता है। इसी प्रकार वे परमपिता परमात्मा सदैव प्रकाश का देने वाला है और उसमें सदैव नवीनता रहती है वृद्धपन नहीं आता। माता के लिए पुत्र में वृद्धपन नहीं आता, माता उसे सदैव पुत्र की दृष्टि से दृष्टिपात करती रहती है। क्योंकि वह माता का हृदय है। इसी प्रकार माता के लिए पुत्र और पुत्र के लिए माता नवीन बने रहते हैं। वह युवा भी हो जाएं, वृद्धपन भी आ जाएं परन्तु ममतामय शब्दों में इसकी महत्ता है इतनी विचित्रता है कि जिस भी काल में माता उच्चारण करता है, विभोर हो जाता है और वह ममतामयी माँ उच्चारण करके उसमें वृद्धपन नहीं रहता।

परमपिता परमात्मा का जो ज्ञान है अथवा विज्ञान है वह सदैव नवीन रहता है, उसमें किसी भी काल में वृद्धपन नहीं होता। क्योंकि यह जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड है, यह उस परमपिता परमात्मा का संकल्प मात्र है। उसका जो संकल्प है वह नितांत (पूर्ण) है और उस प्रभु के संकलन में भी वृद्धपन नहीं आता। वह तो एक संकल्प है। जैसे माता पिता के गृह में आत्मा प्रवेश होता है, वह माता पिता का संकल्प है। इसी प्रकार यह जो रचनाहै, ब्रह्माण्ड है और इसमें जो नियमावली प्रारम्भ हो रही है, सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है, सायंकाल अस्त हो जाता है, रात्रि छा जाती है, चन्द्रमा सोम देने लगता है, तो यह जो नियमावली का क्रम चल रहा है यह प्रभु के संकल्प मात्र से चल रहा है। बिना संकल्प के मानव का जीवन कदापि भी ऊँचा नहीं बनता, मानव सदैव संकल्प में ही निहित रहता है और वह संकल्प मात्र से ही गृह का निर्माण हो रहा है, गृह की आभा चल रही है। इसलिए आज हमें संकल्प को विचार विनिमय कर लेना चाहिए।

सबसे प्रथम जब हम परमात्मा के आँगन में जाना चाहते हैं, अपने जीवन को साधनों के क्षेत्र में ले जाना चाहते हैं, साधना करना चाहते हैं तो सबसे प्रथम हमें संकल्प को धारण करना है और संकल्पवादी बनना है। क्योंकि बिना संकल्प के मानव कोई भी

साधना नहीं कर सकेगा। गृह का निर्माण भी, अग्नि को प्रदीप्त भी इसी काल में कर सकता है जब उसका संकल्प विचित्र होता है, संकल्प में महत्ता होती है, संकल्प में शुद्धता होती है, संकल्प में प्रकाश होता है।

साधना किसे कहते हैं? यह जो मन बिखर जाता है, यह जो मन की प्रवृत्तियां चंचल बन जाती हैं, इन प्रवृत्तियों की साधना है। प्रवृत्तियों को एक सूत्र में लाना है। जैसे मन के बिखरे हुए होते हैं और जब मानव माला का निर्माण करता है, तो इन मनकों को एक सूत्र में पिरोता है। माला किसे कहते हैं? माला कहते हैं सूत्र और सूत्र में पिरोएं हुए मनके। जब मनके और सूत्र दोनों का समन्वय हो जाता है, तो यह माला बन जाती है। इसी प्रकार मानव के जीवन में अपने जीवन की आभा है। जीवन के जो पुष्प हैं, मनके हैं वह बिखरे हुए हैं उनको एक सूत्र में लाना है? और वह सूत्र क्या हैं? वह सूत्र है परमात्मा का चिन्तन। अपने को जब मानव परमपिता परमात्मा रूपी धागे में पिरो देता है, तो वह माला को जानता है और माला को जानने वाला पुरुष साधक बन जाता है। माला कहते हैं धारण करने को। जैसे मानव ममतामयी माता उच्चारण करता है, माँ की श्रद्धा करता है और श्रद्धा करता हुआ माँ शब्द में ही श्रद्धा है। इसी प्रकार माला में ही श्रद्धा है और श्रद्धा करने वाला मानव केवल यही नहीं, माला कहते हैं जो मानव के मन में प्रतिष्ठित हो जाती है और मन जिससे पवित्र हो जाए उसका नाम माला कहलाया जाता है। यहाँ वेद का ऋषि कहता है ममतं प्रभे अश्वातम् मय बच्चतम् व्यापकम् देवाः अश्वताप् धी स्वागत प्रभे। एक मानव वेद का अध्ययन कर रहा है और अध्ययन करता हुआ, प्रत्येक वेद का मन्त्र आता है और प्रत्येक वेद के मन्त्र के प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण किया जाता है। ऐसा क्यों? यहाँ महर्षि अष्टाचारी ने और आदि ब्रह्मा ने कहा है, रेधायं ऋषि ने और वायु मुनि महाराज ने भी नाना टिप्पणियां की हैं। उनका विचार था कि यह जो वेदमन्त्र है, एक वेदमन्त्र प्रकृति की गाथा गा रहा है, प्रकृतिवाद में जितना ज्ञान और विज्ञान है, परमाणुवाद है, जितना भी मानव का विचार है वह उसमें निहित रहता है और वह जो विचार है वह किसमें पिरोया हुआ है, वह जो प्रकृति का विज्ञान है, तरंगें हैं, परमाणुवाद है वह जिसमें पिरोया हुआ है तो यहाँ

वेद का ऋषि कहता है कि ओ३म् रूपी धागे में प्रत्येक मनके की भांति पिरोया हुआ है। प्रत्येक वेदमन्त्र मानो प्रकृति की गाथा गा रहा है, परमात्मा का गुण गाना गा रहा है। जब उस ओ३म् रूपी सूत्र में यह पिरोई जाती है तो उसको माला कहते हैं।
मेरे प्यारे! जब हमारी प्रत्येक इन्द्रियाँ जो मनके हैं और यह ओ३म् रूपी धागों में जब पिरोएं जाते हैं तो यह शरीर मानवीय माला बन जाता है। प्रत्येक इन्द्रिय ओ३म् रूपी धागे से पिरोई हुई होनी चाहिए। जैसे वेद रूपी ऋचा ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोई रहती हैं वह माला बन जाती है इसी प्रकार हे मानव! तू साधना के क्षेत्र में जाना चाहता है, परमात्मा के निकट जाना चाहता है तो ओ३म् रूपी धागे को अपना, जिसको अपना करके तेरे जीवन की आभा विचित्र बन जाती है।
मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करता था। पूज्य गुरुदेव से जब साधना के सम्बन्ध में विचार विनिमय प्रारम्भ हुआ तो गुरुदेव ने कहा हे वत्स! आज तुम साधना में जाना चाहते हो तो सबसे प्रथम अहिंसा परमो धर्मः को अपनाओ। मन कर्म वचन तीनों इस प्रकार के विचित्र होने चाहिए। जिससे किसी प्रकार का पाप नहीं होना चाहिए। क्योंकि मन में विचार आता है, वचन से भी कई वाक्य मिथ्या उच्चारण न करे और जब कर्म से भी पाप न करने के लिए तत्पर हो तो मन, वचन, कर्म यह तीनों पवित्र होने चाहिए। तीनों पवित्र किस काल में होते हैं? मन कैसे पवित्र होता है?
याज्ञवल्क्य मुनि महाराज जब साधना में परणित होने लगे तो उस समय यह विचारा कि तू साधना कर और भयंकर वन में मुझे तप करना है, साधना करनी है, मुझे अपने जीवन को परमात्मा के आनन्द को आनन्दित होना है तो मुझे क्या करना चाहिए? लगभग उन्हें विचार विमर्श करते हुए दस दिवस हो गए और उसके पश्चात् उन्हें यह विचार आया कि मन को पवित्र बनाने का नाम तप कहलाया गया है। अब मन को कैसे पवित्र बनाएं? यह मन क्या है? यह प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्त्व कहलाया गया है। ऋषि ने विचारा कि मन को पवित्र बनाने के लिए मन का जो सम्बन्ध है वह आहार से रहता है। उन्होंने उस अन्न को एकत्रित करना प्रारम्भ किया जिस अन्न को कृषक

अपने गृह में ले जाते थे और जो पृथ्वी में बिखरा हुआ अन्न पड़ा रह जाता था उसको वे एकत्रित करते थे। उस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं था। बारह वर्ष तक उस अन्न को पान किया उससे उनका मन पवित्र हो गया। मन तपायमान हो गया, तपस्या में परणित हो गया।

साधना उसे कहते हैं जब हम इन्द्रियों का जो विषय है, इन्द्रियों का जो साकल्य है, उसको एकत्रित करके ज्ञान रूपी अग्नि में यज्ञ करता है, वह मानव साधक कहलाता है। वह मानव यौगिक कहलाता है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बारह वर्ष तक इस प्रकार का कठोर तप करने के पश्चात् उन्होंने अपने जीवन की अनुभूति की है शतपथ ब्राह्मण नाम की पोथी का निर्माण किया। जब उस पोथी को निर्माणित करने लगे तो उन्होंने उसमें बहुत सुन्दर वाक्य प्रकट किये। इसमें लगभग 72 यागों का वर्णन है उस पोथी में, 72 प्रकार के याज्ञों का कर्म काण्ड उनके स्मरण है। विचार आता है याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इतना कठोर तप किया। जब हम उस पोथी को दृष्टिपात करते हैं तो एक एक शब्द में ऋषि का चरित्र और उनकी विद्वता और साधना प्रत्यक्ष दृष्टिपात आती है। मानव का जीवन जब साधनामय होता है तो उस मानव की प्रत्येक इन्द्रिय साधनाओं से भरती रहती है।

जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत प्रोत हुए और जब हमने यह कहा कि प्रभु! हम साधना करना चाहते हैं तो पूज्यपाद गुरुदेव ने लगभग एक वर्ष तक तो गायत्री छंदों का पठन पाठन कराया, सुन्दर आसन है, सुन्दर स्थान है, सुगन्धि से युक्त जब वह साधना में परणित होते हैं, मन को एकाग्र करने का प्रयास करते जब वे आहार देते थे तो वृक्षों का पंचांग देते जैसे वट वृक्ष है पीपल वृक्ष है, जाल वृक्ष है, स्वाति वृक्ष है, सौमभानु वृक्ष है, इन वृक्षों का पंचांग देते देखो, आठ वृक्ष हैं, आठों वृक्षों का पंचांग आठों दिवस में प्रदान करते। उस पंचांग से शरीर में मल की विद्यमानता नहीं रहती थी। प्राणायाम स्वयं होता था। पिपासा नहीं होती थी। संसार की नाना प्रकार की कामना जागृत नहीं होती थी। जब संसार की कामना नहीं रहती तो जब वह मानव साधना करता है, गायत्री छन्दों के द्वार पर जाता है मानो अमृत का पान करता हुआ उस

गायत्री के गर्भ में जाता है जहाँ गायात्राणी ब्रह्म वेत्ता। जब वह ब्रह्मवेत्ता बनने की इच्छा प्रकट करता है, ब्रह्म का आत्मा का साक्षात्कार होता है।
मुझे वह काल स्मरण आता। मेरे प्यारे! मुझे भी कुछ समय तक साधना कराने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मुझे महाराजा अश्वपति के यहाँ एक सौ एक वर्ष तक अध्यापन का कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हम यह कहा करते हैं कि वास्तव में अध्यापन का कार्य एक साधना का कार्य है। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचारी बनाना, ब्रह्मचारिणी को ब्रह्मचारिणी बनाना यह महान कर्त्तव्य है, यह महत्ता का सन्देश हमारे समीप रहा है। आज मैं उन विचारों में जाना नहीं चाहता हूँ। आज हम ऋषियों के समूह में विराजमान हो करके साधना में परणित हो जाएं। जिस आसन पर साधक रहता है वह आसन भी पवित्र होता है।
मुझे वह काल स्मरण है जब महर्षि सोमभानुकेत ऋषि थे उनकी कन्या का नाम शकुन्तला था शकुन्तला के गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ और जन्म होते ही उस कन्या के दूरिता आ गई, दूरिता आने के कारण वह आश्रम को त्याग करके चले गए, विवेक ऋषि ने उस कन्या का अपने आश्रम में पालन पोषण किया। नाना वनस्पतियों का पान कराते। एक त्रतिकेतु नामक औषधि होती है उसका आसन बनाया जाता है, एक सर्पकेतु नामक औषधि होती है उसमें यह विशेषता होती है कि सर्प उसके निकट नहीं जाता। इसी प्रकार जो मानव साधना करता है उसका अभिप्राय है कि उस औषधि में अग्नि प्रधान है, उस पर विराजमान हो करके मृगराज, सिंह राज भी समीप आ जाएं तो वह भी उसकी रक्षा करता है।
आज मैं उन वाक्यों को प्रकट करा रहा हूँ कि जब यह कन्या आसन पर विराजमान होती तो बाल्यकाल में ही उसे वेदों का अध्ययन कराने लगा, ब्रह्म को आभा का वर्णन कराने लगा और वह पांच वर्ष की कन्या पूर्ण ब्रह्मवेत्ता बन गई। क्यों बनी? क्योंकि वह साधना करने लगी थी। साधना किसे कहते हैं? जब मन को अग्नि में ताप किया जाता है। वह ब्रह्म वेत्ता बनी। बेटा! शकुन्तला का नाम तुमने श्रवण किया होगा। ब्रह्म वेत्ताओं की सभा में ब्रह्म का उद्गार उत्पन्न होता था, ब्रह्मवेत्ता उससे चकित हो जाते थे। महर्षि

तेरनस्तुत ऋषि महाराजा को मैंने ब्रह्म का उपदेश दिया। उसके पश्चात् उनके पुत्र महर्षि वशिष्ठ ने ब्रह्म का उपदेश दिया। ब्रह्म की साधना की शकुन्तला के चरणों में विराजमान हो करके उन्होंने की। परिणाम उसका यह हुआ कि वे ब्रह्मवेत्ता बने। ब्रह्मवेत्ता कौन होता है? ब्रह्मवेत्ता वह होता है जिसमें ज्ञान विज्ञान हो, विवेक हो, और नम्रता हो। बिना ज्ञान, विज्ञान, विवेक और नम्रता के कोई भी ब्रह्म वेत्ता नहीं बन सकता।
बेटा! तुम्हें विश्वामित्र का जीवन स्मरण होगा। जब तक उनके जीवन में नम्रता नहीं आई उन्हें तब तक ब्रह्म ऋषि की उपाधि प्रदान नहीं की। गायत्री छन्दों के गर्भ में जाने के पश्चात् भी नम्रता नहीं आई, नम्रता तो केवल मानव के हृदय का उद्गार है। वह ग्राह्य है। जब वह उत्पन्न हो जाता है तो मानव का जीवन सुन्दर बन जाता है।
विचार विनिमय क्या कि यह साधना का प्रकरण है। देखो, पांच वर्ष का बालक ब्रह्मवेत्ता बन जाएं। उस शकुन्तला ने महर्षि भृंगी मुनि महाराज से जो 288 वर्ष के ब्रह्मचारी थे और जब शकुन्तला की आयु 6 वर्ष की थी तब उनका ब्रह्म के ऊपर शास्त्रार्थ हुआ। जब शास्त्रार्थ हुआ तो महर्षि भृंगी ने यह कहा कि हे पुत्री! वास्तव में मैं शरीर से पुत्री उच्चारण कर सकता हूँ परन्तु वास्तव में मैं नतमस्तिष्क हो रहा हूँ। तुम्हारा हृदय, तुम्हारा ज्ञान और तुम्हारा विज्ञान विवेक से भरा हुआ है। महर्षि भृंगी नतमस्तिष्क हो गये। आज प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या को साधना में परणित होना चाहिए। अपने जीवन को सुन्दर बनाना चाहिए परन्तु मैं यह उच्चारण करने नहीं आया हूँ, कि संसार का कार्य नहीं होना चाहिए। संसार का कार्य भी हो। परन्तु मानव का जीवन भी सुन्दर हो, ये दोनों वस्तुएं मानव के साथ साथ जैसे भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद दोनों का साथ साथ ज्ञान होता है इसी प्रकार मानव को दोनों में एक ही साथ गमन करना चाहिए। गायत्री छन्दों के गर्भ में जाने वाला ऋषि कहता है कि जब तक मुझे आभा प्राप्त नहीं होती तब तक मेरा जीवन सुन्दर नहीं बनता। आभा किसे कहते हैं? आभा कहते हैं, महापुरुषों के जीवन की। उनके जीवनों से सुगन्धित प्राप्त होती है और उस सुगन्धि को पान करने वाला पुरुष इस संसार सागर से पार हो जाता है।
कल के वाक्यों में भगवान कृष्ण और अर्जुन दोनों का सम्वाद प्रारम्भ हो रहा था। उसमें

मैंने कुछ सूक्ष्म विराट स्वरूप का वर्णन किया। विराट स्वरूप कहते हैं आत्मा का जो शब्द है, आत्मा का जो प्रकाश है, उससे दूसरों का प्रकाशित होने का नाम विराट स्वरूप है। क्योंकि ऋषियों का ऐसा वचन है कि ब्रह्माण्ड में जो उन्नति हो रही है, वह शरीर में भी गति हो रही है। शरीर में अग्नि है, पञ्च महाभूत हैं और पञ्च महाभूतों से यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। यह ब्रह्माण्ड अपनी अपनी आभाओं में आमंत्रित हो रहा है। इसी प्रकार अग्नि की आत्मा इस ब्रह्माण्ड को परमात्मा स्थिर किए रहता है और मानव का जो शरीर है, वह सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है, इसका आत्मा स्थिर किए रहता है, जैसे आत्मा इन पञ्च महाभूतों को स्थिर करता है इनको दृष्टिपात करने का नाम ही विराट स्वरूप माना गया है। जैसे गुरु शिष्य का सम्वाद जब अर्जुन को अज्ञान छा गया तो भगवान कृष्ण ने यह कहा कि मैं अग्नि हूँ मैं ही मरुत हूँ, नाना प्रकार से मैं का प्रतिपादन भगवान कृष्ण ने किया। इसका मूल कारण था कि जब गुरु और शिष्य दोनों विराजमान होते हैं और शिष्य को अज्ञान छा जाता है, तो गुरु कहता है हे शिष्य! तुझे अज्ञानता छा गई है, तू अपने को मेरे में दृष्टिपात कर, इस संसार को मेरे में दृष्टिपात कर, तेरा अज्ञान समाप्त हो जाएगा क्योंकि ब्रह्माण्ड और पिण्ड की कल्पना से जब ब्रह्माण्ड को पिण्ड में दृष्टिपात करता है, तो उसकी निष्ठा हो जाती है, जब सर्वत्रता में दृष्टिपात करता है तो उसका अज्ञान समाप्त होता है। जैसे माता अपने पुत्र को जब लोरियां देती है तो माता उसे अपना हृदय स्वीकार करती है और उसे लौरियों का पान कराती है। पुत्र के मुखारविन्द में लोरियां देते हुए लज्ञा नहीं होती, शंका नहीं होती विडम्बना नहीं होती इसी प्रकार गुरु और शिष्य का संवाद भी इसी प्रकार है। (शब्द ध्वनि से) मेरे प्यारे वह गुरु अनवत् प्रव्हे अपनी निधि को, अपनी आभा को शिष्य को प्रकट करा रहा है। मेरे प्यारे! देखो, सर्वत्र उनका उपदेश अज्ञान को नष्ट करने के लिए दिया। विचार विनिमय क्या कि आज मानव को इसमें संकोच नही होना चाहिए, क्योंकि वह तो एक धारा है उस धारा को अपनाते हुए मानव के जीवन में एक महानता की प्रतीति होने लगती है, उस महानता की प्रतीति में मानो एक साधक एक साध्य है दोनो का विचार विनिमय प्रारम्भ रहता है उन्ही विचारों को मेरे प्यारे देखो, एक सूत्र में

पिरोया जाता है और वह सूत्र क्या वह चेतना है और उस चेतना रुपी सूत्र में बेटा! यह ब्राह्मण्ड पिरोया हुआ है। मानो यह जगत पिरोया हुआ है, तो हमे उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हमे इस संसार सागर से पार होना चाहिए, मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हे यह निर्णय देते हुए कहा था मानव जब साधक बनता है साधना में परिणित होता है योगाभ्यास करता है प्राणायाम करता है मन और प्राण को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता है बेटा! वही साधना है जैसे मेरे प्यारे! आज मन और प्राण को एक सूत्र में लाने का प्रयास करो अपने आहार और व्यवहार को पवित्र बनाना है मेरे प्यारे! मैं आधुनिक काल को तो नही जानता परन्तु पुरातन काल में मुझे बहुत साधना कराने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है मैं यह गौरव से कहा करता हूं यह हमारा अनुभव है क्या साधना का सम्बन्ध जीवन का सम्बन्ध मेरे प्यारे! अन्न से रहता है और अन्न का सम्बन्ध मन से रहता है और मन का सम्बन्ध इन्द्रियों से रहता है और इन्द्रियों का सम्बन्ध जगत से रहता है और मेरे प्यारे! यह जो जगत है इसी में रजोगुण, तमोगुण भ्रमण करता रहता है रजोगुण, तमोगुण मुनिवरों! देखो, प्रकृति से आता है इन्द्रियों पर आता है इन्द्रियों से मन पर आता है क्योंकि मन का जब आहार अशुद्ध हो जाता है तो इन्द्रियों का व्यवहार अशुद्ध हो जाता है और इन्द्रियों का जब व्यवहार अशुद्ध हो जाता है मेरे प्यारे! देखो, उसके पश्चात यह जो बाह्य जगत में वातावरण में जो रजोगुण, तमोगुण छाया हुआ है वह उसको लिपट जाता है वह उसको मानो स्पर्श करता हुआ मानव उसमें रमण करता है मेरे प्यारे! विचार आता रहता है बहुत पुरातन काल में यह कहा था महानन्द जी ने मुझे प्रगट कराते हुए कहा आधुनिक काल का मानव यह स्वीकार करने जा रहा है कि आहार भी मेरा अशुद्ध रहे और साधना भी मेरी पवित्र बन जाए मुझे मोक्ष भी प्राप्त हो जाए तो बेटा! यह कदापि नही होगा यह न कदापि हुआ है मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे कई काल में प्रगट कराया आधुनिक काल का प्राणी देखो, मानव के मानव मानव का भक्षण करता चला जा रहा है मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पुत्र को यह निर्णय कराया हे पुत्र! यह संसार मानो यदि मानव मानव का भक्षण कर जाता है मानो प्राणी को आहार

कर जाता है मानो बेटा! बहुत पुरातन काल में मैंने तुम्हे यह निर्णय दिया कि जो मानव किसी को जीवन नही दे सकता वह किसी के जीवन को हनन भी नही कर सकता परन्तु वह किसी के जीवन को हनन करता है रसना के आनन्द में आ करके तो जानो कि वह संसार में अपनी मानवीय आभा का ह्रास करता चला जा रहा है मानवीय जीवन की आभा नष्ट होती चली जा रही है मैं आज महानन्द जी के शब्दों पर टिप्पणीयां नही करना चाहता हूं विचार तो मानो देखो कृत रहता है आज इन विचारों में न जाते हुए विचार विनिमय केवल क्या कि आज हम अपने मानवीय जीवन को विचित्र बनाते हुए हम साधना में परिणित होते चले जाएं हम नाना प्रकार के मुनिवरों! देखो, पाश्चांगों को दृष्टिपान करते रहें, उनको अपना आहार बनाएं। साधना में जाएं तो काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इन पर संयम करना होगा यदि इन पर संयम नही होगा तो मेरे प्यारे साधना भी मेरे प्यारे न होने के तुल्य बन जाती है यह आज का विचार मेरे प्यारे! आज समाप्त होने जा रहा है आज के इन विचार विनिमय करने का हमारा अभिप्रायः क्या है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, परमात्मा के आंगन में रमण करते हुए, हम साधना में परिणित होते हुए इस सागर से पार हो जाएं बेटा! यह जो मान और अपमान वाला जगत है तरंगे ओत प्रोत हो रही हैं मेरे प्यारे! देखो, इसमें मन बुद्धि भ्रमित हो जाते हैं इससे हम दूरी चले जाएं यह है बेटा! आज का वाक् आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपने मानवीय जीवन को ऊर्ध्वा उड़ान पर ले जाएं हमारी साधना की उड़ान बहुत विचित्र है बेटा! आज का विचार यह आर्ष उड़ान है यह वैसी उड़ान नही है मानो साधारणतव उड़ान नही है यह आर्ष उड़ान है जो ऋषि मुनियों का मनतव्य है तपे हुए प्राणियों का मन्तव्य है यह उन ऋषियों का मन्तव्य है बेटा! जिन्होंने वाणी को सत्य उच्चारण करने में बेटा! पच्चासी वर्ष लगा दिए मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जो वाणी का अभ्यास कर रहे थे एक भी वाक् मिथ्या उच्चारण न हो एक भी वाक् मानो हृदय से उद्गारक प्रीत न हो तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव पच्चासी वर्षों तक मुनिवरों! देखो, सदैव सत्य उच्चारण किया देखो, मन से भी कर्म से भी मुनिवरों! देखो कोई भी वाक् मिथ्या उच्चारण नही

किया मेरे प्यारे! उनकी वाणी में अमोघपन आ जाता है वाणी में अमोघपन आता हुआ मेरे प्यारे! मन, वचन, कर्म उसके साथ रहता है इसीलिए मानव के भविष्य को भी वह योगी जान लेता है आज मैं बेटा! इस सम्बन्ध में यह बहुत गम्भीर विषय हैं मैं अब इन गम्भीर विषयों में जाना नही चाहता हूं वेदों के मन्त्र इस प्रकार के हैं जो इन गम्भीर विषयों का विशलेषण करते हैं परन्तु आज मैं बेटा! वो विशलेषणों में विशेषकर जाना नही चाहता हूं ये तो भयंकर वन है बेटा! मैं इन विचारों के वन में आयु के वन में चला जाऊं तो बेटा समय की आवश्यकता है आज का विचार विनिमय क्या कि ये आज हम परमात्मा की आराधना करते हुए देवत्व को प्राप्त करते हुए इस सागर से पार हो जाएं यह है बेटा! आज का वाक् अब समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रगट करुंगा। आज का वेदों का पाठ होगा आज का यह विचार अब समाप्त होने जा रहा है मुनिवरों देखो अब वेद का पाठन पाठन। ओ३म् ब्रह्म भू देवं भगाः मां ऋषि गायन्त्वा रेवं भगाः। ओ३म् मधु प्राची गतं... शेष वेदमन्त्र अनुपलब्ध। दिनांक 17 05 1975. सेठ रामप्रकाश जी अमृतसर।

१२ 19 08 1975 पुष्प 25 आयुर्वेद

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से हो उस मनोहर देव की महिमा का गुण गान गाया जाता है। जिस देव की करुणामयी, आनन्दमयी जो प्रतिमा है, वह मानव को परम्परा, से ही मानवता का विचार अथवा चिन्तन करने के लिए प्रेरित करती रहती है। आज हम उस प्रेरणा को अपने में धारण करने वाले बने। क्योंकि वह प्रेरणा मेरे उस प्यारे प्रभु की है जिस देव ने हमारे इस मानव शरीर का निर्माण किया अथवा इस ब्रह्माण्ड का निर्माण किया।

वह जो निर्माणवेत्ता प्रभु है आज हम उसकी प्रेरणा को स्वीकार करें। उसकी प्रेरणा आन्तरिक हृदय में ही प्रायः उत्पन्न हुआ करती है। क्योंकि मानव अपने शुभ और अशुभ कर्मों के विषय में स्वयं अपने अन्तःकरण में विचार विनिमय करने लगता है। उसको कोई उच्चारण नहीं करता। परन्तु वह स्वयं ही अपने ऊपर चिन्तन करना जब प्रारम्भ कर देता है तो उसे स्वयं यह प्रतीत होने लगता है कि मेरे जीवन में नाना त्रुटियां हुई। नाना विडम्बनाएं जीवन में होती रहीं। परन्तु यह सब मानव के अन्तःकरण में एक मानवीय प्रेरणा जो उस मेरे प्यारे! प्रभु की है। आज हम उस प्रेरणा के उपासक बनें। परन्तु प्रेरणा को हम जब स्वीकार करने लगते हैं तो हमारा अन्तरात्मा पवित्र हो जाता है। हम संसार के नाना प्रकार का जो वैभव है अथवा नाना प्रकार की जो हम अपने नेत्रों से, हृदय से संसार की कुटिलता को दृष्टिपात करते हैं वह कुटिलता अन्तरात्मा में

नहीं रहती। वे समाप्त हो जाती है। क्योंकि जहाँप्रभु की प्रेरणा के अनुकूल अपने जीवन को मानव अपने में धारणा करने के लिए तत्पर हो जाता है तो उसकी मानवता वास्तव में पवित्र बन जाती है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम आपसे उस मार्ग के लिए परम्परा से ही याचना करते आए हैं उस प्यारे प्रभु से, हे प्रभु! तेरा दिया हुआ जो यह मानवीय शरीर है, तेरी प्रेरणा से प्रेरित होकर के जो क्रीड़ा कर रहा है। हे प्रभु! हम आपको और अपने को दोनों का समन्वय करना चाहते हैं। संसार में योगी क्या करता है? योगी यही यही करता है कि वह अपने हृदय और परमात्मा के हृदय का दोनों का मिलान करने लगता है। परन्तु जहाँ दोनों के हृदय का समन्वय हुआ, मुनिवरों! उस सम्य देखो, मध्य में जो अन्तर्द्वन्द्व है वह नहीं रहता। इस ब्रह्माण्ड की प्रतिभा, लोक लोकान्तरों की प्रतिभा उसके समक्ष आने लगती है। क्योंकि प्रकृतिवाद उसके नीचे दब जाता है। प्रकृति के ऊपर उसका अधिपथ्य हो जाता है।

तो मानव के शरीर में चित्त नाम का जो स्थान है वह इस चित्त नाम के स्थान में प्रकृति की सूक्ष्म धाराएँ हैं अथवा उसका सूक्ष्म मण्डल है। मुनिवरों! उससे जब आत्मा का मिलान आत्मा का सन्निधान चित्त के द्वारा होता है तो चित्त अपने स्वभाव में गति करने लगता है। जिस प्रकार परमात्मा के सन्निधान मात्र से ही सृष्टि कर्म में गति प्रारम्भ हो जाती है। पञ्च महाभूतों के परमाणुओं में गति प्रारम्भ हो जाती है। स्वयं अपनी अपनी परिधि में प्रत्येक परमाणु रमण करने लगता है। मुनिवरों! देखो, वही परमाणु इस संसार की रचना करता है। आज जो रचना हमें दृष्टिपात आ रही है, वह रचना सूर्य के रूप में हो, मंगल के रूप में हो, चन्द्रमा के रूपों में हो, ध्रुव बृहस्पति और शनि के रूपों में हो, बुद्ध और शुक्र के रूपों में हो चाहे वह नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों के रूपों में क्यों न हो सप्त ऋषि मण्डल में ही क्यों न हो। परन्तु वह सर्वत्र रचना केवल प्रभु केऔर प्रकृति के चित्त का सन्निधान मात्र की एक सुन्दर रचना दृष्टिपात आती है। जिस प्रकार मानव के शरीर में चित्त के ही गतिमान होने पर संसार और नाना प्रकार का एक सुन्दर कुटुम्ब बन जाता है। प्रवृत्तियों का वृक्ष बन जाता है। उन प्रवृत्तियों के बीच बन जाने के

पश्चात् मानवता की एक मानो सुन्दर रचना होने लगनी है। उस रचना का जो भान है उसकी जो प्रतिभा है, वह एक मानवता में ही नहीं, वह यौगिकता में परणित होने लगती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम यह उच्चारण करने के लिए तत्पर हैं कि यह जो भी कुछ रचना है अथवा जो मानसिक रूपों में है अथवा वह ब्रह्माण्ड और लोक लोकान्तरों के रूपों में है वह सर्वत्र रचना केवल प्रभु की चेतना और प्रकृति के चित्त के ही सन्निधान मात्र से, संसार विभाजित होता दृष्टिपात हो रहा है।
मुनिवरों! देखो, आज उन वाक्यों पर हम जाना चाहते हैं जिन वाक्यों के ऊपर हमारे आदि ऋषियों ने बहुत टिप्पणियां की हैं, अनुसन्धान किए हैं! आज हम भी उन वाक्यों पर प्रायः टिप्पणियां करते रहते है। अनुसन्धान भी करते रहते हैं। क्योंकि मानव का तो जन्म सिद्ध अधिकार है कि वह अनुसन्धान की वेदी पर विराजमान है, प्रत्येक वस्तु का अनुसन्धान करता रहता है। प्रायः उसमें जिस प्रकार की बुद्धि होती है, उसी प्रकार का उसका अनुभव होता है। परन्तु चित्त में जैसा संस्कार होता है, चित्त में जैसे अंकुर होते हैं उसके अनुकूल ही इस बाह्य जगत में भी प्रायः अनुसन्धान करने लगता है। यह तो मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। चाहे वह मानव इस पृथ्वी मण्डल पर विचरण करने वाला हो अथवा वह मंगल में हो, शनि में हो, चन्द्र में, सप्तऋषि मण्डल में हो, रोहिणी नक्षत्र में क्यों न हो, पुण्य में क्यों न हो। मुनिवरों! देखो, ज्येष्ठा आदि नक्षत्रों में ही क्यों न हो। परन्तु अनुसन्धान करना उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। क्योंकि प्रकृति में यह स्वभाव है।
ब्रह्मरन्ध्र में जो सूक्ष्मवाहक नाड़ियां हैं उन सूक्ष्म वाहक नाड़ियों का सम्बन्ध प्रायः सूक्ष्म वायु की धाराओं से होता है। सूक्ष्म अग्नि की धाराओं से होता है। सूक्ष्म पृथ्वी की धाराओं से होता है, सूक्ष्म जल की धाराओं से होता है तो उनका सम्बन्ध लोक लोकान्तरों से भी होता है। वे जो धाराएँ हैं वे केवल कुछ संक्षिप्त (सूक्ष्म) रूपों से हैं। जब मानव अनुसन्धान करने लगता है तो वही नाड़ी ऊर्ध्व रूप धारण करके मानव के मस्तिष्क में उसी प्रकार का चमत्कार, उसी प्रकार की चेतना जागरूक कर देती हैः जैसा हमने बहुत पूर्व काल में कहा, यदि मानव के इस चित्र मण्डल में यदि चन्द्रमा को कोई स्मृति

नहीं होगी। चन्द्रमा में जाने वाली वाहक नाड़ी नहीं होगी। तो चन्द्रमा की हम जानकारी नहीं कर सकते। हम उसका विभाजन कर ही नहीं सकते। क्योंकि विभाजन जितना भी होता है वह मन और प्राण की दोनों की सहकारिता से ही प्रायः प्राप्त होता रहता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना नहीं करेंगे।

वैदिक साहित्य विज्ञान के लिए घोषणा करता रहता है और यह उच्चारण करता है कि आओ, विज्ञान की वेदी पर मानव को आना चाहिए। वैज्ञानिक बनो। परन्तु जैसे कल इससे पूर्व शब्दों में मेरे वत्स महानन्द जी ने यह कहा कि संसार में विज्ञान का सदुपयोग होना चाहिए। हम परम्परा से ही इस वाक्य को स्वीकार करते चले आए हैं। आज हमें वास्तव में विज्ञान के ऊपर अनुसन्धान करना चाहिए। चन्द्रमा में मानव की गति हो, सूर्य मन्डल में हो, ध्रुव मण्डल में जाने वाले यान होने चाहिएँ। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से ही प्रायः वैज्ञानिक वेत्ताओं ने नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में जाने की गतियां की हैं। क्योंकि मैंने बहुत पूमर्व काल में भी कहा है। कई बार पूर्व समयों में उच्चारण किया है जैसा मुझे मेरे प्यारे! महानन्द जी ने यह प्रकट कराया कि आज का विज्ञान चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है। चन्द्रमा में शयन कर रहा है। हमने बहुत पूर्व काल में इनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि द्वापर के काल में भी और उनके पुत्र घटोत्कच के बहुत से यान ऐसे हैं जिन यानों को आज का वैज्ञानिक जब चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में जाने का प्रयास करेगा तो वह यान आज भी इन्हें प्रायः प्राप्त हो सकते हैं। इन्हें प्राप्त होंगे। क्योंकि जितना विज्ञान पुरातन काल में था। वह विज्ञान मुझे प्रायः स्मरण भी आता रहा है उस विज्ञान की तुलना हम किसी काल से नहीं किया करते। क्योंकि अपने समय का विज्ञान, अपने समय की ऊर्ध्व गति को प्रायः प्राप्त होता रहा है। मुनिवरों! हमारे यहाँ वैज्ञानिक का यह कथन है।

हमारे यहाँ महर्षि भारद्वाज और भी आदि ऋषियों का यह कथन है कि एक यन्त्र का जब हम निर्माण करते हैं उस यन्त्र में वायु की तरंगें और अग्नि की धाराओं का दोनों का मिश्रण करते हुए जल की उसमें पुट लगाते हुए एक ऐसे हम परमाणुवाद को एकत्रित करते हैं उस परमाणु को एकत्रित करके यदि हम एक सूक्ष्म से पात्र में एक

यान में स्थिर कर देते हैं और वह यान हमें चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में अथवा सूर्य मण्डल की परिक्रमा करने के लिए तत्पर हो जाता है। इस प्रकार का हम परमाणु एकत्रित करके उसे यान में जब स्थित करते हैं तो उस यान की एक एक क्या कई लाख वर्षों की अवस्था का उसमें परमाणु भर देते हैं और वह सूर्य की परिक्रमा करता रहता है। चन्द्रमा की परिक्रमा भी करता है परन्तु जो वैज्ञानिक केवल दो वर्ष, चार वर्ष पञ्चम, दशम् वर्ष का परमाणु यन्त्र में परणित कर सकता है वह वैज्ञानिक अनुसन्धान करे तो मुनिवरों! वह सहस्त्रों और लाखों पर भी जाने को तत्पर हो जाता है। मुनिवरों! आज हम इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना नहीं करेंगे। क्योंकि केवल उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि आज हम उस विज्ञान में जाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं जो सूर्य मण्डलों को परिक्रमा करता रहता है।

कल मेरे प्यारे! महानन्द जी ने यह कहा कि आज का वैज्ञानिक जो लोक लोकान्तरों का वैज्ञानिक है वह क्योंकि जैसा पृथ्वी मण्डल पर वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रहा है, विचार कर रहा है। इसी प्रकार का मंगल का वैज्ञानिक भी विचार कर रहा है। इसी प्रकार सूर्य मण्डल का वैज्ञानिक भी विचार विनिमय कर रहा है। और भी नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों का वैज्ञानिक विचार विनिमय कर रहा है। परन्तु हमारा वैदिक साहित्य तो पुरातन काल में ही यह उच्चारण कर रहा है क्योंकि वैदिकता क्या है? आज प्रत्येक मानव को यह विचार आता रहता है कि वैदिकता है क्या? वैदिकता वही है जो लोक लोकान्तरों के विज्ञान में परमात्मा की जो सम्पन्न विद्या है। आज जितना भी मानव अनुसन्धान कर सकता है जो वैदिक साहित्य में प्रायः जिसका विश्लेषण प्राप्त होता हो। उसकी विचारधारा उसमें धर्म की प्रतिभा ओत प्रोत होती है उसी का नाम मुनिवरों! वैदिकता कहा जाता है। वैदिकता का अभिप्राय यह कि आज जो भी हमारा जीवन है अथवा कर्मकाण्ड है वह वेद के आधार पर सुन्दर होना चाहिए, पवित्र होना चाहिए, शान्त होना चाहिए, क्रियात्मक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए क्योंकि उस कर्मकाण्ड में उस क्रिया में विज्ञान निहित है।

विज्ञान किसी एक की सम्पदा नहीं है। विज्ञान कोई रूढ़ि है। विज्ञान तो एक सामान्य

विचार है, एक मस्तिष्क का विचार है उसको लाने के लिए सदैव मानव को प्रयास करना चाहिए। प्रायः जैसा मेरे प्यारे! ने इससे पूर्व शब्दों में उच्चारण किया कि वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रहे हैं कि जहाँ चन्द्रमा का क्या मंगल इत्यादि, सूर्य और बृहस्पति और भी नाना मण्डलों की जहाँ परिधियों का मानो प्रतिक्रियाएं एक सामान्यता में परिणत हो जाती है। वहाँ एक स्थली बनाने का विचार रहता है। उस विचार में मानव प्रायः अनुसन्धान करता हो रहता है। क्योंकि नाना प्रकार की स्थली बन तो पाती नहीं। विचार प्रायः करते रहते हैं क्योंकि विचार करना तो मानव का स्वभाव बना रहता है। जहाँ एक दूसरे मण्डल को आकर्षण शक्ति है। एक स्थान ऐसा है वायु मण्डल में जिसको हम सौर मण्डल कहा करते हैं। एक स्थल ऐसा है जहाँ तीन सौर मण्डलों की परिधि उनकी सीमा प्रायः प्राप्त होती हैं। वहाँ कोई भी वस्तु यदि निर्धारित की जाए तो वह स्थिर हो जाती है। क्योंकि उसमें एक दूसरे में आकर्षण शक्ति है।

हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में गर्न्धव लोकों का प्रायः वर्णन आता रहता है। क्योंकि गन्धर्व लोक उन्हें कहा जाता है जहाँ एक दूसरे की आकर्षण शक्ति एक दूसरे से सुगठित रहती है अतः वह मिलन नहीं हो पाता। कैसा सुन्दर प्रभु का विज्ञान है? उस प्रभु का कितना ऊँचा धर्म है! क्या वायु मण्डल में भ्रमण कर रहे हैं परन्तु देखो, एक दूसरा मण्डल एक दूसरे से मिलान नहीं कर पाता। कैसी विचित्रता है प्रभु की? परन्तु जब प्रलय काल में ये लोक लोकान्तर एक पिण्डकार के रूप में परिणत हो जाते हैं और वह पिण्डाकार महतत्व में परिणत हुए यह प्रकृति, आत्मा और परमात्मा तीनों भिन्न भिन्न हो जाते हैं। ऐसा प्रायः उन विचारों में अधिक टिप्पणियां अधिक विचार देना नहीं चाहते हैं।

विचार देने का हमारा अभिप्राय यह कि विज्ञान के युग में विज्ञान की प्रतिभा प्रायः हमारे मस्तिष्कों में चली आई है। महर्षि भारद्वाज मुनि ने और भी नाना वैज्ञानिकों जैसे दालभ्य और प्रवाहण का वर्णन आता है जैसे सोम मुनि ऋषि का वर्णन आता है, परन्तु उन ऋषियों के वर्णन में केवल यही आता है कि उन्होंने ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ी। हमारे यहाँ विष्णु राष्ट्र का प्रायः वर्णन आता रहता है। विष्णु कहते ही उसे हैं जिस राजा के

राष्ट्र में विज्ञान पराकाष्ठा पर हो। जहाँ वैज्ञानिक पुरुष हों। वैज्ञानिक पुरुष अनुसन्धान करने वाले हों। मुनिवरों! देखो, गरुड़ इत्यादि का प्रायः वर्णन वैज्ञानिकों का आता रहता है। क्योंकि गरुड़ नाम का कोई पक्षी तो प्रायः होता है। परन्तु गरुड़ यहाँ वैदिक परम्परा में मन को कहा जाता है। गरुड़ अनुसन्धान और वैज्ञानिकों को कहा जाता है। जो विष्णु उस विज्ञान पर विराजमान हो करके जो लोक लोकान्तरों की उड़ाने उड़ने वाले हों। क्योंकि हमारे यहाँ वैदिक ऋषियों ने कहा है यज्ञमान के लिए ब्राह्मण घोषणा करता है। यह कहता है यज्ञमान यज वेदी पर विराजमान हो करके तेरी गति पृथ्वी मण्डल से और मण्डल मण्डल से हो करके बृहस्पति लोकों तक होनी चाहिए, सूर्य मण्डल तक होनी चाहिए। ऐसा हमारे यहाँ प्रायः वैदिक साहित्य में प्राप्त होता रहता है। आओ मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम तुम्हें उस वेदी पर ले जाना चाहते हैं जिस वेदी पर प्रायः वैज्ञानिकों का समूह विराजमान होता रहता है। वैज्ञानिकों की चर्चाएँ होती रहती हैं।

मुझे स्मरण है कि एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने एक यान का निर्माण किया। उस यान को स्वांकेति चक्राण यन्त्र कहा जाता था। वह मंगल की परिक्रमा करता रहता था और मंगल की परिक्रमा के लिए महर्षि भारद्वाज ने राजा रावण के विधाता कुम्भकरण ने तथा नाना वैज्ञानिकों ने उसमें ऐसे परमाणुओं को एकत्रित किया जो परमाणु वायु की धाराओं में स्मरण करते रहते हैं। अन्तरिक्ष की धाराओं में रमण करते रहते हैं। अन्तरिक्ष की धाराओं में रमण करते रहते हैं मानो जो विद्युत के रूपों में प्रकाशित होते रहते हैं। उन परमाणुओं को एकत्रित करने के लिए जब उन्ळोंने एक यान बनाया यान बना करके ऋषि ने ऐसा कहा है कि यह जो यान है, इसकी जो आयु है हमने 10, 000 वर्षों की आयु का यह यान वायु मण्डल में त्याग दिया है। तो ऐसा मुझे प्रायः प्राप्त होता रहा है कि महर्षि भारद्वाज मुनि ने ऐसे यानों को वायु मण्डल में, प्रसारित कर दिया था जो लगभग मंगल के आँगन में मंगल की परिक्रमा करता रहा जैसे आस्वाति मण्डल है वह मंगल के पूर्व ऊर्ध्व के भागों में स्मरण करता है परन्तु उसकी भी परिक्रमा उसने प्रारम्भ की। एक यान दो मण्डलों की परिक्रमा करने वाला हो बेटा! ऐसा यान महर्षि भारद्वाज ने इतनी आयु का वायु मण्डल में प्रसारित कर

दिया था। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने आज के वैज्ञानिक अथवा आज के लोक लोकान्तरों की विवेचना की, यह कोई आश्चर्य नहीं है।

परम्परा से ही हमारे यहाँ विज्ञान प्रायः हमारा जन्म सिद्ध अधिकार रहा है। क्योंकि यहाँ प्रायः उसमें अनुसन्धान करते चले आए हैं। ऋषि कहते ही उसको है जो अनुसन्धान करने वाले हों। जो इस प्रकृति के परमाणुओं पर अहः अपना अनुसन्धान, अपना अधिपथ्य करने वाले हों। उसे ही मुनिवरों! ऋषि कहा जाता है, तपस्वी कहा जाता है। आओ मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम ये टिप्पणियां करना चाहते हैं। जैसे इन्होंने चित्रावलियों का वर्णन किया। परन्तु पुरातन काल में भी चित्रावलियों का प्रायः वर्णन आता रहा है। महाभारत के काल में मुनिवरों! भगवान कृष्ण महाराजा धृतराष्ट्र के जब द्वार पर पहुंचे तो उन्होंने कहा महाराज! कुछ चाहते हो? उन्होंने कहा हे कृष्ण! मैं कुछ और नहीं चाहता हूँ। परन्तु मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि एक ऐसा यन्त्र चाहता हूँ कि जिससे महाभारत काल का महाभारत के संग्राम को मैं स्वयं दृष्टिपात कर सकूँ। उन्होंने कहा कि आप तो प्रज्ञा चक्षु हैं। उन्होंने कहा मेरे महामन्त्री जी संजय हैं यह मुझे पकट कराते रहें, ऐसा मैं चाहता हूँ। इस चित्रावली का बेटा! उन्होंने दिग्दर्शन कराया। वह चित्रावली दी और चित्रावली के द्वारा कुरुक्षेत्र में जो प्रायः संग्राम होता रहता था उसका चित्रण प्रायः आता रहता था और संजय उनसे दृष्टिपात किया हुआ अपनी वाणी से उच्चारण करता रहता था। इसी प्रकार भगवान राम इत्यादियों के कालों में भी और उससे पुरातन काल में भी उसके मध्य के काल में भी ऐसा प्रायः चलता रहा है।

क्योंकि देखो, यह अनुसन्धान तो मानव के लिए सहज है और मानव इस पर प्रायः अनुसन्धान करता आया है परम्परा से ही क्योंकि वैदिक जो साहित्य है यह परम्परा से है और वैदिक साहित्य में क्योंकि रूढ़ि नहीं है। जहाँ रूढ़ि नहीं होती वहाँ सामान्य धर्म, सामान्य विज्ञान देखो, व्यापक विद्या तथा व्यापक ही धर्म होता है। इसीलिए हमारे यहाँ वेद की प्रशंसा ऋषि मुनियों ने, महान तपस्वियों ने की है। क्यों की है? उसमें से ऐसी वस्तुओं को अपने में निर्धारित किया है जिस पर वह बेटा! और भी जितना अनुसन्धान करें उतना ही उनका मस्तिष्क विकसित होता चला जाता है। प्रकाशमान होता चला

जाता है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! कल मेरे प्यारे! महानन्द जी ने आधुनिक काल के वैज्ञानिकों के सम्बन्ध में प्रायः चर्चा प्रकट की कि आज का वैज्ञानिक यह उच्चारण कर रहा है कि सूर्य मण्डल में गदेले आ गए हैं। सूर्य मण्डल में इस प्रकार की कृति अवस्था आ गई है। परन्तु आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यह तो परम्परा से ही प्रायः ऐसा होता रहा है। जिस लोक का वैज्ञानिक जितना भी अन्वेषण करता है। जितना भी वह परीक्षण करता है उतना ही वहाँ का विज्ञान विकसित होता रहता है। रहा यह कि हमारे यहाँ जैसे सूर्य की रश्मियां आती हैं उन रश्मियों का जो प्रभाव है वह पृथ्वी मण्डल पर कैसा आता है? और लोकों पर कैसा आता है? परन्तु जब वैज्ञानिकों के परीक्षण से गदेले आ गए हैं उसमें प्रतिक्रिया अशुद्ध आ गई है। तो उसका मानवता में अस्वति वैज्ञानिक धाराओं में ऐसी कोई विशेषता वाला उनका प्रभाव अशुद्ध नहीं होता। यहाँ तक प्रायः नहीं आता। क्योंकि वहाँ का जो मानव समाज है, वहाँ का जो राष्ट्र है उस पर किसी प्रकार का प्रभाव हो सकता है। क्योंकि वहजो किरणें हैं, रश्मियां हैं, वे अग्नि के द्वारा प्रचंड करती हुई आती हैं। वायु की धाराओं में रमण करती हुई अग्नि की रश्मियां सूर्य को प्रकाशित करती रहती हैं। सूर्य मण्डल को प्रकाशित करती रहती हैं। उसमें अग्नि की प्रधानता होने के नाते होता है। परन्तु कुछ ऐसे लोक हैं जिनमें वायु और जल दोनों की प्रधानता होती है। वहाँ उन किरणों का दूषित पन का संदेह रहता है। परन्तु जहाँ पार्थिव तत्त्व होता है, उन लोकों में उसका कोई विशेष प्रभाव कदापि नहीं हुआ करता।

एक समय यह आदि ऋषियों ने जैसा महाभारत के काल में महर्षि व्यास मुनि महाराज, भास्करचार्य, स्वाति ऋषि ये तीनों विराजमान थे। उस काल में भी प्रायः ऐसी छाया उनके मस्तिष्कों में आई। उनकी जो विज्ञानशाला थी, उस विज्ञानशाला में इस प्रकार के अनेक विज्ञान सम्बन्धी परीक्षण होते थे। जैसे मुनिवरों! देखो, मानव का मस्तिष्क है, मानव के मस्तिष्क में जो ब्रह्मरन्ध्र है ब्रह्मरन्ध्र में जिस प्रकार की प्रकृति होती है उसी प्रकार का ब्रह्मरन्ध्र में एक यन्त्र होता है जिसको हमारे यहाँ स्वाधिष्ठान यन्त्र कहा जाता

है अथवा उसको चक्र भी कहते हैं। यौगिकता में उसको चक्र भी कहते हैं। जितना भी योगी सूक्ष्म होता है, अनुसन्धान वेत्ता होता है उतना ही ब्रह्मरन्ध्र में इडा, पिंगला, सुषुम्ना ये तीन नाड़ियां हैं इनमें से 72 72 प्रकार की धाराओं का जन्म होता रहता है और 72वीं धारा जो होती है उसमें से 99 99 प्रकार की धाराओं का जन्म होता है। उन धाराओं का सम्बन्ध उस सर्व प्रकृति से होता है। परन्तु वह जो प्रकृति है उस प्रकृति का जैसा भी वातावरण होता है जैसी भी प्रकृति की गति होती है उसी प्रकार की छाया उस योगी के मस्तिष्क में प्रायः आ जाती है। इसी प्रकार भौतिक विज्ञानवेत्ता उसी के आधारित होते हुए एक यन्त्र बनाते हैं।

वह यन्त्र वायु की तरंगों का यन्त्र होता है। वायु और अग्नि की तरंगों का मिश्रण करते हैं मानो जैसे एक भाग तो वायु के परमाणुओं का हो और उसका दो गुणा भाग अग्नि के परमाणुओं का हो और उससे 100 गुणा भाग अस्वति अग्नि अहो वरदेय अकृतम् ब्रह्मे आपोरसि मानो आपो की धाराओं का होता है और जब तीनों की पुट लगा करती है तो कुछ सूक्ष्म सा इस पृथ्वी का भी मिश्रण होता है। तो ऐसे इन परमाणुओं के समूह से जब यान बनता है तो प्रकृति में जैसी गति होती है क्योंकि वह यान इतना ऊर्ध्व गति वाला बनता है कि वह लगभग सूर्य मण्डल का जो सौर मण्डल है उस सौर मण्डल की जितनी गति होती है उस सौर मण्डल की गति की छाया उस यन्त्र में आ जाती है। वह जो छाया है, उसी छाया के आधारित हो जाते हैं। उसकी छाया से वह जान लेते हैं कि चन्द्रमा में क्या हो रहा है? मंगल में क्या हो रहा है स्वाति नक्षत्र में क्या हो रहा है? और बृहस्पति और शुक्र इत्यादि मण्डलों में क्या हो रहा है। इसी प्रकार वह सूर्य मण्डल तक की आभा को जानने के लिए तत्पर हो जाते हैं। और उन आभाओं के द्वारा ही उनका विज्ञान विकसित होता रहता है। उस विज्ञान के आधार पर ही मानव प्रायः अनुसन्धान करता रहता है।

बहुत सा विज्ञान इस प्रकार का है कि तीन सौर मण्डलों की छाया उसमें आती रहती है। जैसे हमने बहुत पूर्व काल में कहा था कि हमारे यहाँ इडा, पिंगला, सुषुम्ना तीन प्रकार की नाड़ियां हैं और उन नाड़ियों में 200 200 तरंगें तरंगित होती रहती हैं।

क्योंकि वे धाराएं, वे तरंगें उस इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाम की नाड़ियों के द्वारा आती रहती हैं। और वे जो तरंगें हैं और उनसे मिलान करती हुई योगी को सर्व ब्रह्माण्ड उसके लोक लोकान्तरों की प्रतीत होने लगती है। उसका भान उसके समीप आने लगता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम इसके ऊपर विचार करने वाले बनें। क्योंकि हमारे यहाँ प्रायः देखो, यह जो विज्ञान है यह एक ऐसा ऋषियों के मस्तिष्क में रहा है, प्रायः वैज्ञानिक इसका अनुसन्धान करते आए हैं। आज कोई नवीन वाक्य नहीं है। जैसा मेरे प्यारे! महानन्द जी ने प्रकट कराया।

परन्तु एक समय महर्षि दालभ्य जी के काल में इससे भी पुरातन एक काल था जो महर्षि शाण्डिल्य मुनि का काल था और महात्मा अष्टावक्र का काल था। वायु मुनि महाराज का काल था। आज से करोड़ों वर्षों पूर्व का काल था। साहित्य यह कह रहा है कि उनके काल में वे बड़े महान वैज्ञानिक थे। जहाँ वे योगी थे वहाँ वे वैज्ञानिक भी थे। प्रकृति को अच्छी प्रकार जानते थे। एक समय बृहस्पति मण्डल के प्राणियों ने कुछ काल में अपने मण्डल पर परीक्षण किया। वह जो परीक्षण था वह इस प्रकार का था कि बृहस्पति में ऐसे गदेले अन्धड़ तथा ध्विंस आ गए कि उसकी जो छाया थी वह सूर्य मण्डल पर पड़ी। परन्तु सूर्य मण्डल की जो आभा थी वह दूषित हो गई। ऐसा ऋषियों ने प्रकट किया है, उनके साहित्य में ऐसा प्राप्त होता रहा है। कि दूषित हो जाने से सूर्य मण्डल का जो प्राणी था वह एक चौथाई रह गया, तीन विभाग उसका समाप्त हो गया। इस प्रकार की छाया उस काल में प्रायः आई। उसकी छाया शनि मण्डल में आई तो शनि मण्डल का प्राणी भी इतना समाप्त हो गया। परन्तु उसकी छाया जब बुद्ध पर आई, बुद्ध से पृथ्वी पर त्रिकोण हो करके जब उसकी रश्मियां आईं तो पृथ्वी मण्डल का प्राणी भी मृत होने लगा।

उन्होंने बेटा! इसका प्रयास किया कि इस दूषित वायु मण्डल को किस प्रकार हम शोधन कर सकते हैं। हमारे ऋषि मुनि पुरातन काल में उसका शोधन जानते थे और वह शोधन प्रायः और भी लोक लोकान्तरों में है। हमारे पृथ्वी मण्डल पर भी ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में रहा है। उन्होंने गो घृत के द्वारा याग किया और याग करने के

पश्चात् उन्होंने वृष्टि याग किया और परमाणु याग करने के पश्चात् उसी प्रकार के मन्त्र जो ऋग्वेद में प्रायः प्राप्त होते रहते हैं। उनमन्त्रों का ही पठन पाठन करने से ही वह दूषित वातावरण समाप्त हो गया। इसी प्रकार आज लोक लोकान्तरों में भी याग की प्रथा मानो जाती है। परन्तु आज हम उन लोक लोकान्तरों की यात्रा में अधिक जाना नहीं चाहते हैं। उनका विश्लेषण करना हमारा कर्तव्य नहीं है। हम तो केवल कुछ ज्ञान और विज्ञान की चर्चाएं प्रकट करने के लिए चले आते हैं। केवल परिचय देना ही हमारा कर्त्तव्य होता है।

आओ मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम क्या उच्चारण कर रहे थे? महानन्द जी के उन शब्दों पर टिप्पणियां कर रहे थे, जो उन्होंने कल के वाक्यों में प्रकट की। परन्तु जहाँ आयुर्वेद का प्रश्न है क्योंकि आयुर्वेद प्रायः ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में आता रहा है। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने यह प्रकट कराया कि आधुनिक काल का जो आयुर्वेद का पंडित है, आयुर्वेदिक वैज्ञानिक हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर मानव की नस नाड़ियों का परिवर्तन कर देते हैं ऐसा जो विज्ञान है उसको आज का संसार यह स्वीकार करता है आज का आयुर्वेद का पंडित यह उच्चारण कर रहा है कि यह तो हमने ही जाना है परन्तु यह अभिमान नहीं होना चाहिए। मुझे परम्परा की वह वार्त्ता स्मरण आती रहती है, हमारे यहाँ महर्षि नरकृति महाराज को जब महर्षि सोमकेतु, भुञ्जु, त्राति ऋषियों ने उनके मस्तिष्क पर अश्व का मस्तिष्क स्थिर कर दिया था और उन्होंने उनके मस्तिष्कों को औषधियों में नियुक्त कर दिया था। इसी प्रकार महात्मा दधीचि के मस्तिष्क को हमारे यहाँ अश्विनी कुमारों ने जो महात्मा भुंजु के पुत्र कहलाए जाते थे। अश्विनी कुमारों ने दोनों ने आयुर्वेद को प्राप्त किया। आयुर्वेद के पश्चात् ब्रह्मं विद्या को पान किया। उन्होंने उनके मस्तिष्क को 6 6 महा तक औषधियों में नियुक्त किया। ऋषि कहते हैं कि हृदय की गति की 6 6 माह तक हम प्रायः औषधियों में नियुक्त करके 6 माह के पश्चात् हम उस शरीर में प्रायः गति प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार का विज्ञान हमारे यहाँ परम्परा में रहा है।

ऐसे ऐसे वैद्य राज हुए, जो मार्ग में औषधियों थीं, उनको स्वप्न में प्रकट करती थीं, कि

मैं इस रोग को दूरी कर सकती हूँ। ऐसी ऐसी औषधियां प्रायः उनके यहाँ प्राप्त होती रहती थीं। अब प्रश्न यह होता है कि स्वप्न में औषधियां कैसे उच्चारण कर सकती है? क्योंकि जो मानव इसके ऊपर अनुसन्धान करता है क्योंकि औषधियां उसके समीप आने लगती हैं और औषधियां उसके मुखारबिन्द से ही उसको रोग का विधान तथा अच्छी प्रकार उनको प्रतिक्रिया में लाने का प्रयास करता रहा है। तो मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है कि आयुर्वेद भी मानव के द्वारा अवश्य होना चाहिए।

मैं तो यह कहा करता हूँ कि माताओं के द्वारा आयुर्वेद होना चाहिए। जितनी माताएं आयुर्वेद को जानने वाली बनेगी उतना ही यह समाज ऊँचा बनेगा। उतना ही विचार ऊँचा होगा। क्योंकि आयुर्वेद में भक्ष्य अभक्ष्य का प्रायः वर्णन है। माता को कैसा आहार किस किस माह में करना चाहिए। किस किस माह में पिता को कैसा आहार करना चाहिए, कैसा विचार बनाना चाहिए। यह सब आयुर्वेद में प्रायः प्राप्त होता है। नाना प्रकार की औषधियों का पान करने से ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व और ध्रुव (अचल अखण्ड) होती रहती है। कुछ औषधियां इस प्रकार की होती हैं जो ब्रह्मचर्य की गति को ऊर्ध्व बनाती हैं। कुछ इस प्रकार की औषधियां होती हैं जो मुनिवरों! ब्रह्मचर्य की गति को ध्रुव (अखण्ड) बनाती हैं। तो इस प्रकार की औषधियां प्रायः पृथ्वी पर प्राप्त होती रहती हैं। आयुर्वेद के आचार्यों ने बहुत कुछ अनुसन्धान किया है। क्योंकि हमारे यहाँ नाना प्रकार की औषधियों के लेपन मात्र से ही मानव का शरीर दूरी होने पर भी (टूटने पर भी) स्थिर हो जाता था ऐसा विज्ञान परम्परा से प्रायः आयुर्वेदाचार्यों के मस्तिष्कों में रहा है। परन्तु आज मैं नहीं उच्चारण कर सकता। महानन्द जी के उन शब्दों की प्रतिभा हमारे समक्ष आती रहती है। मैंने नाना प्रकार के और भी विचारों का पान कराया। परन्तु जब ऋषिजन अपने शिष्य को ऊँचा बनाते थे तो मुनिवरों! वह ऐसी औषधियों का आसन बना देते थे, पृथ्वी की विद्युत उस औषधि में परणित होती थी। ब्रह्मचारी जिससे यौगिक अभ्यास में अधिक परणित हो जाता था। ऐसा प्रायः मुझे अभ्यास कराने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। एक समय जब हमें अपने पूज्यपाद गुरु देव के द्वारा आसन पर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने एक आसन दिया और यह

कहा, हे वत्स इस आसन को लो। इस आसन पर विराजमान हो करके योगाभ्यास करो। इस आसन का यह महत्व होता था कि प्रकृति की जो धाराएं पृथ्वी में रमण करती रहती थीं, विद्युत जिसमें अधिक होती थी, जिसको हमारे यहाँ हुण कृति कहते हैं एक योग में मूल कृति आसन होता है, उसमें विद्युत का प्रभाव अधिक होता है। योग की गति जितनी विद्युत को ग्रहण करने वाली आकर्षण शक्ति करने वाला आसन होगा उतना ही मस्तिष्क में योग की कान्ति उत्पन्न होती चली जाएगी। परन्तु सूक्ष्म सा यौगिकरण करने से मानव योग के अभ्यास में पारायण हो जाता था। ऐसी औषधियां आयुर्वेद में प्रायः प्राप्त होती रहती हैं। आज हम उस आयुर्वेद में भी जाना नहीं चाहते हैं।

आज हमें आयुर्वेद का अध्ययन करना चाहिए। प्रत्येक माता को करना चाहिए माता अपने गर्भ स्थल में ऐसी औषधियों का पान करती हुई मुनिवरों! पृथ्वी पर बालक के आने के पश्चात् वह सूक्ष्म सा अध्ययन करने मात्र से उनका संस्कार उदबुद्ध हो जाने से वह आयुर्वेद का महा पंडित बन जाताहै। अश्विनी कुमारों में क्या महत्व था मानो उनकी माता ने जब प्रायः अनुसन्धान किया, माता ने अपने गर्भ स्थल में पूर्णिमा के दिवस जब जब भी पूर्णिमा आती उसी दिवस वह चन्द्रमा की आभा में रमण करती रहती। चन्द्रमा की तपस्या करती रहती थी। चन्द्रमा की जो आभा थी, चन्द्रमा की जो कान्ति थी वह मुनिवरों! देखो, अपने उदर पर अपने मुखरविन्द से प्रत्येक इन्द्रियों के द्वारा उनका अप्रेत होता रहता था। मुनिवरों! देखो, शैलखण्डा, मामकेतु, स्वाति, फूली अनेक इस प्रकार की औषधियां हैं जिनका आसन बनाकर के माता चन्द्र पूर्णिमा के दिवस उस आसन पर विराजमान हो करके आयुर्वेद का अध्ययन किया करती थी। आयुर्वेद का अध्ययन करने मात्र से बेटा! अश्विनी कुमारों का जन्म हुआ। एक ही साथ माता के गर्भ से दोनों पुत्रों! का जन्म हुआ था। वह महात्मा भुंजु के पुत्र थे। जब दोनों का जन्म हुआ। तो उन्ल्होंने महर्षि श्वेतकेतु के महापोत्र थे जिनको कृति कहते थे। वे आयुर्वेद के महापंडित थे। जब उनके द्वारा वह अध्ययन करने के लिए पहुंचे तो उनका आयुर्वेद का मस्तिष्क बना हुआ था अतः आयुर्वेद का सूक्ष्म सा अध्ययन करने मात्र से वे आयुर्वेद

के महा पंडित बन गए। परिणाम क्या कि माता के ऊपर बालक का बहुत दायित्व होता है क्योंकि उसकी आभाएं सदैव उसमें रमण करती रहती हैं।

आओ मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम अधिक चर्चा नहीं प्रकट करने आए हैं। विचार यह देने आए हैं कि आज आयुर्वेद के भी महापंडित होने चाहिएं। नाना प्रकार के विज्ञान में जाने से पूर्व वैज्ञानिक माता जैसा पुत्र को बनाना चाहती है उसी प्रकार का अध्ययन, उसी प्रकार का उसका आहार और व्यवहार होना चाहिए। परन्तु माता के गर्भ स्थल में हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने यह कहा है कि जो माता अपने गर्भ स्थल में अपना विचार परणित कर देती है, वे उनको विद्यालयों में प्राप्त नहीं होते गुरुओं के चरणों में प्राप्त नहीं होते। वह माता के ही गर्भ स्थल में प्राप्त हो जाते हैं। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना नहीं करने जा रहा हूँ।

विचार यह दे रहा था कि आज हम विज्ञान के युग में जाना चाहते हैं विज्ञान की उन आभाओं को जानना चाहते हैं मानव वैज्ञानिक बनता है। वह आयुर्वेद है जिससे मानव वैज्ञानिक बनता है उस आयुर्वेद को अपनाना चाहिए उसके पश्चात्अग्नि की धाराएँ हैं और जल की धाराएँ हैं। पृथ्वी की तरंगें हैं वायु की और अन्तरिक्ष की धाराएं हैं। उन परमाणुओं पर प्रायः वैदिक अध्ययन से अनुसन्धान होना चाहिए जिस अनुसन्धान के द्वारा अपने पन में अपने राष्ट्र और समाज को उस विज्ञान के युग में ले जाएं। उस विज्ञान की धाराओं को रमण कराने वाले बनें जिससे संसार में अज्ञानता कदापि न भासने लगे।

समाज उस काल में अज्ञानी बन जाता है, जिस काल में माता बुद्धिमती नहीं रहती। क्योंकि माताएं जब अपने कर्तव्य को त्याग देती हैं, तो मुनिवरों! उनके गर्भ से कर्त्तव्यहीन प्राणियों का जन्म हो जाता है। उससे संसार में शिक्षार्थी नहीं रहते। आचार्यों का अभाव हो जाता है। जब आचार्यों। का अभाव होता है, उस समय मुनिवरों! देखो, छात्रबल में अशुद्ध वाद हो करके रक्तभरी क्रान्ति आ जाती है। धर्म की परम्पराओं में सूक्ष्मता आ करके रूढ़ियां बन जाती हैं। और वे जो रूढ़ियां हैं वे धर्म और राष्ट्र को दोनों को विनाश के मार्ग पर ले जाती हैं और विज्ञान नहीं रह पाता। तो इसीलिए आज का वाक् में

यह उच्चारण कर रहा था कि आज हमारे द्वारा विज्ञान होना चाहिए। कल मुझे समय मिलेगा तो कल मैं अधिक गुरुओं, आचार्यों की चर्चाएं, गुरु शिष्यों की चर्चाएं प्रकट करूंगा। प्रथम काल वह काल था, उस काल में आज से लाखों वर्ष पूर्व आचार्य और गुरु का कैसा सम्बन्ध होता था? मैं उसके सम्बन्ध में किस किस प्रकार का पठन पाठन था, इस सम्बन्ध में कल अपना विचार प्रकट करेंगे। आज का वाक् अब समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम प्रभु की याचना करते हुए, प्रभु का गुणगान गाते हुए अपने देव की महिमा का गुणगान गाते हुए और प्रभु को अपने को समर्पित करते हुए, आन्तरिक प्रेरणा को ऊँचा बनाते हुए बेटा! इस संसार सागर से पार हों और वैज्ञानिक ज्ञान और धर्म में हमारी वृद्धि हो। यह आज का वाक् अब समाप्त।

१३ 02 03 1976 पुष्प 27 साधना कैसे

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा इस महान प्रकृति के एक एक कण कण में व्याप्त है। प्रत्येक मानव उसकी व्यापकता को दृष्टिपात करना चाहता है।

संसार में प्रत्येक मानव की आकांक्षा बनी रहती है कि मैं संसार का वैज्ञानिक बनूं। द्वितीय मानव यह चाहता है, कि जितना भी आध्यात्मिक वाद है और उस आध्यात्मिक वाद में भी जो महानत्ता है, वह मेरे द्वार पर होनी चाहिए। प्रत्येक मानव की यह आकांक्षा रहती है, परन्तु जब हम यह विचारने लगते हैं तो एक एक वेदमन्त्र को विचारने लगते हैं तो प्रत्येक वेदमन्त्र में उस ममतामयी महामना देव की आभा हमें दृष्टिपात आने लगती है। अथवा उसका विज्ञान हमारे समीप आने लगता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था, कि यह जो परमात्मा का

जगत है, इस परमात्मा के जगत में बेटा! एक एक कण में परमात्मा की सर्वत्र सृष्टि का चित्रण हो रहा है। जब हम यह विचारते हैं कि प्रत्येक अणु मात्र में, परमाणु मात्र में मुनिवरों! देखो, मानव के जीवन की निधि इसमें विराजमान रहती है। इसी प्रकार एक एक अणु में सर्वत्र ब्रह्माण्ड की आभा दृष्टिपात आने लगती है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा कि यह संसार अनुपम है। इसमें प्रत्येक मानव योगी बनने के लिए आया है, इस संसार में प्रत्येक मानव वैज्ञानिक बनने के लिए आया है। इस संसार में प्रत्येक मानव पितर याग करने के लिए आया है, मेरे प्यारे! देव याग करने के लिए आया है। तो प्रत्येक कार्य मानव के यागमय होना चाहिए।

बेटा! मैंने बहुत पुरातन काल में वेद के सम्बन्ध में नाना प्रकार की चर्चाएँ की। परन्तु मेरे प्यारे! महानन्द जी सदैव मुझे प्रेरणा देते रहते हैं और इनकी प्रेरणा का जो स्रोत्र है वह मानो यौगिक और गम्भीरता में परणित रहता है। हमने बहुत पुरातन काल में, एक एक वेदमन्त्र की आभा में अथवा उसके गर्भ में जब यह दृष्टिपात करने लगे कि एक एक वेदमन्त्र में परमात्मा की आभा निहित है। अथवा परमपिता परमात्मा का विज्ञान एक महान है। मुनिवरों! देखो, प्रत्येक मानव उसको क्रिया में लाना चाहता है। मुनिवरों! देखो, क्रिया में कैसे आता है? मैंने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय दिया था क्या जब तक मानव का मनस्तत्व ऊँचा नहीं होता, प्राणत्व का मिलान नहीं होता। मन ऊर्ध्वा में नहीं जाता, स्वच्छ नहीं बनता मुनिवरों! देखो, यह प्राण के समीप कैसे पहुंचेगा? और जब मन पवित्र नहीं होता तो बेटा! यह योग के क्षेत्र में नहीं जा सकता। विद्या का अध्ययन करना तो बहुत ही सहज कहलाया गया है। हमें नाना प्रकार के अक्षरों का ज्ञान, वास्तव में हमारा जीवन अक्षरों का बोधी बन जाता है, अक्षरों का ज्ञान हमारे समीप आ जाता है। उन अक्षरों को जब हम बेटा! गम्भीरता में ले जाते हैं तो मेघावी बन जाता है। जब वह मेघावी बन जाता है और उसको और भी उसको हम शोधन करते हैं। तो मुनिवरों! देखो, वह वैज्ञानिकता में रमण करने लगता है। मेरे प्यारे! जब हम उसको और गम्भीरता से क्रिया में लाना चाहते हैं तो मेधा को ऋतम्भरा में चले जाते हैं। जब ऋतम्भरा को जब मुनिवरों! देखो, ऊँचा बनाना चाहते हैं, तो वही ऋतम्भरा

मानव के जीवन का स्वच्छ प्रकाश मानव के समीप आने लगता है। वह जो स्वच्छ प्रकाश है वह जो महान प्रकाश है उसको जान करके मानव प्रकाशित होता है। प्रकाश में रमण करने लगता है। वही प्रकाश मेरे प्यारे! मानव के जीवन को ऊँचा और ऊर्ध्वा गति में ले जाता है।

आओ मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में वर्णन करते हुए कहा था कि एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आसन पर विराजमान था। परन्तु गुरुदेव एक समय महर्षि भृगु आश्रम में विराजमान थे। महर्षि भृगु आश्रम में बेटा! वह वहाँ साम गान गा रहे थे। परन्तु वह तन्मय हो करके साम गान गाते थे। निष्पन्न हो करके जब साम गान गाते थे तो मुनिवरों! मृगराज, सिंह राज उनके उन शब्दों को ध्वनि को श्रवण करते थे। तो बेटा! यह क्या है मानव में ऐसी कौन सी सत्ता है कौन सी ऐसी महान सत्ता है जिसको मुनिवरों! देखो, जो मानव का भक्षण कर जाए। वे भी अहिंसा परमो धर्म को धारण करने वाले हैं। वह कौन सी सत्ता है तो मैं अपने प्यारे महानन्द जी के उस अमूल्य विषय पर आना चाहता हूँ। क्योंकि इनके कुछ विचार हैं, इनके उन वाक्यों पर टिप्पणियाँ करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, टिप्पणी करने का हमें मानो कोई अधिकार तो रह नहीं गया है। परन्तु कोई बात नहीं। क्योंकि उस क्षेत्र में न जाना है, न प्रतिभा है, परन्तु उस क्षेत्र के सम्बन्ध में जब क्रियात्मक कर्म किए तब वह काल भव्य था। महान काल था मेरे प्यारे! देखो, जब महर्षि भृगु जी के आसन को दृष्टिपात करते थे, महर्षि भृगु मुनि महाराज जब साम गान गा रहे थे, वह जब प्रभु का गान गा रहे थे, ऋत और साम दोनों के मिलान से ही साम गान होता है। जब वह गान गाते थे तो मृगराज, सिंह राज उनके चरणों में ओत प्रोत होते थे। तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे वह काल स्मरण है, जब हम उनसे प्रश्न किया करते थे मानो उनके समीप विराजमान हो करके नाना प्रकार की वार्त्ताए उन वार्त्ताओं को ले करके चरणों में विराजमान हो करके देखो, बेटा! नाना प्रकार की वार्त्ताएं बेटा! मैंने बहुत पुरातन काल में महर्षि भृगु जी ने यह निर्णय दिया कि हे ऋषियो! आज तुम यह जानना चाहते हो कि हिंसक प्राणी तुम्हारे चरणों को छूता है। मानो यह तुम्हारे चरणों को छूता है हमने कई काल में यह

कहा कि हाँ प्रभु! इसको जानना चाहते हैं तो महर्षि भृगु मुनि ने यह अपना मन्तव्य दिया निर्णय दिया कि मानव की वाणी में इतनी अमोघता होनी चाहिए मानव की जो वाणी का क्षेत्र है यह अग्नि का स्वरूप कहलाया गया है। वाणी के ही स्वरूप में तीन प्रकार की अग्नियाँ हैं। मानो इसके आँगन में रहती हैं। परन्तु वह बाह्य जगत से बेटा! ओझल होती हैं। वह कौन सी अग्नि है। जो मानव के शब्द का विदीर्ण कर देती है, मानव की तरंगों को विदीर्ण कर देती है। मेरे प्यारे! वह अपने आनन्द में विराजमान हो करके मनस्तत्व में चिन्तन कर रहा है। मनस्तव में मुनिवरों! देखो, वह चिन्तन करता हुआ अभ्यस्त हो रहा है। और वह अभ्यस्त होता हुआ मेरे प्यारे! वह संसार को दृष्टिपात कर रहा है। वे जो चित्त में संस्कार हैं मानो वे बाह्य और आन्तरिक जगत दोनों का चित्रण करना प्रारम्भ कर देता है।

तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि कहता है, वेद का आचार्य कहता है कि मानव! तू अग्नि को जानने का प्रयास कर। जो अग्नि मानो देखो, अग्नि तेरे शरीर में विराजमान है। जिसको इन्द्रा गृत आलोकतः नाम की अग्नि कहा जाता है, जो इन्द्र को प्रकाशित करती है। इन्द्र नाम सूर्य को माना है, इन्द्र को जो प्रकाशित करने वाली अग्नि है, वह तीन प्रकार की धाराओं में रमण करने वाली अग्नि है। तीन प्रकार की अग्नि की धाराएं है एक अग्नि लोक में आती है, एक अग्नि मुनिवरों! देखो, आभाओं में द्यौ में रमण करने वाली है, वही मुनिवरों! देखो, सूर्य की जो अभ्यस्त किरणें हैं जो सूर्य लोक को तपा रही है, वही अग्नि की विचित्र धारा बेटा! देखो, सूर्य के आँगन में विराजमान हो करके किरणों को नाना प्रकार का रूपान्तर देता चला जा रहा है और उसी रूपान्तर को नाना प्रकार की किरणें ले करके इस संसार का जन जीवन बन रही हैं। कोई मानो जीवन का विनाश कर रही है। कोई मानव के जीवन को उद्बुद्ध बना रही हैं। नाना प्रकार की बेटा! अग्नियों की आभा आने के पश्चात् वह नाना स्वरूपों को धारण करने लगती है। परन्तु मैंने बहुत पुरातन काल में मैने तुम्हें निर्णय करते हुए कहा जैसे वैज्ञानिक द्यौ के गर्भ से नाना प्रकार के कणों को एकत्रित करके विद्युत का निर्माण करता है। विद्युत का निर्माण करने लगता है इसी प्रकार आध्यात्मिकवेत्ता जो पुरुष होते हैं, परमात्मा का जो

चिन्तन करने वाले जो पुरुष होते हैं उन चिन्तन करने वाले पुरुषों में मेरे प्यारे! यह जो मन की तरंगें होती हैं जो नाना रूपों में बिखरी हुई होती हैं, मानो देखो, कुछ श्रोत्रों के द्वारा, कुछ चक्षु के द्वारा, कुछ घ्राण के द्वारा, त्वचा के द्वारा नाना रूपों में यह नाना प्रकार की बिखरी कान्ति है। मानो देखो, इसको जो योगी अपने मनस्तत्व को ऊँचा बनाता हुआ, मानो तपस्या करता हुआ मानो मन की जो शक्ति है। वह जो नाना रूपों में बिखरी रहती है, उस बिखरी हुई अमूल्य शक्ति को अपने में एकत्रित करता है। जब वह अपने में एकत्रित करना प्रारम्भ करता है। एकत्रित करने लगता है तो मुनिवरों! देखो, वह योगी अपने प्राण को, मन को प्राण रूपी सूत्र में उसको जकड़ देता है अथवा उसमें समावेश करा देता है। जब वह प्राण के क्षेत्र में चला जाता है और प्राण और मन दोनों एक क्षेत्र में आ जाते हैं, उनका एक गृह हो जाता है। एक गृह हो जाने के पश्चात मेरे प्यारे! मानो यह प्राण ही इस संसार में ओत प्रोत हो रहा है। मुनिवरों! देखो, मनस्तव जब प्राण के साथ में एकोकीरण हो जाता है एकोकीकरण हो जाने के पश्चात मेरे प्यारे! वह मनस्तव प्रव्हे तो इतनी शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि संसार की अनेकता को एकता में दृष्टिपात करके एक सूत्र में पिरोने वाले जगत को अपने में दृष्टिपात करने लगता है।

मेरे प्यारे! देखो, मैं इस वाक् को देने नहीं आया हूँ विचार विनिमय यह कि मेरे प्यारे! महानन्द जी नाना प्रेरणाओं के साथ इनके हृदय की यह आकांक्षा है इनके हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है, कि हम अपने से दूसरे मन के अन्दर हम कैसे प्रभावित कर सकते हैं? कैसे मन को अपने में धारण कर सकते हैं? यह मानो देखो, इसका मैंने कई काल में तुम्हें समावेश किया और यह कहा है कि जब तक मानव का मनस्तत्व ऊँचा नहीं होता और वह ऊँचा होता है अन्न की तरंगों से। अन्न भी ऊँचा हो परन्तु अन्न कैसा हो? बेटा! ऋषि मुनियों ने इन वाक्यों का अनुसरण करते हुए मुझे वह काल स्मरण आने लगता है पुत्रों! जब हम पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते और परन्तु देखो, जब गुरुदेव साधना कराते थे। साधना का सम्बन्ध बेटा! क्रियाओं से होता है। साधना का सम्बन्ध अभ्यास से होता है अभ्यास करता है मानव साधना का सम्बन्ध

मेरे प्यारे! देखो, दो वस्तुओं को एक सूत्र में लाने का नाम साधना कहलाती है बेटा! द्वितीय स्वरूप वह हमारे यहाँ साध्यानी कहलाता है। मेरे प्यारे! जब वे दोनों एक सूत्र में परिवर्तित हो जाते हैं। तो वह एक सूत्र बन करके बेटा! प्राणतव बन करके आगे वेद का ऋषि तो यहाँ तक कहता है कि यह प्राण और मन ये दो ही क्रिया ऐसी हैं जो संसार को, ब्रह्मारण्ड को गति दे रही हैं। ब्रह्मारण्ड को एक महान सत्ता प्रदान हो रही है। उसी सत्ता से मेरे प्यारे! यह ब्रह्मारण्ड गतिशील हो रहा है। तो मेरे प्यारे! इसी प्रकार आज कोई भी योगाभ्यास में रमण करना चाहता है, साधना के क्षेत्र में जाना चाहता है। तो वह साधना क्या है? मानो देखो, वह जो साधना है मैंनें बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था क्या जब मन और प्राण दोनों एक सूत्र में हो करके बेटा! इनके ऊपर ज्ञान स्वरूप आत्मा विराजमान हो करके, योग के उस क्षेत्र में रमण करती है। तो वह उस क्षेत्र में रमण करने लगती है तो मेरे प्यारे! देखो, मस्तिष्क की जो नाना आकृतियाँ हैं, मस्तिष्क में जो नाना प्रकार की कृतिकाएं जिनको मैंने कई काल में निर्णय देते हुए तुमसे कहा, उन कृतिकाओं में मानो गति प्रारम्भ हो जाती है और वह जो गति प्रारम्भ हो जाती है। उस गति के आ जाने पर मेरे प्यारे! देखो, मानव का जो मस्तिष्क है और मस्तिष्क के ऊपरले भाग में लघु मस्तिष्क कहलाया गया है और लघु मस्तिष्क के ऊर्ध्वा भाग में मेघावी मस्तिष्क कहलाता है और मेघावी मस्तिष्क के आँगन में मुनिवरों! देखो, ब्रह्मरन्ध्र का आभोर अस्तु क्षेत्र कहलाया गया है। जिसको हमारे यौगिक आचार्यों ने बेटा! ब्रह्मरन्ध्र भी माना है। परन्तु जब उस ब्रह्मरन्ध्र में जब गति प्रारम्भ होने लगती है। तो मुनिवरों! देखो, यह जो सर्वत्र ब्रह्मारण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है, इस ब्रह्मारण्ड में नाना लोक लोकान्तर हैं, नाना आकाश गंगाएं हैं, उन आकाश गंगाओं के क्षेत्र में रमण करता हुआ, आकाश गंगा के उस मानवीय अव्यहृत गतियों में रमण करने वाला मानव के उस लघु मस्तिष्क में नाना आकाश गंगाएं दृष्टिपात होने लगती हैं।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि जो मानव यह चाहता है, जिन वैज्ञानिकों ने बेटा! देखो, नाना आकाश गंगाएं दृष्टिपात कीं और एक आकाश

गंगा में मानो देखो, अरबों खरबों सूर्य एक ही आकाश गंगा में गणित किए मुनिवरों! देखो, वह योगी आगे जाता है उसकी गणना भी नहीं की जा सकती। अब वह योगी यह चाहता है कि जैसे वैज्ञानिक, नाना प्रकार के यन्त्रों से, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपनी विज्ञानशाला में विराजमान हो करके अपनी पत्नी को और ब्रह्मचारियों को प्रमाण दे रहे हैं कि यह यन्त्र है, इस यन्त्र में यह दृष्टिपात करो यह आकाश गंगा है और इस आकाश गंगा में नाना सूर्य हैं, नाना चन्द्रमा है आगे चल करके मानो देखो, जिनकी गणना नहीं हो सकती। परन्तु योगी भी यह चाहता है कि मैं जो लघु मस्तिष्क में दृष्टिपात कर रहा हूँ वह मैं अपने शिष्य को देना चाहता हूँ। मानो शिष्य को उस यन्त्र को देना चाहता है जिस यन्त्र को मैंने योगाभ्यास के द्वारा जाना है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञानवेत्ता यन्त्र का निर्माण करता है। परमाणुओं को एकत्रित करके, अग्नि की उसमें पुट दे देता है, वायु की पुट दे देता है, जल की पुट दे देता है और वह एक ऐसा यन्त्र बन जाता है कि जिस लोक में जिस प्रकार का तत्त्व प्रधान है उसी प्रकार के तत्त्व उस यन्त्र में दृष्टिपात आने लगते हैं। इसी प्रकार योगी यह चाहता है कि मैं भी अपने मानो देखो, ब्रह्मरन्ध्र को जान करके दूसरे के मन में प्रवेश करना चाहता हूँ। मैं दूसरे के लघु मस्तिष्क में मानो देखो, यह चित्र देना चाहता हूँ। अब यह चित्र कैसे आएंगे? उनकी यह आकांक्षा बनी रहती है।

परन्तु देखो, मैंने बहुत पुरातन काल में बेटा! योगियों की चर्चाएँ कीं। परन्तु योगी में यह सामर्थ्य हो जाता है कि वह चित्र देना प्रारम्भ कर देता है। और वह चित्र उसके मस्तिष्क में वृष्टकेतुओं में आभायित करने लगता है। मुझे ऐसा स्मरण आता रहता है। वह कैसे स्मरण है मानो जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा विराजमान रहता थे तो पूज्यपाद गुरुदेव यह प्रत्यक्ष कराते थे। (पुस्तक से) कि यह आकाश गंगा है इसे तुम अपने लघु मस्तिष्क में ही दृष्टिपात करो। इस पृथ्वी के गर्भ में कौन कौन सा खण्ड है। एक समय वेद के ऋषि सनत कुमार महर्षि नारद मुनि से यह उच्चारण कर रहे थे जो वैज्ञानिकों को वस्तु प्राप्त नहीं होती है वह योगियों को प्राप्त हो जाती है। पृथ्वी वसुन्धरा के गर्भ में मानव जब चला जाता है और योगाभ्यास में अग्नि में तत्त्वों को

अपने मस्तिष्क में मिलान करने लगता है। यह जो पृथ्वी है, इसमें जो नाना प्रकार की धारा है, जल जो नाना स्वरूपों को धारण कर रहा है, अग्नि नाना स्वरूपों को धारण करके जल तत्त्वों को तपा रही है। इसी प्रकार योगी भी उस आभा को मैं अपने शिष्य को अर्पित करना चाहता है। हे मेरे भोले मानव! मैंने बहुत पुरातन काल में इसका अभ्यास भी किया है। अभ्यस्त हो करके मुझे को इसका निर्णय देने का बारम्बार सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। अपना जो अनुभव है, उसे मानव को देने में किसी प्रकार की लज्जा नहीं होती। मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था (शब्द ध्वनि से) कि जब मानव यौगिक क्षेत्र में परणित होता है, यौगिक विज्ञान में जाता है, आध्यात्मिक क्षेत्र में रमण करता है। तो मेरे प्यारे! देखो, उसको सबसे प्रथम मन को ऊँचा बनाना है। मन की जो उड़ान है वह बहुत ऊँची उड़ान है। मन को ऊँचा बनाना हमारा कर्त्तव्य है। मन को कैसे ऊँचा बनाएं? मन उस काल में ऊँचा बनता है जब उसके अनुकूल अन्न ऊँचा हो। क्योंकि अन्न की जो धाराएं हैं, मन की जो तरंगें हैं उनका सम्बन्ध ही अन्न से माना गया है। इसीलिए अन्न में पवित्रता होनी चाहिए। अन्न में महानत्ता होनी चाहिए।

अब अन्न कैसा हो? जितनी भी वस्तु है जितना भी यह पदार्थवाद है, जितनी भी यह जड़ जगत है, आध्यात्मवादी औषधि का प्रयोग करते हुए, उसका मिलान करते हुए अनुसन्धान किया जाता है और अनुसन्धान करने के पश्चात् ही निर्णय होता है। उस मानव का जब निर्णय होना प्रारम्भ हो जाता है, मेरे प्यारे! उसकी जो आभा है वह मानव के समीप आनी प्रारम्भ हो जाती है। तो मेरे प्यारे! इसीलिए अन्न पवित्र होना चाहिए। अन्न से मन की तरंगों का जन्म होता है और जब यह ऊँचा तरंगित बन जाता है तो यही मन मेरे प्यारे! प्राणतव के क्षेत्र में चला जाता है, वह जो प्राणतव क्षेत्र है वही ऊर्ध्वा गति को ले जाने वाला है।

वेद का ऋषि तो प्राण के सम्बन्ध में यहाँ तक उड़ान उड़ गया कि परमात्मा की प्राणत्व में माना गया है। मेरे प्यारे! आचार्यों ने जब यह वाक् प्रगट किया तो मैं उच्चारण करता हुआ महर्षि भृगु जी के आसन पर जाना चाहता हूँ। महर्षि भृगु मुनि महाराज के आसन पर मुनिवरों! देखो, नाना मृगराज और सिंह राज खिलवाड़ करते रहते थे। आनन्द लेते

रहते थे। तपोगुणी विचार भी लेते रहते थे। आज मैं तुम्हें कौन से क्षेत्र की चर्चा प्रगट करने लगा? मैं उस अनुभव कि जब हम पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा विराजमान हो करके नाना अनुसन्धान किया करते थे, यौगिक क्षेत्र में जाने का प्रयास करते थे। मैं उस क्षेत्र में चला गया हूँ। आज मैं विशेष चर्चा प्रगट नहीं करूंगा। केवल इतना उच्चारण करने आया हूँ मुनिवरों! भृगु जी ने लगभग पचासी वर्ष तक तो उन्होंने वाणी पर तप किया और वाणी को तब तक नहीं त्यागा, जब तक वाणी का अग्नि स्वरूप न हो गया। वाणी का अग्नि स्वरूप कैसे बनेगा? सत् के उच्चारण करने से, सत्यवादी बनने से। उसमें भी कई प्रकार का सत् होता है। उस सतोगुणी में भी मानो देखो, वाणी जो वाणी जो सतोगुण है अग्नि से वाणी को कैसे तपाना है? मेरे प्यारे! बहुत सी वार्त्ता इस प्रकार की होती हैं जो सत्य हैं परन्तु सत्य के उच्चारण करने से कोई लाभ नहीं हैं। एक वह सत्य है जो सत है परन्तु उसमें कठोरता है जो योगाभ्यासी होते हैं वे कठोर सत को भी अपने में निगल जाते हैं। मेरे प्यारे! एक वह सत्य होता है जिसमें मधु है, आनन्द है, जिस सत्य के आधार पर इस ब्रह्माण्ड की क्रिया चल रही है, वह सत्य क्या है! वह सत्य महान चेतना है। जिससे मानव में एक महान चेतना प्राप्त होती है। वह जो यथार्थ सत्य है उसमें नम्रता है, उसमें आनन्द है, आनन्द का जो स्रोत है बेटा! वे परमपिता परमात्मा है। क्योंकि आनन्द की उत्पत्ति ही वहाँ से होती है। क्योंकि परमात्मा स्वयं आनन्द है, परमात्मा में विडम्बना नहीं होती और जब परमात्मा विडम्बित नहीं होता हैं तो वह सदैव एक रस रहने वाला एक आनन्द है। मुनिवरों! देखो, जब यह मानव जानने लगता है कि एक रस रहने वाला मानो चैतन्य स्वरूप है, मेरे पुत्रों! देखो, उसमें निष्ठा हो जाना मानव के लिए बहुत अनिवार्य है। जब यह निष्ठा हो जाती है कि मेरा जो इष्ट स्वरूप है वह आनन्द है, और आनन्द प्रभु में रहता है और प्रभु ही आनन्द स्वरूप माना गया है तो मेरे प्यारे! देखो, मानव के जीवन का उद्धार होना प्रारम्भ हो जाता है।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष प्रगट करने नहीं आया यह वाणी कैसे शोधन होगी? महात्मा भृगु ने कहा है कि मैंने नाना औषधियों का पान किया है। उन औषधियों

का पान करके मेरा जो हृदय है, मेरा जो मनस्तत्व है वह विचित्र और महान तरंगों वाला बन गया है। जब मन में तरंगें ऊँची हो गई, मन में निर्भयता आ गई, संकल्पवाद ऊँचा बन गया उसी काल में ऐसा कहा जाता है कि जब तक संकल्प मानव का ऊँचा बन गया चित्त में उनके संस्कारों का जन्म हो गया, ऊँची तरंगें आ गई है आहार से व्यवहार से और और मुनिवरों! देखो, मन जब पवित्र हो गया तो मन वाणी के द्वारा मुनिवरों! बाह्य जगत में जब उच्चारण करता है। तो अहिंसा परमोधर्म मानो देखो, हिंसक प्राणी भी अहिंसा परमो धर्म के अपने मनस्तत्व से घोषणा करते हैं। मेरे प्यारे! देखो, वह जो घोषणा है उस घोषणा को हमें अपने में धारण करना है। वह जो योगी घोषणा करता है वह जो माता अपने पुत्र को घोषणा करती है। मैंने नाना प्रकार की विद्याओं में जाना नहीं चाहता हूँ, आज मैं यौगिक विद्या के कुछ रूप उच्चारण करने आया हूँ। कुछ तरंगों को उच्चारण करने आया हूँ।

विचार विनिमय क्या मन और प्राण दोनों उस मानव शरीर में कार्य करते हैं। जब दोनों कार्य करते हैं। उन दोनों को अनेकता मे एकता के सूत्र में जो ला देता है, व्यापक ज्ञान है। मेरे प्यारे! बाह्य जगत आन्तरिक जगत में उस ज्ञान की तरंगें जो मानव धारण कर लेता है, मेरे प्यारे! यह मनस्तव में वह सत्ता व शक्ति हो जाती है वह अपनी मनोनीत क्या वह अपनी मनोनीत भावनाओं को दूसरे के मन में प्रवेश कर देता है। मानो वह योगी मुनिवरों! देखो, अपनी तरंगों को अपनी वाणी के तेज को मानव के हृदय को विदीर्ण कर देता है। तुम्हें यह प्रतीत होगा मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था महाभारत का काल मध्य था महाभारत के काल में मेरे प्यारे! देखो, अर्जुन को मोह हो गया संग्राम के मध्य में मानो दोनों सेनाएं विराजमान हैं एक स्थली में कौरव और पाण्डव पुत्र दोनों विराजमान हैं परन्तु देखो, वहाँ अर्जुन को मोह हो गया। और यह कहा कि यह तो सब मेरा सम्बन्धी परिवार है। तो मुनिवरों! देखो, उस समय भगवान कृष्ण ने मानो अपनी यौगिक सत्ता के द्वारा अपने मन को उसके अन्तःकरण में प्रवेश कर दिया। यह कहा कि यह जो मन का मोह हो गया है इस मन के मोह को शान्त कर मानो देखो, उन्होंने केवल ढ़ाई घड़ी के उपदेश में उसके हृदय को विदीर्ण करके

और उस स्थिति पर लाने का प्रयास किया कि यह तो तेरा कर्त्तव्यवाद है। परन्तु देखो, मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चाएं प्रगट करना नहीं चाहता हूँ। परन्तु इसका सम्बन्ध मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराया कि इसका सम्बन्ध देखो, आहार से कहलाया गया है, मन को पवित्र बनाने से है, जब आहार पवित्र हो जाता है आहार कैसा हो ऋषि मुनियों ने बेटा! तप किए हैं और देखो, जिस स्थली में तप किए हैं कौन से अन्नाद को पान करके तप किए हैं ऐसा मुझे स्मरण है बेटा! कि उन्होंने उस अन्न को एकत्रित करके मानो जिस अन्न पर किसी भी प्राणी का अधिकार नहीं होता। उस अन्न को वे एकत्रित करके मुनिवरों! देखो, योगाभ्यास में परणित हो करके साधना करते हैं। उस साधना में भी अभिमान नहीं होता, उस साधना में भी विडम्बना नहीं होती उस साधना में सतचित्त और आनन्द को लेकर के जो योगाभ्यास करने वाली प्राणी है, वह मन को एक दूसरे में प्रवेश कर देता है।

अब रहा यह कि कैसे प्रवेश किया जाए? यह तो बेटा! साधना का विषय है। जब यह साधना पूर्ण हो जाती है अन्न के द्वारा मन का शोधन कर दिया जाता है, सत् आनन्द से जब उसे निर्मल और पवित्र बना दिया जाता है उस काल में यह मन चित्त की तरंगों को लेकर के चलता है। जब चित्त की तरंगों को लेकर के चलता है तो मन चित्त की तरंगों को जानने लगता है। परन्तु देखो, यह विषय बहुत गम्भीर है। मैं इस विषय को बेटा! बहुत पुरातन काल में इस विषय को अनुभव करते थे। आज इतना समय आज्ञा नहीं देता है, आज मैं मानो देखो, यह तो अनुभव का जो विषय है वह केवल अनुभव का ही विषय रहता है। वह वाक्य उच्चारण करने का विषय नहीं होता। परन्तु मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय किया कि प्राण की सत् आभा को जानना मन को बेटा! देखो, मन को अपना तरकश बना लेता मुनिवरों! देखो, लक्ष्य पर जाने के लिए तत्पर होता है तो वह लक्ष्य में चला ही जाता है। मेरे प्यारे! तुम्हें प्रतीत है जिस समय महाभारत के काल में मुझे वह काल स्मरण है बेटा! जब महाराजा द्रोण ने यह कहा था कि हे अर्जुन! तुम्हें यह मानो वृक्ष दृष्टिपात आ रहा है? उन्होंने कहा कदापि नहीं भगवन! मैं दृष्टिपात आ रहा हूँ? उन्होंने कहा नहीं भगवन! और क्या

दृष्टिपात आ रहा है। मुझे मानो मछली का जो नेत्र है वह मुझे दृष्टिपात आ रहा है। जब मानव अपना एक लक्ष्य बना लेता है और लक्ष्य बना करके उसे वही दृष्टिपात आता है। जब मानो देखो, रजोगुण, तमोगुण को नहीं विचारोगे तो रजोगुण और तमोगुण में भी सत्यता को अपने में धारण कर लेता है। सत्यता को एकत्रित करता रहता है, तो परिणाम क्या होता है कि उसे सत्य ही सत्य दृष्टिपात आता है। उसे असत्य दृष्टिपात न आ करके मानो देखो, वह मन वह प्राण को ही संसार में ओत प्रोत दृष्टिपात करता है, वह मन को ही दृष्टिपात करता है। मानो वह ज्ञान और प्रकाश के क्षेत्र में जा करके उसे एक एक कण में मुनिवरों! एक एक कण कण में देखो, सृष्टि का चित्रण आने लगता है और जब वह एक एक कण कण में प्रभु की सृष्टि को दृष्टिपात करता रहता है। तो मुनिवरों! देखो, वह मानव कैसा भव्य बन जाता है। उस मानव के द्वारा जब साम गान गाता है, तो बेटा! मृगराज, सिंहराज आ करके अपनी हिंसा की प्रवृत्ति को त्याग करके वह भी अहिंसा परमो धर्मः में परणित हो जाता है।

अरे, वह जो वातावरण होता है वह योगी का वातावरण है जिस योगी के वातावरण को ले करके मानव अपने लक्ष्य की पूर्ति करता है। परिणाम आज मैं इस क्षेत्र में नहीं ले जाना चाहता हूँ जो क्षेत्र महान और गम्भीर कहलाता है। विचार विनिमय यह मुनिवरों! यह मानव की उड़ान है। हमारी भी परम्परागतों से उड़ान उड़ने का हमारा कर्त्तव्य है। हम भी ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ते रहे हैं। समय मिलता रहता है तो उच्चारण करते रहते हैं। वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः कि मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का नाम ही साधना कहलाती है और साधना में जो रूढ़ि बनती है, मानो उसमें जो चंचलता आती है उसमें जो अभिमान आता है, विडम्बना आती है वह अन्न के दोष से आती है। इसीलिए अन्न पवित्र होना चाहिए और जब अन्न का दोष आ जाता है तो मानो देखो, वह साधना में भी अश्लीलता आ जाती है। अभिमानता आ जाता है, कहीं निराशा आ जाती है कहीं मानव नीरस हो जाता है और अपने में यह स्वीकार करता है कि मैं क्या कर सकता हूँ संसार में। परन्तु देखो, जब मानव का अन्नाद पवित्र होगा मुझे स्मरण है बेटा! जब हम पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में जाते थे तो पूज्यपाद गुरुदेव

ने मेरे प्यारे! जब साधना के क्षेत्र में पहुंचे तो बारह वर्ष तक तो मुनिवरों! देखो, केवल पांच वृक्षों के पत्रों को ले करके मानो उनकी चमड़ी को ले करके उनके नाना प्रकार के फलों को ले करके उनके रस को पान कराया। अब वह बारह बारह वर्ष तक रसों का पान करते रहे, मेरे प्यारे! देखो, रसों से क्या हुआ उसमें विद्युत का ज्ञान हुआ, अग्नि का ज्ञान हुआ, मुनिवरों! देखो, वृक्षों की योनियों का ज्ञान हुआ क्या कितनी योनियाँ हैं और उनके क्या क्या गुण हैं। मुनिवरों! देखो, इस प्रकार से साधना जब ऋषि मुनि करते हैं तो बेटा! देखो, उस साधना से जैसे वैज्ञानिक अपनी परीक्षण शाला में, अपनी विज्ञानशाला में मुनिवरों! देखो, एक वैज्ञानिक अनुसन्धान करता रहता है, अणु परमाणु का वहाँ मिलान करना है। इस परमाणु को यहाँ लाना है जब मानो एक दूसरे परमाणु एक मिलान करता हुआ वर्षों व्यतीत हो जाते हैं। समय के समय व्यतीत हो जाते हैं मेरे प्यारे! जल के शोधन बनाने में, जल को ऊँचा बनाने में अग्नि को शोधन करने में, अग्नि में जल को तपाने में, अग्नि और जल के परमाणुओं की पुट जब दी जाती है वहाँ वायु के परमाणाओुं के मिश्रण किया जाता है, नाना प्रकार की वायु हैं। कौन सी वायु को लाना है यह सब मुनिवरों! देखो, विद्यालय में मानव को अभ्यास से मानव को प्राप्त होता है। इसी प्रकार के वैज्ञानिक मेधावी क्षेत्र में रमण करके वह नाना तरंगों को अपने में धारण करता हुआ, उन्हीं से मुनिवरों! नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करता है। इसी प्रकार मेरे प्यारे! देखो, योगी मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाता है, आत्मा को इसके ऊपर विश्राम करा लेता है तो योगी मुनिवरों! एकान्त विराजमान हो करके वह जो फलों का रस है मानो देखो, फल विराजमान हैं, मन को उसमें प्रवेश कर देता है और फल के रस से अपने मन की तृप्ति करके, बेटा! उसी से आहार ले करके योग में परिणित हो जाता है।

आज मैं बेटा! उस क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ मैंने बहुत पुरातन काल में नाना प्रकार की चर्चाएं की हैं आज बेटा! मुझे प्रतीत नहीं कि महानन्द जी कि ऐसी प्रेरणाएं क्यों होती रहती है यह तो योग बेटा! योग का वन है, मैं वन में नहीं जाना चाहता हूँ। भयंकर वन है। इस वन में जाने से मोनो यह अनुभव का विषय है। यह मेरा कोई

वक्तव्य देने का विषय नहीं है। योग के विषयों को मैं अपना वक्तव्य बना सकूं ऐसा विचार नहीं। यह तो केवल मैंने सूक्ष्म चर्चाएँ प्रगट की हैं। क्योंकि तुम स्वतः जानते हो, तुम इसके जिज्ञासु रहे हो, तुम्हें इसका वर्णन कराया है। आज का हमारा अभिप्रायः बेटा! हमारा क्या है हमारा अभिप्रायः यह है कि योग के क्षेत्र में मानव को जाना चाहिए। परन्तु यौगिक क्षेत्र में जाने के पश्चात् मानव अपने आनन्दमय अन्न को प्राप्त करने से मानव ऊँचा बन सकता है। ऊर्ध्वा गति को प्राप्त हो जाता है। अन्यथा मानव में नाना प्रकार की विडम्बना आती रहती है। और वह जो वहाँ विडम्बना है वह विडम्बना ही मुनिवरों! देखो, मानव के जीवन को निराशा में प्राप्त करा देती है। इसीलिए प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्याओं को ऊँचा बनाना है।

तो मुनिवरों! देखो, बारह बारह वर्षो तक बेटा! जब इन्द्र मुनिवरों! देखो, जब इन्द्र प्रजापति के द्वार पर पहुंचे थे तो महाराजा प्रजापति ने यह कहा कि तुम बत्तीस वर्ष तक यह कहा कि तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो। प्रत्येक मानव यह जानता है कि ब्रह्मचर्य का पालन क्या है? एक ऋषि देवताओं के अधिराज को यह कह रहा है कि तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो। ब्रह्मचर्य पालन का अभिप्रायः है कि मानव को प्रत्येक श्वास के साथ में ब्रह्म का चिन्तन होना चाहिए। हे इन्द्र! तू बारह वर्ष तक देखो, प्रत्येक श्वास के साथ में देखो, ब्रह्म का चिन्तन हो, एक भी श्वास तुम्हारा ऐसा न हो। जैसे मानो मनके धागा होता है। माला उसी काल में कहलाती है जब एक धागे में मनके पिरोए हुए होते हैं। इसी प्रकार तुम अपनी एक ऐसी माला को निर्धारित करो। प्रत्येक श्वास तुम्हारे मनके हैं। मानो देखो, प्रत्येक उन मनकों को तुम एक सूत्र में पिरोने का प्रयास करो। जब तुम पिरोते रहोगे तो उस समय तुम्हें वह शक्ति स्वतः आ जाएगी कि तुम दूसरे के मन में स्वतः प्रवेश करने लगोगे।

परन्तु रहा यह कि मैं तुम्हें नाना प्रकार की आभा प्रगट करने आया हूँ क्या महर्षि वशिष्ठ जब ब्रह्म का चिन्तन करते थे, जब उनको ब्रह्मवेत्ता की उपाधि प्राप्त होने लगी ब्रह्मर्षि उच्चारण करना महर्षि विश्वामित्र प्रव्हे तो महर्षि वशिष्ठ ने बारह वर्ष तक एक भी श्वास को एक भी मनके को धागे से दूरी नहीं होने दिया। बारह वर्ष का अभ्यास था वह

ब्रह्मवेत्ता बन गए। परन्तु देखो, गायत्री छन्दों को पठन पाठन करने वाले वशिष्ठ मुनि महाराज मानो देखो, वह अपने राष्ट्र को त्याग देते हैं और राष्ट्र को त्याग करके छन्द और गायत्री को ले करके मानो देखो, प्रत्येक श्वास के साथ में वह गायत्री को मनका बना करके ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोने का उन्होंने प्रयास किया। प्राणं में प्राणं प्रव्हे प्राण का प्राण में प्रवेश करा दिया तो परिणाम यह हुआ क्या वे तपस्वी बने। तपस्वी बन करके तभी तो वशिष्ठ कहता है कि हे देवी! यह जो चन्द्रमा का प्रकाश है यह कोई प्रकाश नहीं है विश्वामित्र मुनि की तपस्या के आगे। महर्षि विश्वामित्र का इतना तप है कि सहस्त्रों चन्द्रमा भी मानों उनके तप को आच्छादित नहीं कर सकते। परिणाम मेरे प्यारे! देखो, वह जो मंगलप प्रव्हे वह तप तो था परन्तु नम्रता की सूक्ष्मता थी। क्योंकि नम्रता में प्रभु है, नम्रता में देवता है, नम्र ही मानव का सुलक्षण कर्त्तव्य है, जब वह नम्रता आ गई तो वे ब्रह्म ऋषि बन गए। परिणाम क्या मुनिवरों! जब हम प्रत्येक श्वास के साथ ब्रह्म को पिरोने का प्रयास करोगे तो वह हिंसक प्राणी तुम्हारे समीप आ जाएंगे मानो वह हिंसा का त्याग करके अहिंसा में परणित हो जाएंगे अहिंसा परमो धर्मः। में परणित हो जाएंगे। मनों में बल आ जाएगा।

यह है बेटा! आज का वाक् अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी आज के वाक् उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः क्या कि मैंने महानन्द जी के प्रश्नानुसार मानो देखो, बहुत गम्भीर क्षेत्र में चला गया अनुभव के क्षेत्र में चला गया जो अन्तिम अनुभव का विषय रह जाता है। परन्तु मैंने इस क्षेत्र की कुछ सूक्ष्म विवेचनांए तुम्हें प्रगट की हैं समय मिलेगा तो शेष चर्चाए कल प्रगट करेंगे आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह क्या अन्तःकरण में ऊँचे संस्कारों को, ऊँची तरंगों को ले करके मानव को अपने जीवन को ऊँचा बनाना है। यह है आज का हमारा वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो बेटा! शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः ये कि हम परमात्मा की आभा का गुणगान गाते हुए, परमात्मा का आश्रय लेते हुए आनन्द कर आश्रय लेते हुए अपने को उसमें प्रवेश कर दें, मन और प्राण को एक सूत्र में ला करके मानो हम

योगाभ्यास करें। अभ्यास का अभिप्रायः क्या अभ्यास करते हुए ब्रह्मचर्य की जो गति है वह ऊर्ध्वा बनाने का प्रयास करें। ओ३म् रूपी धागे में उस ब्रह्म को हम उसमे धारण करते रहें। जैसे मुनिवरों! देखो, परमात्मा का जो सूत्र है वह इस प्रकृति के सृष्टि के चक्र को चला रहा है। स्वतः गति आ रही है। क्योंकि प्रत्येक मनका प्रत्येक परमाणु ओ३म् रूपी धागे से पिरोया हुआ है। कोई भी वैज्ञानिक ऐसा नहीं है जो ओ३म् रूपी सूत्र को पृथक कर सके। मेरे प्यारे! ओ३म् रूपी धागे से एक एक कण पिरोया हुआ है। एक एक परमाणु पिरोया हुआ है, वह स्थूल बन करके स्वतः गति आ रही है। कहीं सूक्ष्म बन करके स्थूल को गति दे रहा है। यह है आज का हमारा वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा।

१४ 03 03 1976 पुष्प 27 मानव उन्नति

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पाठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है।

प्रत्येक मानव के हृदय में यह एक आकांक्षा रहती है कि हम एक एक वेदमन्त्र को, एक एक वेद ऋचा को मैं अपने हृदय में धारण करें। परन्तु जब मानव इनका स्मरण करता है और इनके संस्कार रूप बना करके अपने चित्त में स्थित कर देता है तो जिस भी काल में मानव उन वाक्यों का स्मरण करता है। उनके संस्कार रूप बना कर मानो उन वाक्यों का स्मरण करता है। वे चित्र मानव के समीप आने प्रारम्भ हो जाते हैं। अथवा उनका चित्रण होना प्रारम्भ होने लगता है। हमने आचार्य के समीप विराजमान हो करके अमुक समय पर इन वाक्यों का स्मरण किया, परन्तु उनका अध्ययन किया। तो ऐसे वह मानव सदैव उसका मन्थन करता रहता है और उसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि मानव की ऊर्ध्वा गति होना प्रारम्भ हो जाता है।

मेरे पुत्रों! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यौगिक चर्चा की हैं मेरे प्यारे! महानन्द जी

का तो सदैव मन्तव्य यह रहता है कि अग्नि के गर्भ में प्रवेश हो जाओ, जल के गर्भ में प्रवेश करो और वायु के गर्भ की चर्चाएं करते रहो। परन्तु आज मैं बेटा! उन चर्चाओं पर विचार देना नहीं चाहता मैं इनके गर्भ में जाना नही चाहता मेरा वह समय बेटा! समापन को प्राप्त हो गया। जब मैं इन वाक्यों को पुरातन काल से ही प्रगट करता चला आया। परन्तु उस समय की अव्यक्ता उस समय की सूक्ष्मता मेरे पुत्रों! अभा अभाव हो गया आज तुम्हें नाना चर्चाएँ करता हुआ यह वाक्य प्रगट करने जा रहा हूँ कि आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कर रहा है। वैदिक मन्त्र को प्रत्येक मानव उनका विभाजन करता है, एक एक शब्द का विभाजन करता रहता है और उस मन्त्र को जब विचारने लगता है मन्त्रणा करता है तो मेरे पुत्रों! उसमें से नाना प्रकार की आभाओं का जन्म होना प्रारम्भ हो जाता है। मानव का मस्तिष्क विकासता को प्राप्त होने लगता है। परन्तु उन वाक्यों को विचारने से हमें यह सिद्ध होता है हमें कुछ ऐसा ही आभास होने लगता है कि परमात्मा का यह जगत अनन्त है और जैसे परम पिता परमात्मा का जगत अनन्तता में है इसी प्रकार उसका बेटा! ब्रह्माण्ड ब्रहे वह परमात्मा भी अनन्तवत माना गया है। आज मैं अनन्तता की चर्चा करने नहीं आया।

बेटा! मैं तुम्हें यह वाक्य उच्चारण करने के लिए आया हूँ, क्या, मैं अग्नियों की पूजा करने के लिए आया हूँ। पुत्रों! वह काल था यज्ञशाला में यज्ञमान याग कर रहा है। अग्नि प्रदीप्त हो रही है। परन्तु उस अग्नि के समीप हो करके, यज्ञमान मानो देखो, यज्ञशाला में यज्ञमान याग कर रहा है, विद्यालय में आचार्य और ब्रह्मचारी याग कर रहे हैं, गृह स्थल में बेटा! देखो, पति पत्नी याग कर रहे हैं। हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा कि यह जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड है यह एक प्रकार का याग हो रहा है, उसमें एक महान याग हो रहा है बेटा! उस याग को जानने की आवश्यकता है मुझे बेटा! वह काल स्मरण है महर्षि भृंगी ऋषि महाराज जब याग करते थे। तो बेटा! जब वह स्वाहा उच्चारण करते थे तो वाणी में इतना प्रकाश था कि क्या मुनिवरों! देखो, स्वाहा अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो जाता था और अन्तरिक्ष में से पुनः, वह ऋषि के चित्रों को ले करके, बेटा! अन्तरिक्ष में गमन करता था। तो ऋषि यह विचारने लगा ऋषि यह

विचारने लगे ऋषिवर कि मेरे जो शब्द के साथ में स्वाहा के साथ में जो चित्र चला गया है। मानो देखो, उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया और उस यन्त्र में मुनिवरों! देखो, जो वह स्वाहा होता था यज्ञ में जो आह्वनीय अग्नि प्रकाश दे रही थी यज्ञ की अग्नि में जो प्रकाश हो रहा था मेरे पुत्रों! देखो, उस प्रकाश में जो चित्र जा रहे थे, शब्दों के चित्र जा रहे थे मुनिवरों! देखो, वह उनके यहाँ यज्ञशाला में जो यन्त्र विराजमान हैं उस मन्त्र में बेटा! वह चित्र आ रहे हैं और ऋषि दृष्टिपात कर रहा हैं, विभाण्डक ऋषि महाराज। विभाण्डक ऋषि महाराज से कहा कि ब्रह्मचारी यह कैसा चित्र है। तों मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचारी ने यह कहा ऋषि से कि प्रभु! यह तो हमारा जीवन है, यह तो मानवीयता का कर्त्तव्य है कि ज्ञान और विज्ञान में जाना तो स्वाभाविकतव माना गया है। तो बेटा! हमारे जो ऋषि मुनि थे पुरातन काल मैं आज से बेटा! लाखो वर्षो पूर्व की चर्चा कर रहा हूँ मानो उस काल में प्रत्येक मानव याज्ञिक बना हुआ है और याग करता हुआ मुनिवरों! देखो, अपनी प्रवृत्तियों को अपने विज्ञान की ऊर्ध्वा में ले जाना चाहता है।

विचार यह आता है बेटा! एक समय ऋषि से यह प्रश्न किया गया कि महाराज! यह जो याग है इस याग से दूसरी भी वस्तु संसार में कोई है अथवा नहीं जो उत्तम कर्म करने के लिए तो उस समय ध्रुन्ध्रेत्वर ऋषि महाराज बोले कि हे ब्रह्मचारियों! इससे ऊर्ध्वागति में जाने वाला अन्य कोई कर्म नहीं है। क्योंकि यह एक ऐसा कर्म है, जो मानव को ऊर्ध्वागति गति में ले जाता है। यह याग है। याग के भिन्न भिन्न प्रकार स्वरूप माने गए हैं। तो मुनिवरों! देखो, मेरे प्यारे! महानन्द जी भी याग करते रहे हैं। तो ये कहा करते थे जब वेदमन्त्र का अध्ययन करते। आज इनका प्रश्न इनके समीप परन्तु इनका अनुभव भी इस सम्बन्ध में रहा है जब ये याग करते तो एक एक वेदमन्त्र को विचारते और विचारता हुआ मानो यह विचारते रहते थे कि हमारा संसार में कोई शत्रु नहीं रहना चाहिए। परन्तु जब वेद में यह विचारते कि हमारा मानं ब्रहे जो मानव याग करता है, उस मानव का कोई भी संसार में शत्रु नहीं होता। यह मैं एक बहुत आश्चर्य को शब्द उच्चारण कर रहा हूँ। पुत्रों! हम बाल्यकाल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह

प्रश्न किया करते, क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव जब साम गान गाते थे, यजूंषि गान गाते थे। जटा पाठ और घन पाठ में जो स्वरों सहित जब गान गाते थे, तो उनके शब्दों को श्रवण करने के लिए पक्षीगण, हिंसक प्राणी आ करके बेटा! उनके चरणों को छुआ करते थे। तो मुनिवरों! देखो, उस समय हम ये विचारते रहते थे पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रश्न करते रहते थे कि हे प्रभु! क्या वेद का वाक् यह हमें सिद्ध होता दृष्टिपात होता है कि मानव का कोई शत्रु ही नहीं। परन्तु शत्रु किनका है? जो याग नहीं करते शत्रु किनका है संसार में यदि कोई प्राणी का कोई शत्रु है जो याग नहीं करते और जो याग करते हैं मानो देखो, उसको आडम्बर बना देते हैं अथवा उसको विडम्बना में ले जाते हैं जो याग करके अपने जीवन को यागमय नहीं बनाते, उनको संसार में कष्ट और शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु देखो, यह वाक् मैं और भी विचित्र उच्चारण कर रहा हूँ पुत्रों! मानो देखो, अग्न्याधान करने से ही याग में आहुति देने से ही संसार में मानव याज्ञिक नहीं हो जाता।

हास्य..... मुझे वह काल स्मरण है जब ब्रह्मचारी याग करता है। ब्रह्मचारी गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा कर रहा है उस अग्नि को हमारे यहाँ गार्हपथ्य नाम की अग्नि कहा जाता है। जो सत है जो मानो देखो, ग्रीति सत कहलाया जाता है हमारे यहाँ जब ब्रह्मचारी आचार्य कुल में जाता है तो आचार्य कुल में प्रवेश करके बेटा! उसे आचार्य ब्रह्मचारी को मुनिवरों! देखो, गार्हपथ्य की अग्नि की पूजा कराता है। आह्नीय अप्रहा अग्नि भी कहते हैं मेरे पुत्रों! जब वह अग्नि की पूजा करता है अग्नि का अभिप्रायः क्या है? मुनिवरों! देखो, मानव के अन्तःकरण में जो संस्कार विद्यमान होते हैं, ब्रह्मचारी से कहता है कि हे ब्रह्मचारी! तेरे तो अन्तःकरण में जो नाना करोड़ों जन्मों के संस्कार विद्यमान हैं उन संस्कारों को तू बाह्य जगत से और मेरे चरणों में विराजमान हो करके, उन संस्कारों को जागरूक कर। अब मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचारी गार्हपथ्य अग्नि की पूजा करता हुआ मानो देखो, उन संस्कारों को उदबुद्ध करना प्रारम्भ कर देता है। क्या वह प्रारम्भ कैसे करता है? मुनिवरों! देखो, वह प्रारम्भ किस प्रकार करने लगता है। शान्त मुद्रा में विराजमान होता है, एक एक शब्द को अंकित करने लगता है। अपने में वही

जो मैं कल अपने विषय को अधूरेपन में त्याग गया था, अपने विषय को उसी की मैं पुनरक्ति कर रहा हूँ। मैं मानो देखो, उसी को अग्रणीय बना रहा हूँ, क्या जब इससे हमारा कल का मानो कुछ संक्षिप्त रह गया है तो मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचारी जब अपने संस्कारों को उदबुद्ध करता है, तो कैसे करता है? आचार्य के चरणों में ओत प्रोत है। आचार्य कहता है, हे ब्रह्मचारी! तुम गो नाम की रक्षा करो, तुम गो नाम की सेवा करो। तो मेरे प्यारे! सेवा क्या है बुद्वि गो नाम गो नाम बुद्धि का माना गया है और उसकी सेवा उसका सदुपयोग है, उसका पूजन है, पूजन का अभिप्रायः है कि इस बुद्धि का सदुपयोग किया जाए। सदुपयोग में उसे लाने के पश्चात् जीवन को अग्रणीय बनाना है। तो मेरे पुत्रों! देखो, वह चरणों में विराजमान है, प्राणत्व को जानने के लिए तत्पर है, मनस्तव को जानने के लिए तत्पर है। तो मुनिवरों! देखो, वह इतना तन्मय हो जाता है कि वह संसार की कोई वार्त्ता श्रवण नहीं करता। वह संसार के विषैले संस्कारों को अपने तक लाने नहीं देता। परन्तु एक एक श्वास को मानो अपने उस एक मनके को धागे में पिरोता रहता है। मानो देखो, जब वह चरी को जान लेता है कि ब्रह्म की चरी क्या है? उसकी मुझे रक्षा करनी है वह मेरे प्यारे! देखो, प्राण के द्वारा महानत्ता के द्वारा मुनिवरों! देखो, वह अपनी गति को ऊर्ध्वा बनाता है। ब्रह्मचरिष्यामि वह ब्रह्मचर्य की गति को ऊर्ध्वा बनाता है और ब्रह्मचर्य की गति को ऊर्ध्वा कैसे बनाता है प्राण के द्वारा और मन और प्राण को और दोनों का समावेश करता है। प्राण के द्वारा तो मुनिवरों! ब्रह्मचर्य की गति को वह ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाता है। जब ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाता है तो वह याग कर रहा है वह चाहता है कि मैं याग करूं और परन्तु मेरा संसार में कोई शत्रु न रहे। अब वह याग करता है साकल्य के द्वारा। वह अग्न्याधान कर रहा है मानो वह बाह्य जगत का अग्न्याधान कर रहा है और आन्तरिक जगत का भी अनुसन्धान करता है। उसका भी अग्न्याधान कर रहा है। मानो वह दोनों प्रकार के यागों में तत्पर है। जब वह तत्पर होता हुआ वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि को पूजा करता है और उस गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा करने के पश्चात् मेरे प्यारे! उस अग्नि को बाह्य जगत

और आन्तरिक जगत दोनों को एकता में लाने का प्रयास कर रहा है।

नाडियों से लोकों का सम्बन्ध

प्रयास करता हुआ मुनिवरों! देखो, मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय कराया था क्या मानो देखो, जब वह ब्रह्मरन्ध्र में में अपनी गति ले जाता है तो अग्नि का आश्रय लेता है। यहाँ अग्नि नाम बेटा! इस भौतिक अग्नि को ही नहीं माना है। यहाँ अग्नि के नाना प्रकार के स्वरूप माने हैं। जैसे सूर्य नाम केवल प्रकाश का है, वेद नाम प्रकाश का है। जैसे मुनिवरों! देखो, यह बाह्य जगत यह जो सूर्य प्रकाशित करता है मानो प्रकाशित करता हुआ इसी प्रकार मानव का जो आन्तरिक सूर्य है, वेद की ज्योति जो प्रकाश दे रही है उस वेद की ज्योति को मानो जो ज्ञान रूपी जो ज्योति है वह जो प्रकाश देती है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह प्रकाश जब मन और प्राण दोनों एक सूत्र में हो जाते हैं, तो मुनिवरों! देखो, यहाँ रीढ़ के विभाग से मुनिवरों! दो नाड़ियाँ चलती हैं। मानो दोनों नाड़ियों की चर्चा हम बहुत पुरातन काल में भी उनका सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से हो जाता है। और ब्रह्मरन्ध्र में जा करके जैसे मानो देखो, वृक्ष पर एक पुष्प खिल जाता है। उस पुष्प के तुल्य ब्रह्मरन्ध्र में उन नाड़ियों में से नाना वाहक नाड़ियों जैसे पुष्प में होती हैं, इसी प्रकार उन नाड़ियों का सम्बन्ध मेरे प्यारे! नाना लोक लोकान्तरों से हो जाता है। और नाना लोक लोकान्तरों से होता हुआ, इसी को अमृत बहाने वाला मानो कोई प्रकार ला रहा है। कोई लोकों के जीवन को ला रहा है, कोई वहाँ के प्राणी के जीवन की गाथा गा रहा है। वह नाना प्रकार की आभाएं, नाना प्रकार की तरंगें बेटा! मानव के मस्तिष्क में आनी प्रारम्भ हो जाती हैं, और जब वह मानव के मस्तिष्क में आनी प्रारम्भ हो जाती हैं। तो वह जो पुष्प है वह ज्यों का त्यों नाना नाड़ियों के द्वारा मेरे प्यारे! देखो, वही योगाभ्यास करने वाला वह साधक मेरे प्यारे! देखो, जब वह अपने आन्तरिक जगत को दृष्टिपात करता है तो नाभि जो केन्द्र है, नाभि जो स्थली है उस नाभि में बेटा! एक कुरुतुक नामक एक स्थली कहलाती है, कुरूतुक नाम की जो स्थली है उसमें बेटा! वह सूर्य चन्द्रमा से मानो देखो, दोनों को से सोम ले रहा है। यह

भी विचित्र वाक् है क्या मानो सूर्य में भी सोम है और चन्द्रमा में भी सोम है मेरे प्यारे! देखो, सौम्य का अभिप्रायः है कि सौम्य अनिप्रताः वह जो सोम है जो चन्द्रमा से आता है नाना प्रकार की कान्तियों के द्वारा और जो सूर्य से प्रकाश आता है, जिसे देखो, सोम कहते हैं, सोम कहते हैं बेटा! जो ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर ले स्थान में पिपाद नामक स्थान है, उसमें बहुत सूक्ष्म सा एक परमाणु होता है, मेरे प्यारे! देखो, वीचम् नाम को जो घृतम स्थान है उसमें जब ब्रह्मरन्ध्र में प्राण और मन के प्रभाव से बेटा! जब पंखुड़ियाँ गति करनी प्रारम्भ करती हैं तो मुनिवरों! देखो, उन पंखड़ियों के साथ में वह जो पिपाद स्थान है। उसमें से परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं। वह परमाणु मानव की रसना के निचले विभाग में एक स्वभाकृत नाम की नाड़ी है। उस स्वभाकृत नाम की नाड़ी का रसना के अग्र भाग से सम्बन्ध होता है, और जब रसना के अग्र भाग में मुनिवरों! देखो, जब वह रस आता है, जिसको योगी पान करता है, अग्नि की पूजा करने वाला, जब उसको पान करता है। मेरे प्यारे! वही रस देखो, नाभावृत्तिक नाम की नाड़ी है उसमें वह रस जाना प्रारम्भ हो जाता है। मेरे प्यारे! देखो, वह उस स्थली में वह जो नाभि केन्द्र है त्रिकाट असुतो जो चक्र कहलाता है उसमें वह रस आना प्रारम्भ हो जाता है। मानो वह जो रस है उस रस में मुनिवरों! देखो, नाना पुत्रों! असुतो मेरे प्यारे! उस रस को अग्नि भी भस्म नहीं कर सकती। उस मानो आनन्द को, उस मानो सोम मुनिवरों! देखो, अग्नि भी भस्म नहीं कर सकती। उस मानव का जो शरीर है वज्र के तुल्य हो जाता है। वह वज्र बन करके मुनिवरों! देखो, अपने में स्वादन पान करता रहता है।

पितर याग

जिस ब्रह्मचर्य की गति मानव ध्रुवा में जानी थी जिससे मानव पितर याग करता है। मुनिवरों! देखो, उन परमाणुओं की गति शनै शनै ऊर्ध्वा गति को चली गई। वह ब्रह्मरन्ध्र से, वही परमाणु क्योंकि देखो, निचले स्थान में, तो बेटा! जब ब्रह्मचर्य की गति, उन परमाणुओं की गति मानो ध्रुवा बन जाती है, तो संसार में पितर याग करता है। सन्तान इत्यादि की उत्पत्ति कर रहा है। और जब उन्हीं परमाणुओं की बेटा! ऊर्ध्वा गति बन

जाती है तो देवता बन जाता है वह कैसा दिव्य बन जाता है? मुनिवरों! देखो, यह संसार उसके लिए खिलवाड़ बन जाता है। मेरे पुत्रों! वह अग्नि को लेकर, वह जो परमाणु रूपी अग्नि है उस अग्नि से याग कर रहा है। कहाँ वह नाभि केन्द्र में याग कर रहा है वह ज्ञान के द्वारा याग कर रहा है याग करता हुआ परमाणुओं की ऊर्ध्वा गति बना रहा है। और बनाता हुआ मुनिवरों! देखो, ब्रह्मरन्ध्र से ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होना प्रारम्भ हो जाती है।

तो हे मेरे पुत्रों! मैं इस विषय को बहुत गम्भीरता में लेता चला जा रहा हूँ। परन्तु जब वेद का विषय वेद का विचार जब ऐसा आ गया क्या बेटा! मैं गम्भीर वाक्यों को अवश्य उच्चारण कर पाऊँगा परन्तु देखो, मैं इसमें इतना कर सकूंगा इतना मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर बेटा! मैं देता रहूँगा और देता रहा हूँ परन्तु देखो, आज का विचार क्या कि वह याग कर रहा है। वह मानव याज्ञिक कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, वह किसी किसी काल में पितर याग भी कर देता है, उसके पश्चात् भी वह याग कर रहा है। तो मेरे पुत्रों! ऐसा मुझे स्मरण है। ऐसा मुझे दृष्टिपात आता है कि जब वह अव्याहत गति को प्राप्त होता हुआ वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि बेटा! उससे दूरी हो करके यहाँ तीनों अग्नियों का समावेश हो जाता है। तीनों अग्नियों का समावेश होता हुआ वह मुनिवरों! देखो, वह संसार में एक एक परमाणु को व्यापकता में दृष्टिपात कर रहा है। मेरे प्यारे! वह समाधि लगा रहा है, एकान्त विराजमान हो करके समष्टियों में विराजमान हो गया तो वहीं समाधिस्थ हो गया वहीं यह विचारता रहता है कि ये संसार क्या है? मानो यह वनस्पतियाँ क्या है? ये गुण क्या हैं? इनके गुणों को जानता हुआ वह समाधिस्थ होता हुआ वह मेरे प्यारे! आह्वनीय नाम की अग्नि की पूजा कर रहा है। वह मानो देखो, चकनाक अग्नि की पूजा कर रहा है। मुनिवरों! देखो, अग्नियों की पूजा करता हुआ प्रत्येक वस्तु में, कण कण में बेटा! वह विज्ञान और प्रसारण दृष्टिपात कर रहा है। और जब प्रसारण दृष्टिपात करता रहता है तो मेरे पुत्रों! देखो, वह प्रसारण जब प्रत्येक वस्तु में प्रसारण दृष्टिपात करता है तो मुनिवरों! देखो, उसका आकुञ्चन भी करने लगता है और उसको बाह्य जगत में दृष्टिपात करता हुआ वह आन्तरिक जगत में जाता है। अपने

मन और प्राण के जगत में जाता है। मुनिवरों! देखो, उसे अपने अन्तरात्मा में सर्वत्र जगत दृष्टिपात आ रहा था। जब वह याग करता चला जा रहा था मुनिवरों! देखो, ऐसे प्राणी का संसार में ऐसा जो याज्ञिक पुरुष होता है, ऐसा जो समिधा के द्वारा, मानो देखो, जो नाना साकल्य के द्वारा नाना प्रकार की वनस्पतियों को निगल रहा है। हव्य पदार्थों का हव्य बना करके पान कर रहा है। देवताओं को प्रदान कर रहा है। स्वयं देवता बन रहा है। तो उस मानव का संसार में कोई शत्रु नहीं रहता है। वह जो ऐसा याज्ञिक पुरुष है बेटा! उसका कौन शत्रु बनेगा? क्योंकि जब उसका अन्तरात्मा उसका शत्रु नहीं रहा, वह मन भी प्राण में समावेश कर दिया और प्राण गति कर रहा है, एक एक वनस्पति में गति कर रहा है, यह पृथ्वी के गर्भ में जाता है तो वहाँ भी नाना प्रकार के खनिजों को जानता है।

पृथ्वी के तप से खनिज

ब्रह्मचारी सुकेता जब महर्षि भारद्वाज के आश्रम में और भगवान राम के समीप अहिल्या के गर्भ में प्रवेश करने लगे तो अहिल्या के गर्भ में नाना प्रकार के खाद्य और खनिज दृष्टिपात हुआ उसमें बेटा! देखो, दस दस योजन के निचले स्थलों की कौन सी भूमि के ऊपर कौन सा खनिज विराजमान है, कौन सा खाद्य विराजमान है, मानो देखो, कितने प्रकार का जल प्रवाह कर रहा है मेरे पुत्रों! देखो, वह वैज्ञानिक बनता हुआ आन्तरिक और बाह्य जगत दोनों को जानता हुआ वह उस विद्या को पान करता है। यह अग्नि का प्रवेश मानो यह अग्नि ही तो है जो पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार की वनस्पतियों को तपा रही है। नाना खनिजों को तपा रहा है। जल के परमाणुओं को ले करके जब ब्रह्मचारी अनुसन्धान करता है, अनुसन्धान करता हुआ वह उड़ान उड़ता है कि पृथ्वी के गर्भ में क्या है? किस प्रकार के प्राणी रहते हैं? चन्द्र लोक में क्या है? मंगल लोक में क्या है? मुनिवरों! सर्वत्र जगत में प्राणों की गति क्या है? जब आकाश गंगा में जाता है तो आकाश गंगा के सूर्यों की गणना करता है। बेटा! वह अनुभव से गणना कर रहा है देखो, दो नाड़ियों का मैंने वर्णन कराया है। वह समाधि के द्वारा

समाधिस्थ हो करके अपने मन और प्राण की प्रवृत्ति को अन्तरिक्ष में त्याग देता है। अन्तरिक्ष में से मानो उसे अनुभव हो रहा है, एक आकाश गंगा में कितने लोक हैं? एक आकाश गंगा में कितने सूर्य हैं? एक आकाश गंगा में कितने बृहस्पति हैं? मानो जब एक आकाश गंगा को जानता है तो द्वितीय आ जाती है। जब बेटा एक एक ऋषि ब्रह्मचारी सुकेता जैसा ब्रह्मचारी एक मानव समाधिस्थ होता हुआ वह मुनिवरों! बहत्तर बहत्तर आकाश गंगा और सूर्यों की गणना करता है। तो कहता है कि मैं इनकी गणना नहीं कर सकता। अनुभव कर सकता हूं।

मेरे प्यारे! देखो, एक आकाश गंगा में जब अरबों खरबों सूर्यों की गणना करने लगता है। द्वितीय उसी प्रकार की गणना करने लगता है, नाना स्वाति नक्षत्रों को दृष्टिपात करने लगता है। मेरे पुत्रों! वह अपने में ही इस संसार को व्यापकता में ले जाता है। प्रसारणवाद में ले जाता है इसी को आकुञ्चन करता हुआ, इसी को आञ्कुचन करके बेटा! समेट करके, अपने आन्तरिक जगत में दृष्टिपात कर लेता है। जब आन्तरिक जगत में दृष्टिपात करता है तो आन्तरिक जगत का जो परमाणुवाद है इसका जो निर्माण है मानो एक एक कण में उसे दृष्टिपात आने लगते है। एक एक शब्द में बेटा! उसके चित्र दृष्टिपात आने लगते हैं, मेरे प्यारे! वेद का ऋषि तो कहता है कि चित्रम् ब्रह्मे कृतो अस्ता वेद का ऋषि तो यह कहता है कि एक एक शब्द में, एक एक श्वास में, एक एक मानव की प्राण की गति में मानव के चित्र के चित्र अन्तरिक्ष में विराजमान रहते हैं। उनका जो वाहन है वह अग्नि है। एक अग्नि तो यह है। एक अग्नि वह है जिसके ऊपर यह शब्द विराजमान हो करके आह्वनीय नाम की अग्नि कहलाती है। दक्षिणाय अग्नि कहलाती है। नाचिकेत नाम की अग्नि कहलाती है, सोमभान अप्रत नाम की अग्नि कहलाती है, इन्द्र नाम की अग्नि कहलाती है, सोम प्रतिभा नाम की अग्नि कहलाती है, चाक्राणी नाम की अग्नि कहलाती है, श्वेताम नाम की अग्नि कहलाती है, कृतिभा नाम की अग्नि कहलाती है, बेटा! नाना प्रकार की अग्नियों से अपने चित्रों को दृष्टिपात करने लगता है। जो मेरे प्यारे! भौतिक विज्ञान उसके समीप भी नहीं जाता। भौतिक विज्ञान बेटा! उन चित्रों को नहीं जान सकता। जिन चित्रों को एक योगेश्वर जानता है, मानो

एक इन अग्नियों की पूजा करने वाला जानता है। वेद का ऋषि यह कहता है वेद का ऋषि यह कहता है कि एक ही प्रकार की अग्नि नही है संसार में, संसार में सहस्रों प्रकार की अग्नि नही हैं वेद का ऋषि तो यह कहता है कि मानो अग्नियों की धारा को गणित करता हुआ मानो समय के समय व्यतीत हो जाते हैं।

वेद के ऋषि से जब यह प्रश्न किया गया क्या महाराज अग्नि कितने प्रकार की होती हैं? तो ऋषि कहता है कि एक अग्नि तो वह है जो मानव के चित्रों को ले जाती है, एक अग्नि वह है जो मानव के चित्रों को स्थिर कर देती है। एक अग्नि वह कहलाती है जो मानो देखो वहां से यहां तक आने के लिए आती है एक अग्नि वह है जिसे वैज्ञानिक अथवा योगी अपने में अनुभव करता उस अग्नि को अपने में खींचने लगता है, एक अग्नि वह होती है मानो खींच करके उसके कणों को ले करके प्राण के द्वारा मानो प्राणतव अग्ने प्व्हे ऊर्ध्वा गति को रमण करता है। वेद का ऋषि कहता है कि यह जो प्राण है, अन्तिम जो सर्वत्र मानो प्रकाश का जो दूत है वह प्राणत्व माना गया है। उसके ऊपर मानव के शब्द और चित्रावली एक एक कण में गति कर रहा है मैं कैसे विचित्र वाक् प्रगट कर रहा हूं, पुत्रों! मानव जब श्वास लेता है तो श्वास के साथ में उस मानव का वैसा ही आकार अन्तरिक्ष में चला जाता है। वह आकार मेरे प्यारे! उसमें लगभग दो खरब परमाणु होते हैं, और उनमें एक एक परमाणु के साथ साथ में मानो करोड़ों करोड़ों परमाणु होते हैं। जो ऐसे परमाणुओं की परिक्रमा करते हैं कैसा विचित्र परमात्मा का निर्माण है। जब एक एक मानव का जब चित्र जाता है तो जैसा मानव का आकार है उसी आकार में उसी मानो क्षेत्र में वह परमाणु रहते हैं। उतना ही आकार का चित्र ले करके अन्तरिक्ष में गति करते हैं।

अज्ञान में मृत्यु

मेरे प्यारे! मैं आज तुम्हें इस क्षेत्र में ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय यह जो कि यह वहुर मधु विद्या है, यह अग्नेय विद्या है, यह मानो देखो प्रहे विद्या है मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा कि यहाँ सहस्रों प्रकार की अग्नियाँ की धारा हैं जिनको

जाना जाता है। जैसे आह्वनीय अग्नि है। एक एक अग्नि को जानते रहो तो बेटा! एक एक धारा एक एक अग्नि में से अरबों खरबों धाराओं का जन्म होता है, और उन धाराओं को गार्हपथ्य अग्नि की पूजा करते है। उस अग्नि को जानते हैं मानो उसमें से अरबों खरबों तरंगे उत्पन्न हो जाती हैं, दक्षिणाय अग्नि को जानने लगते हैं उसमें नाना तरंगे आ जाती हैं उसका जो अपना मौलिक स्वरूप है वो समापन को प्राप्त हो जाता है तो मेरे प्यारे परिणाम क्या मेरे प्यारे! देखो जो मानव इस विज्ञान को जानता है क्या परमाणु परमाणु देखो नष्ट नही होती, उस मानव का संसार में कोई शत्रु नहीं होता। क्योंकि शत्रु तो अज्ञानता में रहता है। जब तक मानव यह स्वीकार करता है कि मेरा यह अभिमान प्रव्हे शरीर है मोह ममता में लगा रहता है। इस मोह ममता को अपने क्षेत्र में नहीं रहने दिया जाएगा तो मृत्यु नहीं होती। क्योंकि मृत्यु तो अज्ञान को कहते हैं। जब अज्ञान नहीं रहेगा, जब मानव विज्ञान की तीन कञ्चन धाराओं को जान लेगा देखो, देखो, प्रसारण, देखो, व्यापकवाद जिसको हम प्रसारण कहते हैं, ध्रुवा और ऊर्ध्वा और मेरे प्यारे! देखो, गति करना और मुनिवरों! देखो, आकुञ्चन यह पांच प्रकार की धाराओं को जो जान लेता है अथवा जो अपने में समाहित कर लेता है, मुनिवरों! देखो, अपने जीवन को व्यापक बनाना, ध्रुवा बनाना, ऊर्ध्वा बनाना ध्रुवा से ऊर्ध्वा में जाना और आकुञ्चन करना इनके कार्य को जानकर के उसको अपने में समावेश करना मेरे प्यारे! देखो, इसके पश्चात् गति करना जो इस क्रियाओं को जान लेता है मेरे प्यारे! उसकी संसार में मृत्यु क्यों आ जाएगी। क्या मृत्यु क्यों आती है? मृत्यु कहते किसे हैं अरे, शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं कहते। पुत्रों! मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए कहा है कि मृत्यु संसार में उनकी होती है जो संसार में अपक्रीति होती हैं। अरे, मृत्यु तो अज्ञानी की होती है, अरे, ज्ञानी की संसार में मृत्यु नहीं होती। वह तो सूर्य लोकों को प्राप्त होते हैं। वह तो सदैव प्रकाश में रहते हैं एक एक श्वास के साथ में अग्नि तत्त्व भ्रमण कर रहा है। मानो अमृत बह रहा है। जो इस विद्या को जानता है उसका ब्रह्मचर्य वह जो चरी है, वह सुरक्षित रहती हैं। अरे, संसार का प्राणी आ करके बेटा! उसको शस्त्रों से भी छेदन्य नहीं कर सकता। मेरे प्यारे! जब चरी की रक्षा होती

है आज जो मानव चरी की रक्षा ही नहीं कर पाते, अरे, जो चरी को ही नहीं जान पाते। मेरे प्यारे! चरी की रक्षा कैसे होती है श्रवण करो, एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा जब साधक बनने के लिए पहुंचे तो यह कहा गया कि 85 वर्षों तक मौन रह करके अपने जीवन को व्यतीत करते। अरे, 85 वर्षों तक मौन रह करके वाणी के तप को तपा जाता है। एक मानव चाहता है कि मैं नेत्रों का तप करना चाहता हूँ। वह नेत्रों से सदैव मौन रह करके नेत्रों से प्रभु की महिमा को दृष्टिपात कर रहा है। मुनिवरों! देखो, श्रोत्रों से अशुद्ध वाक्य श्रवण नहीं कर रहा है, वह श्रोत्रों में सदैव महान दर्शनों के शब्दों को, विज्ञान के शब्दों को श्रवण कर रहा है। मेरे पुत्रों! घ्राण के द्वारा सदैव सुगन्धि सुगन्धि लेता रहता है। वाणी के द्वारा सदैव सत्य ही सत्य उच्चारण करता रहता है। सत्य ही दृष्टिपात करना सत्य ही का स्वप्न लेना, सत्य ही श्रवण करना, सत्य ही उच्चारण करना, सत्य को स्पर्श करना मेरे प्यारे! । जब सत्य ही सत्य जीवन में आ जाता है। अरे, सत्य में ईश्वर है, सत्य में ही वज्र बनना है। जब प्रत्येक इन्द्रिय में जब सत्य ही सत्य आ जाता है, ब्रह्मचर्य किसी भी इन्द्रिय से शान्त नहीं हो पाता, मेरे पुत्रों! देखो, वह कैसा जीवन है अरे, उस मानव के जीवन में अमृत भरण हो जाएगा, सोम से अमृत लेता है। मानो वह चन्द्रमा से अमृत नहीं लेता वेद का ऋषि तो यह कहता है। लोकत्र व्हे अस्सुताम् अमृता, अरे, नाना लोक लोकान्तरों से अमृत को लेता रहता है जैसे एक व्यक्ति संसार में सदैव दूसरों के गुणों को ही श्रवण करता रहता है अव गुणों को छूता भी नहीं है। प्राणी का, एक समय वह भी आता है कि अवगुण वाले प्राणी भी उसकी पूजा करना प्रारम्भ कर देते हैं।

तो हे मेरे पुत्रों! आज हमें विचारना है कि हम उस क्षेत्र में पहुंचे, हम उस विद्या को जानें, परन्तु बिना तप के बिना अनुभव के यह विद्या नहीं जाती। यह बहुत गम्भीर विषय है, आज बेटा! आज बेटा! तुम मेरे से प्रश्न कर रहे हो। उस विद्या ने तुम्हारे जीवन को महान बनाया। मानो जीवन मुक्त बन जाता है प्राणी वह ऐसा बन जाता है मानो अन्तरिक्ष के परमाणुओं को जानता हुआ, प्राणी मेरे प्यारे! देखो, वो उन परमाणुओं को एकत्रित करके उन चित्रों में प्रवेश कर जाता है। जो चित्र उसके अन्तरिक्ष में गति

कर रहे हैं। उन चित्रों को ले करके वह किसी मृतक प्राणी के शरीरों में प्रवेश करके उससे वह जीवित बन जाता है। मानो वह शरीरों को प्राप्त होता रहता है। अरे, स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को जान करके बेटा! वह मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। यह अग्नि की पूजा की पूजा का कुछ सूक्ष्म सा स्वरूप मैंने तुम्हें स्वरूप उच्चारण किया। यह कल इससे पूर्व शब्दों में, मैंने कुछ चर्चाएँ की थीं। आज भी उनका शेष भाग मैंने तुम्हें प्रगट कराया। वह भाग क्या था? मानो मैं यह उच्चारण कर रहा था कि याज्ञिक जो पुरुष है उसका संसार में कोई शत्रु नहीं होता और वह मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। मुनिवरों! देखो, उदान प्राण को जानता हुआ देखो, प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान ये सब प्राणों को नाग, धनञ्जय, कूर्म, कृकल और देवदत्त इन दसों प्राणों को एक सूत्र में ला करके और मन की इसमें पुट लगा करके जब एक सूत्र में हो करके दोनों गति करते हैं और आत्म चेतना जो ज्ञानमय है। परन्तु उनके ऊपर विश्राम करता हुआ, जब नासिका के द्वारा प्राण के द्वारा यह गमन करता है और मन से गुथा हुआ है, कामना से गुथा हुआ है, तो संसार के गर्भ को पृथ्वी के गर्भ को भी जानता है। क्योंकि इस पृथ्वी में भी मन और प्राण ही विभाजन कर रहे हैं। बाह्य जगत में जो लोक लोकान्तर विभक्त होते दृष्टिपात करते हैं यह भी मन और प्राण की अव्याहत क्रिया है। परन्तु देखो, क्रिया को जब तुम मानवीय जगत में जान लोगे तो बाह्य जगत भी तुम्हारे समीप आ जाएगा। बाह्य और आन्तरिक जगत दोनों का मिलान करना गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा है। आह्वनीय नाम की अग्नि की पूजा है। और दक्षिणाय अग्नि की पूजा है। इन अग्नियों की पूजा करने वाला, इनमें जो तरंगें उत्पन्न होती हैं उनको जानता हुआ जिन तरंगों में यह सूक्ष्म शरीर मानो उदान प्राण के साथ में गति करता है, उसमें अग्नियों को जानने वाला उनको जान लेता है और जब उनको जान करके सूक्ष्म शरीर को त्याग करके जब कारण लिंग में यह आत्मा प्रवेश करता है। वह ईश्वर का एक मोक्ष का द्वार कहलाता है। मन प्राण को एक सूत्र में लाना, इनका विभाजन करना संसार है, इनको एक सूत्र में लाना, अनेकता को एकता में प्रवेश करके परमात्मा के द्वार पर

जाना उसको मोक्ष कहते हैं।

(पुस्तक से) आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है। हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम इस संसार से पार हो जाएंगे। क्योंकि पार होना हमारा कर्त्तव्य है। हमारे ऋषि मुनि इस पवित्र विद्या का परम्परा से अध्ययन करते रहे हैं। याज्ञिक पुरुष याग करते रहे हैं। आज जो मानव यज्ञमान बन करके अपने आहार और व्यवहार को शोधन नहीं कर पाता और वह मोक्ष और सन्तान की कल्पना करना चाहता है यह उसका मानवीय विज्ञान के ऊपर एक भयंकर आक्रमण हो जाता है। (शब्द ध्वनि से) आक्रमण किया जा रहा है। आज वह चाहता है कि मैं याग से मोक्ष को प्राप्त हो जाँऊ। परन्तु याग से मोक्ष उस काल में प्राप्त होता है, जैसे हम आहुति दे करके साकल्य भस्म कर रहे हैं, स्थूलता को भस्म करके हम उसका सूक्ष्म रूप बना करके शोधन कर रहे हैं, अन्तरिक्ष का शोधन कर रहे हैं इसी प्रकार मानो ज्ञान रुपी उच्च शिक्षा ले करके हम आन्तरिक जगत में भी जब हम स्थूल को सूक्ष्मता में ले जाते हैं। स्थूल क्या है? नाना प्रकार के जो अवगुण हैं, हमारा जो आहार और व्यवहार अशुद्ध हो गया है, स्थूल बन गया है, वह जो पाप का मूल बन गया है आज उसको हम ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा जैसे भौतिक अग्नि के द्वारा यह साकल्य समाप्त होता है और उसका सूक्ष्म स्वरूप बन जाता है। इसी प्रकार हे यज्ञमान! तेरा आहार और व्यवहार दोनों ही देखो, ज्ञान रूपी अग्नि में जब तक भस्म नहीं हो जाते तब तक तेरा कल्याण नहीं होता। जब मानव यज्ञ ही करता रहे, अग्नि को भी साक्षी करता रहे, प्रतिज्ञा भी करता रहे, संकल्प भी करता रहे और संकल्प उसके नष्ट भी होते रहें और वह मानव मोक्ष की कल्पना करे तो यह एक प्रकार का अशुद्ध व्यवहार है। मानो यह धर्म के ऊपर एक आक्रमण हो रहा है। यह परमात्मा की अमूल्य विद्या के ऊपर, वेद की विद्या के ऊपर आक्रमण होता चला जा रहा है।

हे मानव! परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में यह जगत रूपी संकल्प किया था कि इतने समय पर सूर्य उदय होगा और वह सूर्य क्या क्या कार्य करेगा, चन्द्रमा इतने समय पर उदय होगा और अपना कार्य करता रहेगा। अरे, परमात्मा का संकल्प यदि

अशुद्ध हो जाए तो यह संसार, संसार नहीं रहेगा। इसी प्रकार मानव का संकल्प है, मानव जब संकल्प करता है महानत्ता का और जब उसका यह संकल्प नष्ट हो जाए तो उसके जीवन में क्रान्तियाँ आ जाती हैं। उसके बाह्य जगत में भी अशुद्ध क्रान्तियाँ आ जाती हैं। मानो वह व्याकुल होता रहता है। वे देवता भी जिनके द्वारा उसने संकल्प किया, वे देवता रुद्र बन करके उस प्राणी को रुलाते रहते हैं। अशुद्धियों के द्वारा रुलाते हैं। पति पत्नी का संस्कार होता है। उसी संकल्प के द्वारा जीवन व्यतीत होता है। यदि दोनों का संकल्प समाप्त हो जाए तो जीवन में एक अशुद्ध क्रान्ति आ जाती है। गृह अस्त व्यस्त हो जाते हैं। ऐसे ही परमात्मा का और मानव जगत दोनों का समावेश करते हुए संकल्पवादी बनो। जीवन को ऊँचा बनाने का प्रयास करो। यह है आज का हमारा वाक्य, अब समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएँ मैं कल प्रगट कर सकूंगा। आज का यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। दिनांक 03 03 1976।

१५ 04 03 1976 पुष्प 27 मानव जीवन यज्ञमय

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। हमारा जो वैदिक साहित्य है अथवा वेद का जो मन्त्र है। (शब्द ध्वनि से) वह हमें नाना प्रकार की शिक्षा देता चला जा रहा है और नाना आभाओं में हमें परणित कर रहा है। परन्तु जब उसके ज्ञान और विज्ञान के ऊपर, हमारा अनुसन्धान होने लगता है, अथवा विचार विनिमय होने लगता है, तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा, अथवा उस परमपिता परमात्मा का अमूल्य ज्ञान और विज्ञान हमारे में प्रवेश कर रहा है, अथवा हमारे में वह भरण हो रहा है। जो उद्गार हम उच्चारण करने लगते हैं उस परमात्मा का विज्ञान और ज्ञान तो विचारने में आता ही नहीं। जब मानव उसको विचारने लगता है अथ्वा उसके विज्ञानमयी स्वरूप को विचार विनिमय करने लगता है, तो बेटा! ऐसा ऐसा प्रतीत होने लगता है

कि प्रकृति का जो एक एक कण है अथवा एक एक जो परमाणु है वह मानव को उद्गम बना रहा है।
मेरे प्यारे! जब ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में परणित होते हैं, हमारे ऋषि मुनियों जब ज्ञान और विज्ञान की उड़ान उड़ने लगे तो एक वेदमन्त्र उनके समीप आया यज्ञं गच्छप्रवे........ गछत् प्रभा, वचश्य ब्रहे गृहणाम अप्रहाः। वेद का यह मन्त्र जब स्मरण आया तो वेद के ऋषियों ने बेटा! यह विचारा कि यह जो मन्त्र तो हमें याग के लिए पुकार रहा है। यहाँ नाना प्रकार के याग होने चाहिए, क्योंकि यागों से ही यह संसार ऊँचा बनता है। यागों से मानव के शरीरों में उज्ज्वलता आती है, वायु मण्डल के विष को निगलने लगता है।
मेरे प्यारे! देखो, जब हम नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों के ऊपर विचार विनिमय करते हैं, तो यागों की सुगन्धियाँ रही हैं। यागों से वो भरण हो रहे हैं। मेरे प्यारे! प्रत्येक लोक लोकान्तरों में नाना जलाशय माने जाते हैं, समुद्रों की तरंगें वहाँ तरंगित हो रही हैं, यदि समुद्र की तरंगें नहीं होंगी, तो मेरे प्यारे! लोक लोकान्तर अपने आसन पर बेटा! वह क्रियाशील नहीं हो सकते। क्योंकि वह जो आपो है, जो जल है वह ऋत और सत् से गुथा हुआ है और वह ऋत और सत् से गुथा होने के नाते मेरे प्यारे! देखो, उसमें जो क्रिया हो रही है वह उसकी आभान्तर मानी जाती है। तो मेरे पुत्रों! इसके ऊपर जब हम चिन्तन प्रारम्भ करने लगे, इसका जो महान विज्ञान है, वह जब हमारे समीप आने लगा अथवा उसके ऊपर विचार विनिमय होने लगा तो ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान मेरे प्यारे! देखो, एक एक परमाणु में निहित हो जाता है, एक एक कण में ओत प्रोत हो रहा है।
तो आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा वेद का ऋषि हमें क्या आज्ञा दे रहा है। वेद का ऋषि, कह रहा है कि ब्रह्मणो व्रत्तं वृद्धी व्रताः देवस्यं ब्रहे कृतं अस्तुम् लोकाः। मेरे प्यारे! वेद का ऋषि ऊँची उड़ान उड़ता हुआ यह कह रहा है कि हम अपनी आभा में निहित होना चाहते हैं। परन्तु जब मस्तिष्क के ऊपर चिन्तन होने लगता है और प्रकाश का तारतम्य हो जाता है, तो मेरे प्यारे! मानव के जीवन में एक महानत्ता की स्थापना हो

जाती है। मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय कराते हुए कहा था हे मानव! आज यदि तू मोक्ष को जाना चाहता है, हे यज्ञमान! यदि तू याज्ञिक बनना चाहता है। तो तेरे जीवन में महान याग होने चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, जब नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करने वाला यज्ञमान भयंकर वनों में पहुंचा और यह विचारने लगा कि मुझे याग करना है, वृष्टि याग करना है, मुझे पुत्रेष्टि याग करना है, नाना प्रकार के यागों का विवरण जब उनके समीप आया, नाना गाथाएं उनके समीप आईं, वेद के मन्त्र को विचारा गया तो नाना प्रकार के याग उनके समीप आए। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने नाना प्रकार के यागों का वर्णन किया है। मैंने कई काल में तुम्हें यह निर्णय कराया, कि कहीं गो मेध याग हो रहा है, कहीं अश्वमेध याग हो रहा है, कहीं नर मेध याग हो रहा है, कहीं पुत्रेष्टि याग और नाना प्रकार के याग जैसे विष्णु याग, वाजपेयी याग, मेरे प्यारे! देखो, नाना प्रकार के यागों का वर्णन हमारे वैदिक साहित्य में, मन्त्र में बेटा! नाना विवरण आता रहता है।

आज मैं बेटा! अपने विचारों को बहुत गम्भीर क्षेत्र में नही ले जा रहा हूँ, तुम्हें केवल यह उच्चारण करने के लिए आये, नाना प्रकार के यागों को तो मानव पूर्ण करना चाहता है। तो वह पूर्ण किस प्रकार हो सकेंगे? इसके ऊपर आज हम सूक्ष्म सा वाक् प्रगट करना चाहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, जब हम याग की परम्परा को विचारने लगते हैं कि हमारे यहाँ नाना प्रकार के याग होने चाहिएं। परन्तु उन यागों में नाना प्रकार की आभाएं, यज्ञमान के समीप आनी प्रारम्भ हो जाती हैं। मेरे प्यारे! देखो, यज्ञमान यज्ञ के लिए समिधा और सुगन्ध के लिए वनस्पतियों साकल्य, सामग्री, चरू एकत्रित करने के लिए बेटा! भयंकर वनों में जाता है और वनों में जाता हुआ, वह नाना प्रकार का याग करने के लिए बेटा! वह नाना सुगन्धिदायक औषधियों को एकत्रित करता है। मुझे स्मरण आता रहता है, कि एक समय महर्षि पिप्पलाद मुनि महाराज और उनकी पत्नी सुरेखा शाण्डिल्य गौत्र में जिनका जन्म हुआ, जब मुनिवरों! देखो, उसका संस्कार हुआ तो संस्कार के पश्चात् देखो, उन्होंने सर्वप्रथम वह अपनी पत्नी से बोले कि हे देवी! हम याग करने के लिए आए हैं। हमें देव याग करना है, पितर याग करना है, दोनों यागों में हमें

सक्रिय होना है। उन दोनों यागों को हम उस काल में कर सकते हैं जब देव पूजा करें। देव पूजा करने के लिए हमें सामग्री चाहिए, साकल्य और चरू चाहिए। बेटा! उन्होंने नाना प्रकार की वनस्पतियाँ भयंकर वनों को गमन किया। यज्ञमान की कामना कर रहे हैं और यज्ञ करने के लिए नाना प्रकार की सामग्री को एकत्रित करने के लिए भयंकर वनों में गमन कर रहे हैं। मेरे प्यारे! वह नाना प्रकार के साकल्य एकत्रित किया, सामग्री और वह नाना प्रकार की, औषधियों को एकत्रित करके जब मुनिवरों! देखो, अपने गृह में प्रवेश किया और उस सामग्री से याग करने लगे, तो ऐसा कहा जाता है मुनिवरों! कि वह जो साकल्य था, वह उनका परिश्रम था, यज्ञमान का जो तप था, उस तप का परिणाम यह हुआ, कि जब याग हुआ तो याग होने के पश्चात् उनकी जो आन्तरिक स्थिति थी वह भी पूर्णता को प्राप्त हो गई। इसका परिणाम क्या हुआ इसका कि यज्ञमान कैसे हो, बेटा! यज्ञमान इतने निष्ठावादी हो वे केवल पति पत्नी का उनका सम्बन्ध केवल वह पुत्र याग करने वाले ही बनें। जब पुत्र याग उनके समीप रहता है तो वह देव पूजा भी करने के लिए तत्पर रहते हैं और देव पूजा करके वह बेटा! देवताओं को प्राप्त होते रहते हैं, वे स्वतः देवता बनते हैं।

बेटा! वे कैसे देवता बनते हैं? बेटा! मुझे एक गाथा स्मरण आ गई। एक समय बेटा! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आसन पर विराजमान थे। तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अरुणधती से बोले बारह वर्ष के संस्कार के पश्चात्। जब बारह वर्ष पति पत्नी को एक स्थली में बेटा! ब्रह्म विद्या को अध्ययन करते हो गए, और ब्रह्म उपाधि को प्राप्त कर लिया तो माता अरुणधती बारह वर्ष के पश्चात् एक समय रात्रि काल में बोली क्या प्रभु! हमारे यहाँ एक पितर याग भी तो होना चाहिए। क्योंकि पितर याग करना बहुत अनिवार्य है। महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले देवी! जैसी तुम्हारी कामना हो, परन्तु जैसे तुम पितर याग कर सकते हो वैसे करो। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा प्रभु! हम पन्द्रह वर्ष मानो संस्कारं ब्रहे हमारा दोनों की तपस्या चल रही है हम तप कर रहें हैं। परन्तु देखो, अब अब पितर याग होना चाहिए। उन्होंने कहा धन्य है देवी! तो ऋषि मुनि एक समय पितर याग करते हैं। जब दोनों पति पत्नी ने पितर याग किया तो पितर याग के

पश्चात् उनके गर्भ में जरायुज की स्थापना हो गई। मेरे प्यारे! देखो, माता अरुणधती उनके द्वारा कुछ समय के पश्चात् पुत्र का जन्म हो गया और पुत्र का जन्म हो करके माता अरुणधती से वशिष्ठ बोले कि हे देवी! हमारा यह पितर याग पूर्ण हो गया है। अब हमें देवता बनना है। हम देवता कैसे बनें? इसके ऊपर विचार विनिमय होना चाहिए। मेरे प्यारे! माता अरुणधती बोली कि भगवन! हम देवता अवश्य बनेंगे। मेरे प्यारे! देखो, वह कितना उज्ज्वल भाव होता है। पति पत्नी का वह कितना महान संकल्प है बेटा! दोनों संकल्पवादी बन गए और मुनिवरों! देखो, अपने बालक को शिक्षा दे रहे हैं, परन्तु वह देववत् के लिए ऊर्ध्वा गति को गमन कर रहे हैं। बेटा! पूर्णिमा का दिवस होता, तो चन्द्रमा को नाना कान्तियों से वह सोम रस का पान करते थे। माता अरुणधती अरुण मण्डल में गमन करने के लिए तत्पर हो गईं, वशिष्ठ वशिष्ठ मण्डल के लिए गमन करने लगे। मेरे पुत्रों! मुझे वह काल जब स्मरण आने लगता है परन्तु उनकी कैसी साधना थी, मैं उस साधना के सम्बन्ध में मेरे प्यारे! बारह वर्ष तक उन्होंने दुग्ध का पान नहीं किया। परन्तु वह पीपल का पंचांग पान करते थे। जाल का पंचांग पान करते थे, शमी का पंचांग पान करते थे, मेरे प्यारे! देखो, वह मानो पलास का पंचांग पान करते थे। नाना प्रकार की औषधियों को ले करके, वह मेरे प्यारे! देखो, नक्षत्रक नाम की औषधि को ले करके उसका पान करते थे। मेरे प्यारे! देखो, जब उनका पान करते मुनिवरों! बारह वर्ष हो गए पान करते करते, तो मुनिवरों! देखो, उनके मस्तिष्क में निर्मलता आ गई, पवित्रता आ गई। मुनिवरों! देखो, माता अरूणधती और वशिष्ठ दोनों महान तपस्वी बन करके बेटा! वह नाना लेखनियों का लेख किया, वे नाना विद्याओं में गति करने लगे। अपनी उड़ान को लोक लोकान्तरों में ले गए। एक लोक को दृष्टिपात करते हैं द्वितीय लोक उनके समीप आने लगा, जब द्वितीय लोक को जाना तो तृतीय लोक दृष्टिपात आने लगा। एक आकाश गंगा जानी तो द्वितीय आकाश गंगा दृष्टिपात आने लगी, मानो नाना आकाश गंगाएं दृष्टिपात आने लगीं। बेटा! उन्होंने अपने तप के द्वारा ब्रह्मचर्य को ऊर्ध्वा गति बनाया और औषधियों का वह नित्य प्रति याग करते थे। महाराजा इन्द्र ने उन्हें कामधेनु गऊ को प्रदान किया और जब उन्हें कामधेनु गऊ प्रदान हो गई

तो वह उसके दुग्ध का आहार करते थे, उसको पान करते थे। मेरे प्यारे! उन परमाणुओं की ऊर्ध्वा गति बनाते थे।
प्राण के द्वारा प्राण हमारे यहां एक प्रकार से मन और प्राण का संगम होता है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि हमारे यहाँ दो प्रकार के हमारे यहाँ प्राण और मन के द्वारा मन और प्राण दोनों का समन्वय होता है। एक तो मुनिवरों! देखो, साधना, दो प्रकार की साधना है। एक साधना तो यम और नियम के द्वारा है। यम और नियम तो दोनों ही दशा में अनिवार्य हैं। इनसे संकल्प बनते हैं, उनसे विचार बनते हैं। मेरे प्यारे! देखो, उन विचारों को ले करके वह मानव अपने में परणित होता है। परिणाम क्या क्या मानो ब्रह्म लोकं ब्रव्हे हृदय गच्छं व्रह्मी वृताः। तो वेद के दोनों जिज्ञासु बेटा! पति पत्नी अपने आसन पर विराजमान हो करके नाना प्रकार की औषधियों का पान करते रहे, उसके पश्चात् उनकी गति विज्ञान में होने लगी। उनकी गति बेटा! यम और नियम के द्वारा उन्होंने ब्रह्म की उपाधि को प्राप्त किया था। मेरे प्यारे! जब वह इस मन देखो, जितनी भी इन्द्रियों की प्रवृत्तियाँ हैं जो बिखरी हुई रहती हैं और वह अशुद्ध कार्यों में बिखरी हुई रहती हैं। मेरे प्यारे! मन उनके द्वारा उनमें प्रवेश करके प्रत्येक इन्द्रिय के विषयों को व्यापक बना दिया जाता है। जैसे मानो रूप, रस और गन्ध हैं मेरे प्यारे! देखो, इन सब इन्द्रियों के विषयों को इनको व्यापक बनाता है। कैसे बनाता है? मैं सूक्ष्म विद्या को मैं तुम्हें स्मरण करना चाहता हूँ।
मेरे प्यारे! जब मानव जब श्रोत्रों से सदैव सत्य ही सत्य वाक्यों को श्रवण करता है तो शब्द को कहाँ तक ले जाता है मानव, क्या यह शब्द कहाँ से आ गया। अब वह समाधि लगाता है। समाधि में परणित होता है अरे, यह शब्द कहाँ से आता है मेरे मुखारविन्द में जो शब्द का निर्माण हुआ, वह कैसे हुआ? तो वह शब्द के निर्माण के ऊपर विचार करता है। क्या मानो शब्द की रचना कहाँ से हुई? तालु से हुई, रसना से हुई, मानो देखो, दांतों से हुई, नस नाड़ियों के द्वारा हुई, वह शब्द कैसे बना? जब शब्द के ऊपर विचार विनिमय प्रारम्भ होता है वह शब्द का निर्माण होता है जब शब्द बन जाता है, उसका उद्गार मुनिवरों! व्यापक बन जाता है, वह शब्द मुनिवरों! देखो, तरंगों में तरंगित

हो जाता है। तरंगों में से आ करके व्यापक तरंगता में बाह्य जगत् में तरंगित हो गया। जब बाह्य जगत् में वह शब्द तरंगित हो जाता है तो जिज्ञासु विचारता है। इन मानो शब्दों का जो उद्गम ब्रव्हे होने के पश्चात् इसका सम्बन्ध तो अन्तरिक्ष से होता है और अन्तरिक्ष का सम्बन्ध दिशाओं से माना गया है। मुनिवरों! देखो, दिशाओं से शब्द आता है अन्तरिक्ष में जाता है, दिशाओं में आता है, दिशाओं से द्यौ लोक को प्रवेश करता है। द्यौ लोक में वही शब्द गमन करता है। मेरे प्यारे! वह वह चित्र के साथ में गमन करता है। तरंगों के साथ में गमन करता है। वह मुनिवरों! देखो, अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो जाता है।

परिणाम क्या मुनिवरों! देखो, वही शब्द है। अब उस शब्द के ऊपर चिन्तन करता है। शब्द का व्यापक रूप बनाता है। मानो उसका प्रसारण करता है। उसको कहाँ तक समाधि लगाता है, जिसे हम सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। जहाँ उनका ज्ञान हो रहा है। मानो नाना प्रकार की वनस्पतियों में अपने को भरण कर देता है। मेरे प्यारे! नाना प्रकार की औषधियों में, भिन्न भिन्न प्रकार की जो सुगन्ध आ रही है। वह सुगन्ध को मुनिवरों! देखो, घ्राण के द्वारा अपने में ग्रहण कर रही है, वे नाना सुगन्धि आ रही हैं। कहीं सोम का पान किया जा रहा है। सोम लताएं औषधि आ रही हैं, और नाना प्रकार की औषध आ करके मेरे प्यारे! देखो, वह नाना प्रकार की प्रभु की महिमा की गाथा का वर्णन कर रही हैं। मुनिवरों! देखो, वहीं औषध उन औषधियों के द्वारा उनके रसों का ज्ञान, उनका औषधियों में अप्रहा होने लगता है। उनकी सुगन्ध को जाना जाता है। सुगन्ध गन्ध के द्वारा वही रस बन करके रसना के द्वार पर जाता है और रसना उस रस को कहाँ तक ले जाती है। बेटा! वही रस है जो अन्न में प्राप्त हो रहा था, वही रस है जो जल में प्राप्त हो रहा था, उन दोनों जलों को दोनों रसों का मिश्रण हो जाता है, मेरे प्यारे! देखो, उसका सम्बन्ध चन्द्रमा से हो जाता है, चन्द्रमा से रसों का स्वादन आता है। नाना रसों में मानो जल में जो सोम की वृष्टि हो रही है और वनस्पतियों में जो सोम की वृष्टि हो रही है मानो देखो, वही रस है। मुनिवरों! जो मानव रस का स्वादन करता है, स्वादन करता हुआ उन रसों का सम्बन्ध चन्द्रमा से हो जाता है और

चन्द्रमा में उन रसों के ऊपर रसिक अनुसन्धान करता है। अनुसन्धान करता हुआ मुनिवरों! देखो, इन्द्रियों की व्यापकता में परणित हो जाता है। उसमें समाधिमय हो जाता है।

इन्द्रियों में समाधिष्ट हो करके विचारता है यह गन्ध कहाँ से आ गया? मानो जो यह गन्ध अप्रहा मुनिवरों! देखो, यही रस चन्द्रमा में है और चन्द्रमा में रस कहाँ से आया? सूर्य से आया है। सूर्य में रस कहाँ से आता है? ऋत और सत से आता है। मेरे प्यारे! देखो, इन्द्रियों का जो विषय है उसकी अनन्तता में परणित हो करके वह जो परमात्मा रसिक है, जो आनन्द का भण्डार है, जो मेरे प्यारे! देखो, अन्न कोषों में से परणित हो करके वह मानो देखो, आनन्दमय में प्रवेश करता है। अरे, वही तो आनन्दमय कहलाता है। रसों का हम सोम बना लेते हैं। सोम बना करके प्राण को उसे अर्पित कर देते हैं। मन और प्राण मुनिवरों! देखो, दोनों व्यापक रूप है इसमें विभक्त शक्ति है। इसमें मानो देखो, विभाजन करने वाली शक्ति है और विभक्त होने वाली मन और प्राण के द्वारा ही इस संसार में संचारित हो रही है चाहे वह यह पृथ्वी मण्डल है चाहे सूर्य मण्डल है, चन्द्र मण्डल क्यों न हो निहारिका मण्डल क्यों न हो जेठाय नक्षत्र बृहस्पति क्यों न हो, परन्तु देखो, उसी की आभा में आभायित होने वाला यह जगत है।

तो मेरे प्यारे! देखो, वह जिज्ञासु इन्द्रियों को विषयों को व्यापक बनाता है। जब नेत्रों के द्वारा रूप को दृष्टिपात करता है एक रूप तो वह होता है जो मानो संकीर्णता में जाकर संकीर्णता को त्याग देता है। वह विचारता है कि मैं सुन्दरी के दर्शन कर रहा हूँ, यह सुन्दरी कौन है? इस सुन्दरी का निर्माण क्या है? इस सुन्दरी का मानो देखो, रूप क्या है? मेरे प्यारे! इसके रस में रूप में परणित होता है। वह परणित होता हुआ यह विचारता है कि जिस सुन्दरी के मैं दर्शन कर रहा हूँ, अरे, यह कैसे सुन्दरी है? यदि उसमें वह मानव अपनाने में परणित होता है तो पाप का मूलक बनता है। यदि कोई मानव यह अपनाता है कि यह जो सुन्दरता है यह जो सुन्दरी है यह तो परमात्मा की प्रतिभा है, अरे, परमात्मा का ज्ञान हो रहा है, यह सुन्दरता कहाँ से आई? यदि मानो देखो, ऊपर ले भाग की और उसकी चमड़ी को अपने से दूरी कर देते हैं, तो

मुनिवरों! वह मानो देखो, उसका रूप समाप्त हो गया। अरे, रूप यह तो न रहा। अब रूप क्या है?

मेरे पुत्रों! वह निर्माण वेत्ता के ऊपर जाता है। माता के गर्भ में सुन्दरी का निर्माण हुआ। वहाँ इसकी देखो, आकृतियों का निर्माण हुआ। जिस आकृति वाला रजस्तव और वीर्यतव माता के गर्भ स्थल में प्रवेश हुआ, मानो देखो, वही निर्माण है। उसके पश्चात् और ऊर्ध्वा में जाता है। अरे, इस सुन्दरता का निर्माण किसने किया? प्रभु ने किया है जब प्रभु में चले जाते हैं तो बेटा! वह धर्म बन जाता है। अरे, प्रत्येक इन्द्रिय का जो धर्म है वह व्यापकवाद है। व्यापकता का नाम ही धर्म माना गया है। अब तो मेरे पुत्रों! व्यापकतवाद आ गया। अब मानव अपनी इन्द्रियों को विस्तार में परणित करता है और विचारता है कि अब मुझे मानो देखो, सोम को पान करना है। सोम के क्षेत्र में जाना है। अब मुनिवरों! देखो, इन्द्रियों के द्वारा याग करता है कैसे याग कर रहा है? मेरे प्यारे! इन्द्रियों के विषयों को समेट लेता है। इन्द्रियों के विषय को समेट करके इस मानो देखो, यह जो समाधि है यह सम्प्रज्ञात बन गई क्या जो प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को विचार रहा है। प्रत्येक इन्द्रियों की वनस्पतियों को विचार रहा है। और विचार विनिमय करता हुआ अब मेरे पुत्रों! देखो, इनका आकुञ्चन करता है। अपने में समेटता है। मुनिवरों! देखो, इन्द्रियों के विषय को समेट करके उसका एक साकल्य बन जाता है। जैसे यज्ञमान नाना प्रकार की सामग्री ला करके, नाना साकल्य भिन्न भिन्न हैं, उन्हें मिलान करके सामग्री बन जाती है और सामग्री बन करके मुनिवरों! वह बाह्य याग करता है। अग्न्याधान करता है। और जब वह अग्न्याधान करता है स्वाहा कहता है। तो मेरे प्यारे! वह देव पूजा हो रही है। वह देव याग हो रहा है। वह देवता बनाने का एक महान स्वादन है। परन्तु देखो, जब इन्द्रियों के साकल्य को, इन्द्रियों के विषयों को सामग्री बना करके जिज्ञासु मुनिवरों! देखो, जब वह हवि प्रदान करता है और कण कण में प्रभु! को दृष्टिपात करता हुआ, जब मेरे प्यारे! वह आन्तरिक याग करता है, जब आन्तरिक याग करता है, जब स्वाहा कहता है तो वहाँ मुनिवरों! देखो, मन और प्राण दोनों एक सूत्र में परणित हो जाते हैं। मुनिवरों! देखो, उसको हम ब्रह्म समाधि

कहते हैं। उसको ब्रह्म में मानो देखो, ब्रह्म को अपने में दृष्टिपात करता हुआ संसार के कण कण को जान करके जब मुनिवरों! देखो, जब वह अपने में परमात्मा को दृष्टिपात करता है। परमात्मा की आभा को जानता है तो मेरे पुत्रों! देखो, ऐसा मुझे स्मरण है क्या वह मानव मुनिवरों! देखो, ब्रह्म समाधि में तत्पर हो जाता है। ब्रह्म को अपने में समेट लेता है। ब्रह्म को समेट करके ब्रह्म के ज्ञान और विज्ञान को समेट करके अपने में अनुभूति करने लगता है। मेरे प्यारे! यह बाह्य और आन्तरिक जगत् दोनों की चर्चाएँ जब मानव जान लेता है उसके पश्चात् मेरे प्यारे! देखो, वह प्राणी प्रकाशमय हो जाता है। आनन्दमय हो जाता है। वह सौम्य बन जाता है, विचित्र बन जाता है। महान बन करके बेटा! माता अरुणधती की चर्चा कर रहा था।

मुझे वह काल स्मरण है जब माता अरुणधती और वशिष्ठ दोनों बारह बारह वर्ष तक बेटा! पंचांगों का पान करते थे तो ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वागति बना करके संसार को समेट करके बेटा! उसका याग करते थे। और याग करके मुनिवरों! देखो, उसको अपने में संसार को अपने में दृष्टिपात करके, अपने में आकुञ्चन करके बेटा! अपने में ही देखो, वह संसार को दृष्टिपात करने लगता है। विचार विनिमय क्या, परन्तु यह साधना कैसे होती है? मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! नाना औषधियाँ इस प्रकार की होती हैं जिनका हम आसन बनाते हैं और जब आसन पर विराजमान कर देते हैं तो मेरे प्यारे! देखो, उस आसन की जो सुगन्धि है, उस आसन का जो प्रभाव है वह साधक के लिए ऐसा होता है क्या मानो उन औषधियों से उसके हृदय में, शरीर में विद्युत आने लगती है और वह विद्युत द्यौ लोक का ज्ञान करा देती है मेरे प्यारे! वह तीन प्रकार की अग्नि क्या? वह जो सहस्रों प्रकार की अग्नि की धारा रमण कर रही है। यह जो अग्नि लोक में है मानो देखो, परलोक में है द्यौ लोक में यह जो अग्नि प्रवाह से गति कर रही है, मानो अन्तरिक्ष में भरण कर रही है। अरे, इस अग्नियों की पूजा करने से, अग्नियों का साकल्य बना करके वैज्ञानिक यन्त्र बनाता है। यन्त्रों का साकल्य बना करके एक आध्यात्मिकवेत्ता मेघावी को प्राप्त कर रहा है। और वह मानो बुद्धि, मेधा ऋतम्भरा को

जान करके प्रज्ञावी क्षेत्र में जा करके वह परमात्मा के दर्शन करता है।
तो मेरे पुत्रों! विचार विनिमय क्या आज मैं विशेष चर्चा नहीं प्रगट करने आया हूँ मैं अपने विचारों को गम्भीर नहीं बनाना चाहता हूँ मेरे प्यारे! महानन्द जी भी यह इनकी इच्छा यह बलवती बन रही है क्या मैं भी अपने दो शब्दों का प्रतिपादन करूं। परन्तु मेरे प्यारे! महानन्द जी मानो देखो, इनका विषय कल हम इनको समय प्रदान कर सकेंगे, आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है, विचार विनिमय क्या आज हमारे इन वाक्यों का मेरे प्यारे! आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है। वेद का आचार्य क्या कहता है, वेद का ऋषि वशिष्ठ कहता है कि मानव को साधना की ब्रह्मचर्य को ध्रुवा से ऊर्ध्वा में ले जाना है। और ऊर्ध्वा में किस काल में जब मनस्तत्व, प्राणत्व, मेरे प्यारे! संकल्प और संकल्प के साथ में इन्द्रियों के विषयों को उनमें अर्पित कर दोगे, उससे संकल्प बनेगा। संकल्प से मन और प्राण दोनों का समन्वय होगा और समन्वय हो करके मानव का उत्थान होना प्रारम्भ हो जाता है।
यह मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा प्रगट नही करूंगा, विचार विनिमय हमारा क्या, आज मैं परमपिता परमात्मा की आराधना करता हुआ देव की महिमा का गुणगान गाता हुआ यह उच्चारण करने आया हूँ। महानन्द जी की बारम्बार प्रेरणा होती रहती है। उस प्रेरणा स्वरूप में जाते हुए हम इन वाक्यों का प्रतिपादन करते हैं। यह अपना मनतव्य जो देते चले जा रहे हैं। हमारा मन्तव्य वास्तव में विशेष नहीं है। जो ऋषि मुनियों का, वेद का मन्तव्य है वेद का ऋषि कहता है उसी को हम उच्चारण करते चले जाते हैं। मेरे प्यारे! वह निहारिकाओं के द्वारा, क्या मुनिवरों! जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ता परमाणु का समूह लेकर के यन्त्र का निर्माण करता है इसी प्रकार मन में प्राणों का जब यन्त्र बन जाता है, आत्मा विराजमान हो करके बेटा! निहारिकाओं में प्रवेश करता है। मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें एक वाक् वर्णन करते हुए कहा था, बहुत समय की वार्त्ता है क्या मानव परमात्मा के संरक्षण में रहता है परन्तु मानव की शक्ति, आत्मा की शक्ति एक महान है, परन्तु वह ऐसी महान है जब मानव वेद का ऋषि यह कहता है कि तीन पदार्थ अनादि माने जाते हैं। आत्मा, परमात्मा और प्रकृति, तो प्रकृति के

जितने भी रचनात्मक कार्य हैं उनको यह आत्मा जानने लगता है। परन्तु उसमें यौगिकता की आवश्यकता है। परमात्मा मेरे प्यारे! क्या जाल ब्रहे कृता मेरे पुत्रों! देखो, यह तुम्हें यह निर्णय करा देता हूँ क्या यह जो प्रकृति है। यह सत है। और जीव आत्मा सत् चित्त माना जाता है। यह चित्तों का निर्माण कर सकता है। जब सत् चित्त आनन्द मानो सत भी है और चित्त का निर्माण करता है मानो देखो, इस प्रकृति के चित्त को जानता है। और प्रकृति के जितने जो परमाणु हैं उन परमाणुओं को मानो जैसे एक एक शब्द में चित्र अन्तरिक्ष में गति करता है। उस प्राणी का यदि वही प्राणी योगी बन जाए तो वे जो चित्र अन्तरिक्ष में गति कर रहे हैं उस मानव के मेरे पुत्रों! देखो, वह चित्रों को अपने में धारण कर सकता है। उन चित्रों को वह ले करके मानो देखो, वह योग की प्रकृति में योग के आँगन में ला सकता है परन्तु वह स्थूल और कारण शरीरों के बन्धन में जो यह जीवात्मा उपराम हो जाता है। उपराम हो करके इनको धारण करना इनको त्यागना इनसे इन परमाणुओं को एकत्रित करना उन चित्रों को लेना उस योगी के लिए बेटा! सहज हो जाता है।

आज मैं योग के क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ क्योंकि प्रकृति को जितना यह रचना का कार्य, सब प्रकृति का है प्राणतव उसमें गति कर रहा है तो बेटा! मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ, मैं व्याख्याता नहीं हूँ, मैं तो केवल संक्षिप्त परिचय देने चला आता हूँ और परिचय देने का अभिप्रायः हमारा क्या, मैं यह परिचय देने आया हूँ और यह परिचय चल रहा है, माता अरूणधती और वशिष्ठ मुनि महाराज मानो देखो, अपने चित्त के मण्डल को, क्या भौतिक यन्त्र से बेटा! वह लोकों की उड़ान उड़ रहे हैं और चित्त से बेटा! लोकों की उड़ान उड़ रहे है परन्तु देखो, यह सब कुछ कैसे जाना जाता है पुत्रों! जब तक मानव का आहार और व्यवहार और आहार के साथ में उसका तप और तप के साथ में मुनिवरों! देखो, उसकी निष्ठा और निष्ठा के साथ में ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा गति प्राण और मन के द्वारा जब ब्रह्मरन्ध्र में ले जाई जाती है। अन्तरिक्ष में पंहुचा दी जाती है उसे जैसे ध्रुवा में ले जाते हैं ध्रुवा में पुत्र का निर्माण होता है ऊर्ध्वा में देवता बन करके देवतव को प्राप्त हो जाता है प्राणी, तो मेरे पुत्रों! आज मैं व्याख्या

देने नहीं आया हूँ मैं पुत्रों! विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ तुम्हें यह वाक् उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए बेटा! मैं वशिष्ठ और माता अरूणधती की चर्चा कर रहा था उनके द्वारा उनके गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ जिस पुत्र का नाम मानो सोमग्रहीतक ऋषि कहा जाता था मेरे प्यारे! वशिष्ठ मुनि महाराज एक पुत्र व्रता कहलाए जाते थे परन्तु वह इसके पश्चात देवता बन गएं तो पति पत्नी भी विवेचन करके देवता बनते है परन्तु देखो, उनका वह पितर याग करके भी याग ही उसको स्वीकार करोगे तो बेटा! देवता बन सकते हो और यदि उसको ब्रह्मचर्य को परमाणु वाद को भोग विलास का साधन बना लेते हैं, तो मुनिवरों! देखो, यही उसको मनुष्य बना देता है मनुष्य से दैत्य बना देता है और दैत्य से ही पिशाच बन जाते है और नाना प्रकार की योंनियों में मेरे प्यारे! वह जन्म लेने लगते हैं परन्तु यदि मानव देवता बन करके ब्रह्मचर्य की गति को ऊर्ध्वा बनाता है, ब्रह्मरन्ध्र में ले जाता है वह देवता बनता है वह देवतव को प्राप्त होता है। मेरे प्यारे! देखो, नाना प्रकार के याग कर्म करने वाला, प्राणी देवता बनता है परन्तु यदि उसको हम स्वीकार करें कि यह देवतव ही बनना है, मानवीयता को धारण करना है। तो आओं मेरे पुत्रों! मैं आज विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ, मैं व्याख्यता नहीं हूँ पुत्रों! मैं केवल तुम्हें संक्षिप्त परिचय देने चला आया हूँ, और परिचय क्या है कि माता अरूणधती और वशिष्ठ मुनि महाराज दोनों बेटा! ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होते रहें हैं। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या, हमारा हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है।

हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है? वेद के एक एक शब्द को जब विचारते हैं तो उसमें बेटा! देखो, सर्वत्र विज्ञान दृष्टिपात आता है। एक एक अणुमात्र में मेरे प्यारे! देखो, संसार के चित्र हो रहे हैं। यह सर्वत्र सृष्टि एक एक अणु में दृष्टिपात आती है। मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्म में समाधिस्थ होता हुआ मानव मानो सम्प्रज्ञात में जाता हुआ, तेजोमय में परणित करता हुआ देवता बनता है तो वह मानव सौभाग्यशाली है संसार में, वह देवता

कहलाता है। हमें देवता बनना है।
आओ मेरे प्यारे! आज हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है कि हम संसार को ऊँचा बनाने में तत्पर रहें। संसार की आभाओं में हम रमण करना चाहते हैं।
आओ मुनिवरों! देखो, मैं विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ तुम्हें यह उच्चारण करने आया हूँ जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा प्रवेश करते तो वेदों का अध्ययन करते थे। तो वेद के अध्ययन के समय में तो मेरे प्यारे! आचार्य नाना प्रकार की साधना कराते। वे मन और प्राण की साधना कराते, आहार की साधना कराते। तो मेरे प्यारे! देखो, आहार क्या वृक्षों का पांचाग होता। और मुनिवरों! देखो, प्राण के द्वारा, मन के द्वारा प्राणायाम होता। संकल्प के साथ में होता, उस प्राणायाम के द्वारा मानो गो घृत और गो दुग्ध की स्थापना कराई जाती। मानो देखो, शरीर उससे महान ब्रह्मचर्य की गति को ऊर्ध्वा बनाना ही योगी बनना है और देवता बनना है। देवता कौन होते हैं? जिनकी गति ऊर्ध्वा होती है और गति क्या है? ब्रह्मचर्य की गति। वही गति है जो विचारों की गति। विचारों का, ब्रह्मचर्य का, दोनों का सम्बन्ध है। जितना मानव के विचारों में महानता रहेगी, विचारों में यौगिकता रहेगी, उतना ब्रह्मचर्य का सदुपयोग होता रहेगा। तो मेरे प्यारे! देखो, उससे मानव सुन्दर बनता है।
मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देता हुए कहा था हे माँ! तू वास्तव में ममतामयी है। जब माता पिता इसको केवल याग स्वीकार करते हैं, अरे, वही तो पुत्र याग में जाते हैं, ऋषि मुनियों के द्वारा वह शिक्षार्थी कहलाते हैं। मेरे प्यारे! देखो, आचार्य अपने गृह में याग कर रहा है। आचार्य कहता है ब्रह्मचारी! अपने को मुझे अर्पित कर, मेरे प्यारे! वह नाना शिक्षा देकर याग कर रहा है। तो नाना प्रकार के यागों का वर्णन वैदिक साहित्य में आता रहता है। मैंने नाना यागों की चर्चाएँ की हैं और नाना प्रकार के यागों की चर्चाएँ करने वाले ऋषि मेरे प्यारे! अपनतव को प्राप्त हो जाते हैं, महानत्ता में परणित हो जाते हैं।
तो आओ बेटा! मैं विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ आज तुम्हें मैं यह उच्चारण करने आया हूँ यह उच्चारण करना हमारा कर्तव्य है कि हमारा मन्तव्य क्या है संसार में

आने का? हमारा मन्तव्य है कि हम अपने जीवन को महान बनाएं, साधक बनाएं, परन्तु साधना करके मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं। क्योंकि जब हमारी इस प्रकार की मानो साधना होगी उस साधना से देखो, द्यौ लोक को प्राप्त होंगे, द्यौ लोकों में अन्तरिक्ष लोकों में और उससे देव लोकों में और देव लोकों से ब्रह्म लोकों में और ब्रह्म लोकों से मेरे प्यारे! प्रभु! के क्षेत्र में चले जाते हैं। यह नाना प्रकार के मण्डल हैं, बेटा! मैं इन मण्डलों में रमण करना हमारा कर्त्तव्य है। हमारे यहाँ मण्डल भी दो प्रकार के हैं एक आध्यात्मिक मण्डल है एक भौतिक मण्डल है। यह जो नाना प्रकार के लोक लोकान्तर है। ये भौतिक मण्डल कहलाए जाते हैं। इनमें जाना यन्त्रों के द्वारा है और अनुभव करना है तो वेद के द्वारा अनुभव करना है। मानो देखो, इसको अपने में स्वीकार करना, उसको अपने चित्त के मण्डल में जब यह दृष्टिपात आने लगते हैं, योगी को, तो बेटा! उसको मानो ब्रह्मलोक कहते हैं वह अपने मानो देखो, हमारा और जब यह नाना मण्डल चित्त में विराजमान हो करके मानो देखो, यह अपने में समाहित होते दृष्टिपात आते हैं मानो अपने में वही हमारी परिक्रमा करने लगते हैं तो जानो कि हम स्वतः ही मानो उस महान आनन्द में रमण कर गए। वह जो ब्रह्म का आनन्द है मानो देखो, परमात्मा के आँगन में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड गति कर रहा है, इसी प्रकार मेरे प्यारे! देखो, यह चित्त का मण्डल है। चित्त के मण्डल में जो लोक लोकान्तर हैं, निहारिकाएं हैं, आकाश गंगाएं हैं, वेद जब चित्त में दृष्टिपात आने लगती हैं योगी को, उनकी धाराएं आनी प्रारम्भ हो जाती हैं मुनिवरों! देखो, और वह ब्रह्म लोक में जब वह परिक्रमा करने लगती हैं। अपने अपने आसन पर तो बेटा! वह परमात्मा का मण्डल है, परमात्मा का लोक है। यह बाह्य और आन्तरिक जगत दोनों का समावेश करना है। उसको अपने में समाधिस्थ करना है।

आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। तुम्हें यह विचार देने को आया हूँ आज मैं तुम्हें अपना यह मन्तव्य देने के लिए आया हूँ परन्तु साधना ऊँची होनी चाहिए। साधना के क्षेत्र में जब तक नहीं जाया जाता तब तक हम योगास्थल को नहीं जान सकते। मेरे पुत्रों! इस मानव शरीर में क्या है? इस मानव शरीर में नाना प्रकार की

आभाएं और निहारिका विराजमान हैं। तो आओ मेरे पुत्रों! आज का हमारा विचार विनिमय क्या, कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए यागों में परणित होते चले जाएं। याग के द्वारा हमारा संकल्प हो, याग के ही साथ साथ हमारा चित्रण ऊँचा होना चाहिए। मेरे पुत्रों! देखो, राष्ट्र और समाज का कल्याण करना है, मानवता को ऊँचा बनाना है, तो आज हमारी मानवता उस काल में ऊँची बनती है। जब मानव का विचार विचित्र बन करके इस क्षेत्र से पार हो जाता है यह है बेटा! आज का वाक्! अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएँ मैं कल प्रगट करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त। कल मुझे समय मिलेगा कल कुछ सूक्ष्म सी चर्चा करेंगे कल मेरे प्यारे! महानन्द जी भी अपना सूक्ष्म विचार प्रगट करेंगे। आज का यह विचार समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। अच्छा भगवन्! आनन्द मंगलं भवति बरनावा यज्ञमण्डप पर दोपहर को 3 बजे।

१६ 02 05 1976 पुष्प 27 मन और प्राण

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रातः वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह परम पिता परमात्मा ज्ञान और विज्ञान में सदैव प्रतिष्ठित रहता है। जब मानव विज्ञान के युग में प्रवेश करता है तो वह उस प्रभु की कला कृति का विचार विनिमय प्रारम्भ करने लगता है। वैदिक साहित्य में परमपिता परमात्मा को विश्वकर्मा कहा है उसकी रचना मानव को दृष्टिपात आने लगती है। क्योंकि मानव के अन्तःकरण में ही नाना संस्कार विराजमान हैं और उसी आधार पर यह मानव नाना रूपी में दृष्टिपात करता है। उस परमपिता परमात्मा को वैदिक साहित्य में कहीं वसुन्धरा कहा है। क्योंकि मानव इसी में वशीभूत रहता है। नाना प्रकार की आभा को प्राप्त करता हुआ, उसी के अन्तर्गत उसके गर्भ में परणित होता रहता है। क्योंकि यदि उसकी मूल चेतना समाप्त हो जाए तो मानव मानव नहीं रहेगा, यह संसार

संसार नहीं रह पाता। ऐसा अनुपम जगत है कि उस अनुपम जगत के लिए मानव अपने जीवन को बहुत ऊर्ध्व में ले जाना चाहता है। वह ऊर्ध्वतव को प्राप्त नहीं हो पाता। परन्तु जब हम गम्भीरता से विचार विनिमय प्रारम्भ करते हैं तो वह देव भी वसुन्धरा बन करके इस संसार को धारण कर रहा है।

हे प्रभु! तू कैसा विश्वकर्मा है? आपकी किसी अनुपमता है? मानव जब तेरे विषय में विचारने लगता है तो मौन हो जाता है, दार्शनिक मुग्ध हो जाता है, वैज्ञानिक परमाणुओं में ओत प्रोत हो करके वह मौन हो जाता है। हे देव! तू कैसा विचित्र है, तेरी कैसी विचित्र रचना है जो मानव जाना नहीं पाता। जब मानव तेरे वशीभूत, तेरी महति में परणित हो जाता है वह संसार को आभा में इसको उच्चारण करने में असमर्थ हो जाता है। मेरे प्यारे! राज ऋषियों ने नाना प्रकार की वार्त्ताएं प्रकट की हैं, नाना प्रकार का अनुसंधान किया।

आज मैं तुम्हें नाना ऋषियों की विज्ञानशाला में अथवा नाना दार्शनिकों में तुम्हें ले जाना चाहूँगा। जहाँ मानव नाना प्रकार का विचार विनिमय करता रहा है। नाना प्रकार की अनुसंधानशालाएं, नाना प्रकार की विज्ञानशालाएं, शालाओं में रमण करने वाला प्राणी अपने को ऊर्ध्व में ले जाना चाहता है। परन्तु हमने इससे पूर्व काल में प्रकट करते हुए कहा कि यह जो परमात्मा का अनुपम क्षेत्र है इसमें नाना प्रकार को उड़ान उड़ी जाती है। नाना प्रकार के उड़ान उड़ने वाले हुए हैं। जिनकी उड़ान बहुत ही विचित्र रही है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में महर्षि भृगु जी साम गान गाते रहते थे। ऋग् का साम से मिलान करते रहते थे। ऋग् का साम से मिलाप होता है तो मानव के जीवन की सन्धिपात हो जाती है। जैसे रात्रि और दिवस दोनों के मिलान का नाम सन्धि कहा जाता है। जिस प्रकार वही सन्धि जब साम गान गाता है, सामवेद का मिलान कर लेता है जैसे मानव वेद के मन्त्र का उच्चारण करता है, इस वेद का ज्ञाता है।

ओ३म् प्रथम आता है। यह जो ओ३म् है यह कैसा अनुपम है? जैसे माला में धागा होता है अथवा सूत्र होता है इस सूत्र में प्रत्येक मनका पिरोया हुआ है, मनके पिरोने

के पश्चात् यह माला बन जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक वेद की ऋचा उस ओ३म् रूपी धागे में पिरोई हुई है। यदि हम ओ३म् रूपी धागे को वेद की ऋचा में से पृथक् कर देते हैं तो उसका जो विज्ञान है वह एक सूत्र में नहीं रह सकता।

मुनिवरों! विज्ञान को भी सूत्र में लाना है और विज्ञान का सूत्र क्या है? मैंने बहुत पुरातन काल में वाक्य प्रकट करते हुए कहा था कि यह जो ओ३म् रूपी धागा है, सूत्र है इसमें प्रत्येक वेद की ऋचा पिरोई हुई है।

एक वेद का मन्त्र है उसका दो प्रकार का अर्थ माना जाता है एक को हमारे यहाँ रूढ़ि कहते हैं और द्वितीय को यौगिक कहते हैं। रूढ़ि उसे कहते हैं जिसमें मानवीय साधारण पद्धति होता है। मानव का विचार, मानव का रहन सहन, मानव को प्रतिभा उसकी रूढ़ि कहते हैं। वेद से उसका सम्बन्ध रहता है।

परन्तु यौगिक उसे कहा जाता है जहाँ प्राणत्व की क्रिया क्या है? ममसतत्व की क्या है? यह मन क्या कार्य करता है? और प्राण क्या कार्य करता है? मेरे प्यारे! प्राण चित्र बन जाता है। जैसे रूढ़ि में ओ३म् को हम एक चित्र बना लेते हैं, जब यौगिक क्षेत्र में जाएंगे तो प्राण को मानो उसी प्रकार का सूत्र स्वीकार कर लेंगे।

यह जो मनस्तत्व है जिसको मन कहते हैं यह मन कैसा विचित्र है कि यह संसार का विभाजन करता रहता है। जितना भी विभाजनवाद तुम्हें दृष्टिपात हो रहा है, यह लोक लोकान्तरों के रूप में क्यों न हो, पृथ्वी के गर्भ में रसों के रूप में क्यों न हो, माता के गर्भ स्थल में बेटा! ? पुत्र पुत्री के रूप में क्यों न हो यह विभाजन मनस्तत्व किया करता है। इसको मन ही कहा जाता है। प्राण के द्वारा इसका विभाजन होता रहता है। प्राण नाना रूपों में विराजमान रहता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में ऋषि मुनियों की सभा में इन वाक्यों को स्मरण किया था। एक समय महर्षि सोमभानु मुनि महाराज के यहाँ एक दार्शनिकों का एक समूह विराजमान था। उन ब्रह्मवेत्ताओं में यह चर्चा होने लगी थी कि मोक्ष किसे कहा जाता है? हम मोक्ष को जानना चाहते हैं। महर्षि भृगु ने इस सम्बन्ध में नाना प्रकार की अपनी चर्चाएं प्रकट कीं। परन्तु उन्होंने मोक्ष का जो मूल कारण माना है वह मनस्तत्व और

प्राणत्व को एक सूत्र में लाने का माना है। अब ये एक सूत्र में कैसे आएंगे। मन और प्राण को एक सूत्र में लाने का नाम मोक्ष कहा जाता है। आज मैं इन विचारों को गम्भीर नहीं बनाऊँगा। यह गम्भीर विचार बनता चला जा रहा है। क्योंकि वेद का ऋषि ऐसी ही आज्ञा दे रहा है। वेद का मन्त्र आ रहा है प्राणत्व मनस्तत्व इन्द्रताः मेघा ऋषितम् मेघाम् मोह रति वेदा। मेरे प्यारे! मानव का सबसे प्रथम विभाजन होता है। सबसे प्रथम इसका विभाजन जब यह मानव इस संसार में आता है तो नाना प्रकार की इन्द्रियों के द्वारा इसका विभाजन हो जाना प्रारम्भ हो जाता है। उस प्राण से मानो मनस्तत्व और प्राणतत्व दोनों पृथक् हो जाते हैं। जब यह प्रथक् होते हैं तो प्राण का विभाजन होना प्रारम्भ हो जाता है। प्राण इस शरीर में पांच रूपों में विराजमान होता है। प्राण, अपान, उदान, समान और कान ये पांच प्राण कहलाए जाते हैं। ये पांच प्राण इस मानव शरीर में अपना कार्य करने लगते हैं। क्योंकि जो मन है यह ज्ञान का माध्यम है, ज्ञान का प्रतिनिधि माना गया है। ज्ञान के माध्यम से इस मन को सर्वत्र कार्य प्रदान कर देता है। प्राण नाभि केन्द्र से चलता है, यह नाना प्रकार की ज्ञान वाहक नाड़ियों में से रमण करता हुआ बाह्य जगत में चला जाता है और बाह्य जगत में करोड़ों खरबों परमाणु ले करके यह आन्तरिक जगत में आ जाता है, यह तो प्राण का कार्य है।

मेरे पुत्रो! अपान है नाभि केन्द्र से अपान है नाभि केन्द्र से निचले विभाग में अपान माना गया है। यह जो अपान है इसमें गुरूतव है, इसमें आकर्षण शक्ति है। वेद का ऋषि ततो यह कहता है कि यदि इस पृथ्वी में अपान शक्ति नहीं होगी तो सर्व प्रथ्वियां सूर्य की किरणों के साथ सूर्य में आकर्षित हो जाएगी। परन्तु यहाँ वेद का ऋषि कहता है, वैज्ञानिक रूपों से वर्णन करता हुआ कहता है कि इसमें गुरूतव है। इसमें आकर्षण शक्ति है और देखो, आकर्षण शक्ति अपान से मानी जाती है : अपान ही है जो मानव को दूर ले जाता है। मानव को गमन कराता है, अपान ही है जो मानव के जीवन की सुरक्षा कर रहा है। यह मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार जो अपने कारण में लय हो जाते हैं परन्तु प्राण ही जागरुक रहता है। एक अपान अपना कार्य कर रहा है। प्राण अपना कार्य कर रहा है। वहाँ मनस्तत्व भी नहीं रहता। परन्तु आत्मा रहित अस्ताः। मैंने इससे

पूर्व काल में निर्णय देते हुए कहा कि आत्मा का इसके साथ सन्निधान रहता है, सन्निधान मात्र से ही यह अपनी गति करता रहता है।

प्राण, अपान और व्यान उदान मानव के कंठ में रहता है। व्यान हम किसे कहते हैं? हमारे इस मानव शरीर में 72 करोड़ 72 लाख 10 हजार दो सौ दो नाड़ियां गिनी जाती हैं। वह जो व्यान प्राण गति कर रहा है प्रत्येक नस नाड़ि में वह इनको शक्ति प्रदान कर रहा है। उसको संचालित कर रहा है, उनमें एक आभा उत्पन्न हो रही है। मेरे पुत्रो! उसके पश्चात् समान आता है, समान जितना भी रस बनाता है हमारे इस मानव शरीर में जठराग्नि के उस रस को ले करके यह सर्व रस नाड़ियों में प्रदान कर देता है। सब नस नाड़ियों में प्रभा से गति होने लगती है, जहाँ जिसका याग होता है वहीं वह प्राप्त हो जाता है। उसके पश्चात् उदान आता है। उदान का जो सम्बन्ध है वह कंठ से रहता है। जिस समय मानव इस शरीर को त्यागता है तो उदान के साथ में। उदान का सम्बन्ध मानो चित्त से होता है जिसे हम अन्तःकरण कहते हैं, जिस अन्तःकरण में करोड़ों जन्मों के संस्कार निहित होते हैं इसका नाम अन्तःकरण माना गया है, वह चित्त मिलान करता है प्राण से और इन दोनों का मिलान होता है आत्मा से, ये तीनों संगठित हो करके इस शरीर को त्याग देते हैं। जैसे उसी काल में सूक्ष्म शरीर होता है सूक्ष्म शरीर को ले करके उदान प्राण इस शरीर को त्याग देता है। जब यह त्याग देता है तो इसके साथ में मानो एक धारा होती है। मानव को विचारना है कि जिस समय इस शरीर को त्यागा जाता है तो जितने विचार होते हैं अथवा मनस्तत्व, प्राणत्व में, उदान में जो भी विचार होते हैं उसी के साथ में यह मानव शरीर की संज्ञा प्राप्त करता है। अथवा अन्य योनियां प्राप्त होती हैं। इसलिए वेद का ऋषि एक वेद का मन्त्र कहता है अन्ताम् ब्रह्मो वृत्ते देवा अस्वाः कृति वसन्डम् मानवाति कृति रुद्रो प्राणाः वेद का ऋषि कहता है कि हे मानव! जिस समय तू अपने शरीर को त्यागने लगे उससे पूर्व ही मानव तेरा अभ्यास ऐसा होना चाहिए। यदि स्वर्ग की कामना का तेरा अभ्यास होगा तो स्वर्ग में जाएगा यदि देवतव का तेरा विचार होगा तू देवताओं के पास होगा। मेरे प्यारे! यदि

मोक्ष का विचार बनेगा तो मोक्ष होगा।

यह दार्शनिक सभा में विचार विनिमय होता रहा। आगे वेद का ऋषि कहता है कि ये पांचों प्राण हैं, इन पांचों प्राण के द्वारा मानव शरीर में गति करते रहते हैं। आज मैं सूक्ष्म शरीर की चर्चा करने नहीं आया। विचार विनिमय केवल यह कि जहाँ जैसा इस मानव का विचार है जिस विचार से उदान प्राण चित्त को ले करके आत्मा को शरीरों को धारण करता है उस तारतम्य शरीरों को त्यागता रहता है। वेद का ऋषि कहता है ब्रह्मवेत्ता हिरण्यम् रुद्रो सुप्रजाः मन चक्रति रुद्रो वेदाः मन की प्रवृत्ति के आधार पर इस मानव की प्रतिभा, मानव का देवतव प्राप्त हो जाता है।

आज वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कह रहा है ये जो मानव शरीर में पांचों प्राण हैं जब मन इनको कार्य प्रदान कर देता है उसके पश्चात् नाग, देवदत्त, धनंजय, कूर्म और कृकल। ये पांच प्राण सूक्ष्म प्राण होते हैं अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। जिसको हम नाग प्राण कहते हैं। नाग प्राण वह होता है जब मानव को कामना आती है, क्रोध की उत्पत्ति आती है, अति काम आता है उस समय वह जो नाग प्राण है वह ऊर्ध्व मुख हो जाता है और मानव का जो अमृत होता है वह नाग प्राण अपने में धारण करने लगता है, उसका हनन कर लेता है इसीलिए वेद के ऋषियों ने यह कहा है कि हे मानव! तू क्रोध न कर, हे मानव! तू अपने जीवन को अति कामनाओं के क्षेत्र में ने ले जा। अन्यथा यह जो नाग प्राण है यह तेरे सुकृत को हनन करता हुआ अपने में धारण करता हुआ अमृत को निगलता हुआ विष को देता रहता है। वही विष इस मानव शरीर में नाना प्रकार के रोगों अथवा नाना प्रकार की भयंकार दैविक विपदाओं में उत्पन्न हो करके मानव को नाना प्रकार की आपत्तियां, नाना प्रकार के कष्ट धारण करने पड़ते हैं। आगे देवदत्त प्राण क्या करता है कि जितना भी सौन्दर्य है उसको अपने में धारण करता है, अपने में समाहित कर लेता है और समाहित करके उसको चित्त में प्रदान कर देता है। उसमें एक प्रसारण शक्ति, उसमें एक रूप शक्ति कहलाई जाती है।

धनंजय क्या करता है? यदि नाग अपना कार्य किसी कारण से त्याग देता है तो धनंजय

अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है।

कूर्म वह कहलाता है जिसमें ब्रह्मवेत्ता की उत्पत्ति होती है, ब्रह्म में वह रमण करने लगता है। इसी प्रकार देवदत्त धनंजय कूर्म और कृकल मानो ब्रह्मे मानो वह उद्बुद्ध अग्नि को उत्पन्न करके वह धुलोकों में ले जाता है। मानव को स्थूल बनाना, सूक्ष्म बनाना यह कूर्म और कृकल दोनों प्राणों का कार्य है। यदि हम उदान प्राण से कूर्म और कृकल प्राण का मिलाप करना जानते हैं तो सूक्ष्म शरीर बन जाता है, जितना संकुचित्त अपने शरीर को हम बना लेते हैं। जैसा बेटा! तुमने स्मरण किया होगा कि त्रेता के काल में महाराजा हनुमान इस क्रिया को जानते थे। वह सुरसा के मुख में मुखारबिन्दु में परणित हो गए, अपने स्वयं शरीर को इतना आंकुचन बना लिया। क्योंकि प्रकृति की पांच प्रकार की गति मानी जाती। मानो आंकुचन, प्रसारण, ऊर्ध्वा, और ध्रुवा और गमनम् पांच प्रकार की गति प्रकृति की है। इन पांचों प्रकार की गतियों को जानने वाला योगेश्वर बेटा! अपने को स्थ्ूल रूपों में ला सकता है और सूक्ष्म में आंकुचन के द्वारा बना सकता है। इसी प्रकार योगीजन इस महान विज्ञान को जानते हैं। इस प्राण की क्रियाओं को जानते हैं। इसीलिए प्रत्येक मानव को प्राणायाम करना चाहिए। जो प्राणायाम करता है उस मानव का जीवन सुन्दर बनता रहता है।

एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वर्णन कराया कि तुम प्राणायाम करो। आसन तुम्हारा सुन्दर है। आसन पर विराजमान हो करके प्राणायाम करने की क्रियाएं उन्होंने प्रकट कीं। उन क्रियाओं में जब अनुरत हो गए तो कुम्भक जो प्राणायाम करते थे ऐसा प्रतीत होता था जैसा अन्तरिक्ष में रमण कर रहे हों। अन्तरिक्ष में हमारी सारे शरीर की गति उत्थान कर रही है। इसी प्रकार प्राणायाम करने से मानव के जीवन में एक महत्ता आती है और मानव के चित्त में जो संस्कार होते हैं वे संस्कार ऐसे जैसे मानो अन्न को हम अग्नि में तपा देते हैं उनमें उपज आदि नहीं रहती। इसी प्रकार जो रेचक कुम्भक प्राणायाम करता है, नाग, कूर्म और कृकल को मिलान करके प्राणों से मिलान करता है। मेरे प्यारे! यह जो विचित्र अग्नि है प्राणा प्रभे अणु जो अग्नि है उसमें मानव के

संस्कार निर्वीय हो जाते हैं, वह मानव का आवागमन वायु में से होने लगता है।
मेरे पुत्रो! आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ, विचार तुम्हें यह देने आया हूँ कि आज हमें प्राणत्व को विचारना चाहिए। यह प्राण क्या है? हमारे यहाँ कुछ क्रियाएं ऐसी मानी जाती हैं। हमारे यहाँ चिकित्सा भी प्राणों के द्वारा होती है। तीन प्रकार की चिकित्सा होती है एक औषधि के द्वारा, एक जल के द्वारा और एक प्राणों के द्वारा। ये तीन प्रकार की चिकित्सा हमारे यहाँ परम्परा से मानी जाती हैं। जितनी चिकित्सा हैं वह सब प्राण के अन्तर्गत आती हैं। क्योंकि औषधियों में प्राण शक्ति है। इसलिए वह जो चिकित्सा है वह प्राण के द्वारा ही मानो उद्बुद्ध होती है, इसको प्राण में ही उद्बुद्ध किया जाता है। जो प्राण क्रिया को जानता है उन्हें यह जो जल की और औषध की प्रतिक्रिया है वे शान्त हो जाती हैं।
अब मेरे प्यारे! पुत्रो! मैं विचार देता हुआ दूर न चला जाऊँ। विचार विनिमय यह कि हम प्राण को अच्छी प्रकार जानने वाले बनें। दार्शनिकों ने यह विचारा कि हमारे यहाँ मानव कितना व्यापक बन गया। व्यापकता आ गई नाग, देवदत्त, धनंजय, कूर्म और कृकल आदि प्राणों की उत्पत्ति हो गई। प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान हो गए। ये दस प्राण बन गए। दस प्राण बनने के पश्चात्! बेटा! मन की प्राप्ति हो गई। मन ने इन पांचों प्राणों से मानव का यह ब्राह्य जगत बन गया। इन्द्रियों के रूप में प्रकट हो गए। इन्द्रियों का कार्य मानो स्वतः प्रारम्भ हो गया। इन्द्रियों का अपना अपना विषय प्रारम्भ हो गया। प्रत्येक देवता भी इन्द्रिय में विलीन हो गए। ये इन्द्रियां अपना कार्य करने लगीं। चक्षु सूर्य बनकर रहने लगा, घ्राण पृथ्वी बन करके रहने लगी, रसना चन्द्रमा बन करके रहने लगा एवं रस बन करके, इसी प्रकार मानव स्वरूप बन करके रहने लगा, त्वचा वायु बन करके रहने लगी। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय अपने अपने कार्य में रत्त होने लगी। उनका अपना एक देवता हो गया। उसी देवता में देवतत्व को प्राप्त होने लगे। यह आन्तरिक जगत बन गया। आन्तरिक जगत् से बाह्य जगत् बन गया। जब बाह्य जगत् में इन्द्रियों को अपना कार्य परणित कर दिया, मन को प्राप्त कर दिया मानो मन के द्वारा इन्द्रियां अपना कार्य प्रारम्भ करने लगीं मानो प्राण का उपभोग

हो गया क्योंकि प्राण का विभाजन हो गया।

मेरे पुत्रो! मानव के द्वारा अति कामना जब उत्पन्न होने लगी, अति द्रव्य की कामना आ गई और नाना प्रकार के देखो, अवरोध आ गए। तो उसके पश्चात् मानव के द्वारा एक व्याधि उत्पन्न हो गई। इसका नाम तृष्णा माना जाता है और तृष्णा की उत्पत्ति होते ही दो भाग उत्पन्न हुए। मान और अपमान के। मेरे प्यारे! मान आता है तो वह भी मृत्यु का कार्य करता है। अपमान आने लगता है तो वह भी मृत्यु का कार्य है। अब मानव मृत्यु के मुखाबिन्दु में परणित हो गया। मृत्यु ही मृत्यु दृष्टिपात होने लगी। आज्ञा के अनुसार कार्य होता है तो अभिमान की उत्पत्ति हो जाती है। आज्ञा के अनुसार नहीं होता तो निराशा मृत्यु का जन्म हो जाता है। मेरे प्यारे! वही मृत्यु है जो मानव को सदैव दुःखित करती रहती है। उसी के गृह में रमण करता रहता है कि मेरी मृत्यु न हो जाए, अमुक स्थान पर चला जाऊँ तो मेरे मृत्यु न हो जाए मृत्यु के बिन्दु में रमण करता रहता है।

मेरे प्यारे! देखो, मान अपमान उतपन्न हो गए, अभिमान की उत्पत्ति हो गई, निराशा की उत्पत्ति हो गई, अति कामना उत्पन्न होने का नाम तृष्णा कहलाता है। अब ऋषि मुनियों ने इसका बाह्य जगत् बना दिया। बाह्य जगत् में जहाँ भी दृष्टि जाती है मानव की वहीं अग्नि परीक्षा हो रही है। मेरी पुत्री दृष्टिपात आती है, पुत्र दृष्टिपात आता है, उनकी इच्छा की पूर्ति करने में मानव लगा रहता है। तो मेरे प्यारे! अन्तिम परिणाम को विचारता है। शान्ति से तो उसका अन्तिम परिणाम कुछ दृष्टिपात नहीं आता। उसके पश्चात् मानव विचारता है अरे, मुझे तो आत्म कल्याण भी करना चाहिए। संसार में, मेरा आत्म कल्याण कैसा होगा? तो मेरे पुत्रो! कहा जाता है, वेद के दार्शनिक आचार्य कहते हैं कि ऋषियों ने विचारा कि संसार को संकुचित्त बनाओ। सबसे प्रथम ऋषियों ने यह विचारा कि तृष्णा को तुम वशीभूत करो। तृष्णा को जब अपने वशीभूत किया गया अति कामनाओं का नाम ही तृष्णा माना जाता है। वैदिक आचार्यों। ने इस तृष्णा को रक्त बीज कहा है। क्योंकि एक रक्त बीज से एक तृष्णा उत्पन्न हुई। एक पूर्ण होती है द्वितीय उत्पन्न है, द्वितीय पूर्ण हुई तृतीय उत्पन्न हो जाती है यह कामनाओं का क्षेत्र

बन जाता है, तृष्णा बलवती होती रहती है, वह इतनी स्थल को ग्रहण करने लगती है कि अन्त में मानव मौन हो जाता है और यह कहता है कि कहाँ जाऊँ?
मुनिवरों! उसके पश्चात् दार्शनिकों ने विचारा कि हमें मोक्ष को जाना है। यह सब इस शरीर का बाह्य जगत् बना दिया। मानव का बाह्य जगत् बन गया। अब वह इस संसार को विचारता है और अब अपने जीवन को संकुचित्त बनाता है। सबसे प्रथम वह कामना के क्षेत्र में जाता है। रक्त बीज को विजय करता है। रक्त बीज को कैसे विजय करता है? वह गायत्री छन्दों का आश्रय लेता है। वह प्राणत्व का आश्रय ले करके सबसे प्रथम तृष्णा को विजय करता है। तृष्णा कैसे विजय की जाती है? सबसे प्रथम मानव में ध्यान की धारणा होनी चाहिए। धारणा में क्या किया जाता है? वह धर्म है। धर्म को हम धारणा कहते हैं। धर्म क्या है? मौलिक जो रूप है उसको धारणा करके धर्म ध्वनि को अपनाता है। धर्म ध्वनि को अपना करके मनस्तत्व को प्राण के द्वारा मिलान करने का प्रयास करता है। जब वह मन और प्राण के द्वारा तृष्णा को विजय करता है तो उसके पश्चात् जो इन्द्रियों का विषय है, इन्द्रियों के जो देवता हैं उन देवताओं को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता है। जैसे चक्षुओं का देवता सूर्य है और घ्राण का देवता पृथ्वी है, इस रसना का देवता जल है और चन्द्रमा दो रस माने जाते हैं, देवता माने जाते हैं। इसी प्रकार श्रोत्रों का देवता दिशा है इन दिशाओं को अपने में धारणा करता है, त्वचा का देवता वायु है, उपस्थ का देवता चन्द्रमा है और हस्तों का देवता भी दिशा मानी गई है। इन सब देवताओं को जानकर और देवताओं को एकत्रित करके, उनका समाज एकत्रित करके कहता है कि अब मैं अपने कल्याण में जाना चाहता हूँ।
मेरे प्यारे! पुत्रो! इन देवताओं को धारणा करके जानता हुआ इनके दूत को जानने लगता है। वायु के क्षेत्र में जाता है तो वायु के साथ में गमन करता उड़ान उड़ने लगता है। अग्नि के द्वारा पर जाता है तो अग्नि इसको समाप्त नहीं कर सकती। यदि वह चन्द्रमा के क्षेत्र में जाता है तो इसको विभक्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जान करके देवताओं को एकाग्र करके उसको प्राण रूपी सूत्र में पिरो देता है। प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, देवदत्त, धनंजय, कूर्म और कृकल इन

दसों प्राणों को एक सूत्र में लाता है। एक सूत्र में ला करके यह आत्मा इसके ऊपर विश्राम करता है। मानस्तत्व और प्राणत्व जो संसार का विभाजन कर रहा था, जो मानव शरीर में विभक्त हो रहा था एक सूत्र में आ करके आत्मा उनके ऊपर विश्राम करके अब मन और प्राण दोनों के एक सूत्र में लाने के पश्चात् आत्मा इसमें रत्त हो जाता है। गुण से गुणी कदापि भी पृथक् नहीं होता। उसको मोक्ष कहा जाता है।

मोक्ष किसे कहते हैं? मोक्ष उसे कहते हैं जहाँ मन और प्राण का विभाजन हो गया नाना रूपों में उसको एक सूत्र में लाना। एक ही आँगन में लाना का नाम मोक्ष कहा जाता है। आज मैं मोक्ष की उड़ान उड़ने लगा हूँ। विचार यह कि मानव का बाह्य जगत जब लोगों में तत्त्वों पर विचार विनिमय प्रारम्भ करता है, इन पञ्च महाभूतों पर गति प्रारम्भ हो जाती है तो वैज्ञानिक बन जाता है। क्योंकि यह मन अणु परमाणुओं का विभाजन होता दृष्टिपात करता है। शब्द उच्चारण होता है वह अन्तरिक्ष में जाता है। अन्तरिक्ष में जिस मानव का शब्द है उसका चित्र दूसरे आँगन में गति कर रहा है। वह भी अन्तरिक्ष को जा रहा है मानो देखो, क्षेत्रों के द्वारा चित्रण हो रहा है।

आज का हमारा वैदिक ऋषि क्या कह रहा है? वेद का ऋषि कहता है कि हे मानव! तू प्राणायाम कर और प्राण की क्रिया को जान। क्योंकि प्राण ही संसार में गति कर रहा है। यह प्राण ही है जो पृथ्वी में नाना प्रकार की वनस्पतियों में जो भिन्न प्रकार का रसा स्वादन हो रहा है। यह कौन है? यह प्राण का ही विभाजन होता है। मन इसको विभक्त करने वाला है। देखो, एक साधारण मन कहलाता है और एक विश्वभान है। विश्वभान वह मन कहलाता है जिसके द्वारा सर्वत्र ब्रह्माण्ड विभक्त होता हुआ दृष्टिपात हो रहा है नाना प्रकार का स्वादन, जलों का विभाजन होता हुआ माता पृथ्वी वसुन्धरा के गर्भ में जो नाना जलों का विभाजन हो रहा है, जल को शक्तिशाली बनाया जा रहा है वह मन और प्राण के द्वारा बनाया जा रहा है। इस माता वसुन्धरा के गर्भ में नाना प्रकार का जो खनिज है उस खनिज में भी मन और प्राण की गति कर रहा है। यह विश्वभान मन कहलाया जाता है। मानव के शरीर में जो गति कर रहा है वह साधारण

मन है।

आज मैं बाह्य जगत और आन्तरिक जगत् की तुलना करने लगा हूँ। बाह्य जगत् में जो क्रिया हो रही है। क्रीड़ा कर रहा है वही आन्तरिक जगत् में हो रही है। तो इसलिए आज जब हम मोक्ष को जाना चाहते हैं, परमात्मा के आँगन में जाना चाहते हैं तो इन दोनों प्रकार के जगतों को जान करके मानव परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। वही बेटा! उषरकेतु कहलाया जाता है। आज विशेष व्याख्या देने नहीं आया हूँ विचार तुम्हें यह देने के लिए आया हूँ कि मानव को अपने जीवन को कितना गम्भीर बनाना है। कितना आश्चर्यचकित बनाना है। समय मिलेगा, इससेपूर्व की चर्चा में पितर याज्ञों की चर्चा करूंगा।

आज का विचार हमारा क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए प्रत्येक मानव को प्राणायाम करना चाहिए और कैसा करना चाहिए? पूज्यपाद गुरुओं ने जो वर्णन कराया है कि आसन पवित्र हो, आसन कुशा का हो। जहाँ आसन हो वहाँ सुगन्धि युक्त हो। उस काल में शनैः शनैः मानव को प्राणायाम करना चाहिए सबसे प्रथम रेचक करना चाहिए। उसके पश्चात् कुम्भक करना चाहिए। कुम्भक के पश्चात् पूरक करना चाहिए मानो शनैः शनैः अपने प्राण को ऊर्ध्व में ले जाना शनैः शनैः निचली स्थली में त्यागना। शनैः शनैः उसको अपने में यथाशक्ति से कुम्भक कर लेना और रेचक कर लेना बाह्य त्याग करके रेचक में शान्त हो जाना। ऐसे प्राणायाम करते हुए मानव अपने प्राण की गति को ऊर्ध्व बनाने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। यह अभ्यास जब प्राणी को होता है वह अन्त में भी इसी विचार को ले करके जब मानव शरीर को त्यागता है तो प्राण के द्वारा इस शरीर को त्यागा जाता है तो वह मानव देव लोक को प्राप्त होता है। उसकी आत्मा देव लोक को प्राप्त होती है।

यह विषय इतने गम्भीर हैं इसको जानने के लिए मानव को तप की आवश्यकता है। ब्रह्मचरिश्यामि। कल मैं इसके सम्बन्ध में विशेष चर्चाएं प्रकट करूंगा। आज का विचार विनिमय क्या कि दार्शनिक समाज में यह विचार हो रहा था कि हम मोक्ष को जानना चाहते हैं। मोक्ष की व्याख्या चाहते हैं। तो ऋषियों ने यह कहा है कि मोक्ष मन और

प्राण को एक सूत्र में लाना। इसको बाह्य जगत् से जानते जानते व्यापक रूप बनाते हुए आंकुचन करने का नाम मोक्ष कहलाया जाता है। आत्मा जब उनके ऊपर विश्राम करके जब गमन करता है तो वह मोक्ष की वृत्तियों को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए वेद का ऋषि कहता है अन्तमथे सोमथा। कि अन्त में तुम्हारा विचार मन्थनमय होगा वही तुम्हें प्राप्त होगा। मन और प्राण को एक सूत्र में लाना, आत्मा को विश्राम करना।

आगे ऋषि विशेष केतुक ऋषि ने कहा कि जब मन और प्राण और आत्मा ये तीनों संगठित हो जाते हैं तो उसके पश्चात् क्या गति बनती है। इसमें विशेष केतु ने यह कहा कि मेरे विचार में तो ऐसा आता है कि जिस समय मन और प्राण एक सूत्र में आ जाते हैं तो उस अनुभव को मानव वर्णन करने में असमर्थ रहता है। उसका वर्णन नहीं किया जाता। क्योंकि वह परमात्मा में अव्याहत गति से रमण करता है। उस अनुभव का वर्णन करना असमर्थ है। क्योंकि वाणी का विषय, इन्द्रियों का विषय वहाँ तक रहता है जहाँ तक एक दूसरे का मिलान नहीं होता और जब मिलान हो जाता है तो उस अनुभव को इन्द्रिय वर्णन नहीं कर सकती। इसमें नेति नेति का प्रतिपादन किया जाता है।

यह है आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा। आज का यह वाक्य समाप्त अब वेद का पाठ होगा इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। निर्मल वेदान्त सम्मेलन, अमृतसर समय प्रातः 7 बजे।

१७ 04 05 1976 पुष्प 27 भैतिक विज्ञान

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, कुछ मनोहर वेदवाणी का प्रसारण करते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है कि मैं अपने उस देव का दृष्टिपात करना चाहता हूँ। वह मुझे किस स्थली पर प्राप्त हो सकता है? परन्तु वेद का ऋषि यह कहता है कि परमात्मा को बाह्य जगत में दृष्टिपात करना है तो उसका जो ज्ञान और विज्ञान है वह इतना अनुपम है कि उसके सम्बन्ध में

प्रत्येक मानव को उड़ान उड़नी चाहिए। बाह्य जगत में दृष्टिपात करता हुआ मानव परमपिता परमात्मा के अनन्त ज्ञान और विज्ञान को अपने में नहीं पा पाता। वह बाह्य जगत के दृष्टिपात करता हुआ नाना प्रकार के अणु और परमाणुओं में रत्त रहता है और यह जानता है कि इन शब्दों में ब्रह्म को दृष्टिपात करता है। कहीं मानव रूप में दृष्टिपात करने लगता है, कहीं कन्द सुगन्ध में और कहीं रस में।
मेरे पुत्रो! आज विचारना यह है कि परमात्मा की नाना रूपों में मानव दृष्टिपात करता रहता है, बाह्म जगत में नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ता रहता है। परमात्मा में नवीनता और वृद्धपन को दृष्टिपात करता रहता है। परन्तु जब यह विचार विनिमय होने लगता है दार्शनिकों का और विचारकों का कि वह जो ब्रह्म है वह कैसा है? और ब्रह्म को किस प्रकार जाना जाता है? वैज्ञानिकों ने यह कहा है कि हम परमाणुवाद की उड़ान उड़ने लगते हैं, उस परमात्मा के बिखरे हुए ज्ञान और विज्ञान से हम स्वतः नाना प्रकार की उड़ान उड़ना प्रारम्भ कर देते हैं। वह उड़ान हमारी अन्तरिक्ष तक चली जाती है। हम यहाँ से उड़ान उड़ते हैं पृथ्वी के गर्भ में जाने के लिए। द्वितीय उड़ान उड़ते हैं शुक्र मण्डलों के लिए, तृतीय उड़ान उड़ते हैं सूर्य लोकों के लिए और चतुर्थ उड़ान जब उड़ने लगते हैं तो हम मानव ध्रुव मण्डल में जाने के लिए तत्पर हो जाते हैं। पञ्चम जब उड़ान उड़ते हैं तो स्वाति नक्षत्रों में, मूल नक्षत्रों में अपनी गति बना लेते हैं। ऊर्ध्व गति में जाते हैं तो आकाश गंगा में चले जाते हैं, और ऊर्ध्व गति बनाना चाहते हैं तो नाना आकाश गंगाओं में रमण करने लगते हैं, और भी ऊर्ध्व गति बनाना चाहते हैं तो एक मण्डल से दूसरे मण्डल को सहकारिता में दृष्टिपात करने लगते हैं। एक मण्डल दूसरे मण्डल से गुंथा हुआ है। एक मण्डल है एक मण्डल की आकर्षण शक्ति से यह ब्रह्माण्ड गतिशील होता दृष्टिपात माना जाता है।
यदि हम और ऊर्ध्व उड़ान उड़ते हैं तो इसको योगेश्वर बन करके ही संसार को अपने अन्तरआत्मा में दृष्टिपात करने लगते हैं। ध्यानावस्थित होने मात्र से ही इस संसार को संकुचित्त बना लेते हैं, इसका इतना आंकुचन कर लेते हैं कि सर्वत्र विस्तार वाले ब्रह्माण्ड को हम अपने मस्तिष्क में दृष्टिपात करने लगते हैं क्योंकि इन आकाश गंगाओं

का लघु मस्तिष्क होता है, लघु मस्तिष्क में यह ब्रह्माण्ड लोक लोकान्तरों वाला दृष्टिपात आने लगता है।

मुनिवरों! जब हमारे हृदय में यह आकांक्षा होती है कि हम परमात्मा को जानना चाहते हैं तो परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में हमें जाना बहुत अनिवार्य है और जब हम इस ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में पहुंच जाते हैं तो उसके पश्चात् उस ब्रह्माण्ड को हम व्यापक रूप से दृष्टिपात करने लगते हैं। हमने इससे पूर्व वाक्यों में कहा कि प्रकृति की पांच प्रकार की गति मानी जाती है। ध्रुवा, ऊर्ध्वा, व्यापकता, प्रसारण मानो जिसको हम प्रसारणवृत्त कहते हैं और मानो गति से गति करना और पश्चम जो गति है उसको आंकुचन कहते हैं अर्थात् सूक्ष्म बनाना ही। इस प्रकृति को विचारक वैज्ञानिक दृष्टिपात करता है, अणुवाद पर चला जाता है, एक एक शब्द में वह अपने चित्रों का चित्रण करने लगता है। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय सत्युग के काल में आदि ब्रह्मा के पुत्र का नाम अथर्वाथा और अथर्वा के समीप सोमवृत्त केतु ऋषि महाराज ब्रह्मचारी शौनक इत्यादि तीन जिज्ञासु विराजमान थे। अथर्वा एकान्त स्थली पर विराजमान हो करके वेदमन्त्र का अध्ययन कर रहा था। वेदमन्त्र की उड़ान उड़ रहा था और वह कह रहा था वृत्तक गृहे लोकान्त चन्द्रम विहित वृताः आकुन्चः वृत्ति व्धा, देवतम् लोकाः ब्रह्माण्ड बृहति आस्तो अप्राः गचति वृत लोका। वेद का ऋषि इस मन्त्र का अध्ययन कर रहा था और अध्ययन करता हुआ मानो ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने जब इस प्रकार का अध्ययन किया तो उड़ान उड़नी प्रारम्भ कर दी। इतने में शौनक ऋषि ने कहा अथर्वा क्या विचार रहे हो? अथर्वा ने कहा कि मैं इस वेदमन्त्र को विचार रहा हूँ। इस वेदमन्त्र में यह आया है कि इस संसार को आंकुचन करो। अब मैं इस संसार को कैसे आंकुचन करूं। क्योंकि यह तो बड़े विस्तार वाला है। सूर्य मण्डल को एक ऐसा मण्डल है जिसमें नाना पृथ्वी समा जाती है। एक मण्डल दूसरे मण्डल में समाहित होता दृष्टिपात आ रहा है। इतने विस्तार वाले अहिल्या रूप ब्रह्माण्ड को मानो इस प्रकृतिवाद का मैं कैसे आंकुचन बना सकता हूँ? कहा जाता है कि ब्रह्मचारी अथर्वा से शौनक ने कहा कि इसको आंकुचन बनाना तो बड़ा ही सहज है। क्योंकि हमारा एक वेदमन्त्र यह भी तो कह रहा है ब्रह्मणाः

वृत्तेः वाहियाम जगतयाम प्रहे वृताः आन्तरिक जगतयाम देवाः कल्पना वृत्ति अस्तो वेदमन्त्र यह भी तो कह रहा है कि जब तुम बाह्य जगत में और आन्तरिक जगत दोनों की मिलान मिलाना जानते हो, दोनों को मिलाना चाहते हो तो यह कैसे नहीं मिला सकते। इस वेदमन्त्र और उस वेदमन्त्र का दोनों का समन्वय किया जाए।

मेरे पुत्रो! दोनों समन्वय करने लगे तो एक वाक्य आया कि वास्तव में इतने ऊँचे और इतने महान ब्रह्माण्ड को, लोक लोकान्तरों वाले जगत को जब हमारा यह वाक्यवाद, व्रसारणवाद समाप्त होने लगता है इसका विज्ञान तो उसके पश्चात् हम इस संसार को आंकुचन कर लेते हैं। एक स्थली में मानो इसे समेट लेतेहैं। और समेट कौन लेता है? वेद का ऋषि क्या कहता है? मुझे यह वाक्य स्मरण आता है जब वेद का ऋषि मग्न हो करके अपनी यज्ञशाला में इस वेदमन्त्र का उच्चारण करता है मनो वाचाः प्राणों वृत्ति वृद्धों कहा अभ्यम् माप मान लोके वृहे कृति। वेद का ऋषि मग्न हो करके यह वाक्य कह रहा है कि हे मानव! तू इस संसार को आंकुचन क्यों नहीं कर सकता? जब जितना भी संसार तुम्हें दृष्टिपात आता है यह मन और प्राण का ही दृष्टिपात आ रहा है। जितना भी यह लोक लोकान्तरवाद है, एक दूसरे से पृथक होता दृष्टिपात आता है, एक दूसरा एवं दूसरे में समाहित होता भी दृष्टिपात हो रहा है, यह लोक है, यह मण्डल सूर्य है, यह बृहस्पति है, यह आरुणि है, यह मूल नक्षत्र है, यह स्वाति नक्षत्र है, यह कृत्तिका नक्षत्र है, यह रोहणीकेतु नक्षत्र है, यह पुष्पांजली वृत्त केतु नक्षत्र है जब एक दूसरा मण्डल एक दूसरे से शनि लोकों के आँगन को प्राप्त हो रहा है वह लोक एक दूसरे में गुंथा हुआ एक दूसरे की आकर्षण शक्ति में स्थिर हो रहा है।

उस आकर्षण शक्ति का मूल कारण कौन है? यह भी तो हमें विचारना है। इन आकर्षण शक्तियों का जो मूल कारण है वह सत् है। ऋत् और सत् है। ऋत् और सत् में यह संसार समाहित हो रहा है। ऋत् ही सत् से गुंथा हुआ है। ऋत् और सत् को हमारे यहाँ प्राणत्व कहा है। ऋत् नाम मन का है और सत् नाम प्राण का है। वेद का ऋषि कहता है कि यह जो मन है यह प्रकृति की सबसे सूक्ष्म धारा है जिसको आदि ऋषियों ने

महतत्व भी कहा है इसके आँगन में प्राण हैं इसको केता वृत चित्त तत्त्वे कहा है।
मुनिवरों! जब हम इन दोनों पर चिन्तन करना प्रारम्भ करते हैं तो वेदमन्त्र इस वाक्य को कहता है कि इस संसार को आंकुचन क्यों नहीं कर सकते? जब हमारे इस मानव शरीर में आन्तरिक जगत में और बाह्य दोनों जगत में मन और गुण अपना कार्य कर रहा है। मन और प्राण कैसे कार्य करता है? एक मानव अपने कुटुम्ब का परिचय देता हुआ कहता है कि सर्व कुटुम्ब एक पंक्ति में विराजमान हैं। कह रहा है कि यह मेरी माता है, यह पिता है, यह पुत्र है मानो जिस प्रकार की आकृति है, जिस प्रकार का प्राणी आता रहेगा उसी प्रकार के मानव चित्त पटल पर आते रहते हैं। उसी प्रकार की धाराएं प्रारम्भ हो जाती हैं। यह कौन है? यह मन ही तो है जो नाना प्रकार की प्रवृत्तियों का विभाजन कर रहा है। रूप रूपान्तरों काविभाजन कर रहा है। लोक लोकान्तरों को विभक्त कर रहा है। उनमें गति करने वाली कौन सी वस्तु है जो विभक्त होती दृष्टिपात होती है। बेटा! वही वेद का ऋषि कहता है प्राणत्व वृते चेताः। वही तो प्राण है जो विभक्त होता दृष्टिपात हो रहा है, जो नाना रूपों में दृष्टिपात आ रहा है। नाना लोकों में जो गति हो रही है वह उस प्राण की हो रही है। इसीलिए मैं प्राण के ऊपर अपनी विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय केवल यह कि यहाँ संसार में दो ही वस्तु है दोनों वस्तुओं को हमें विचारना है।
मानव के शरीर मेंजब मन और प्राण एक सूत्र में आ जाते हैं, एक ही आँगन में प्रवेश कर जाते हैं वही हमारे यहाँ मनः कृति वृद्धा। वही तो मानव की साधना बन करके रहती है। मानव की साधना क्या है? मानव किस वस्तु की साधना करना चाहता है? वह मन और प्राण को एक सूत्र में लाना चाहता है। यदि वह इन दोनों को एक सूत्र में नहीं ला सकता तो उसकी आत्म साधना पूर्ण नहीं होगी। इसलिए आत्म साधना के लिए मानव परम्परा से क्रियाशील रहा है। मानव उसी से अनुशासित हो रहता है और अनुशासन ही मानव का जीवन है। आज मैं तुम्हें मन और प्राण की चर्चा देने आया हूँ। मुनिवरों! ब्रह्मचारी अथर्वा का यह विचार रहा है अपने आँगन में विराजमान हो करके कि इस संसार को हम कैसे आंकुचन कर सकते हैं। इतने व्यापक ब्रह्माण्ड को अपने

में समाहित कर सकते हैं। मन और प्राण जब एक सूत्र में आ जाते हैं, आत्मा की प्रतिभा, आत्म चेतना इसी में कार्य करने लगती है और वह अपने में अनुभव करने लगता है कि सर्व ब्रह्माण्ड मेरे में समाहित हो रहा है। मैंने तुम्हें कई कालों में वर्णन करते हुए कहा था कि जब मन और प्राण मूलाधार में जाते हैं तो मूलाधार को विजय करने के पश्चात् वह पृथ्वी मण्डल को विजय कर लेता है। जब नाभि चक्र में जाता है मन और प्राण साधना के द्वारा तो उस समय मध्य के आँगन को पर्थिव तत्त्व जितने हैं उनको अपने में विजय कर लेता है जब वही मन और प्राण आत्मा के सहित जब हृदय चक्र में जाते हैं तो परमात्मा का यह जितना भी जगत है यह सब हृदय बन करके मानव में गति करने लगता है। जब यही मन और प्राण आत्मा के सहित विराजमान हो करके कंठ चक्रों में रमण करने लगता है तो जितने भी वायु प्रधान वाले लोक हैं उन पर वह विजय कर जाता है। जब वह त्रिवेणी के स्थान में मन और प्राण और आत्मा इनके ऊपर विश्राम करके जाता है तो वहाँ दो कृतिका होती है उन कृतिकाओं में जब गति प्रारम्भ हो जाती है तो जितने अग्नेय मण्डल वाले लोक हैं वह मानव उन पर विजय कर जाता है। जब यह आत्मा प्राण और मन ब्रह्मरन्ध्र में जाता है तो ब्रह्मरन्ध्र की जो पंखड़ियां हैं वे गति करने लगती हैं। जब उनमें गति आ जाती है उसे हमारे यहाँ ब्रह्मरन्ध्र अस्वत, कहते हैं, जब उनमें गति आ जाती है तो जितनी उनमें गति तीव्र आती है तो जितने भी संसार में लोक लोकान्तर हैं, उनमें जो नाना प्रकार की इडा, पिंगला सुषुम्णा अर्थात् गंगा, यमुना सरस्वती कह दीजिए, इन तीनों नाड़ियों का मिलान उस ब्रह्मरन्ध्र से होता है और ब्रह्मरन्ध्र के साथ में उन नाड़ियों का मेल अथवा चक्राणी बन करके रहती है तो अन्तरिक्ष तथा जितना भी ब्रह्माण्ड है, जितना भी यह लोक लोकान्तर वाद है उन नाड़ियों में से सहस्रों सहस्रों क्या करोड़ों करोड़ों वाहक नाड़ियों का ऊर्ध्व मुखरविन्द हो करके उन लोकों को वह योगी अपने में दृष्टिपात करने लगता है। जब वह दृष्टिपात करने लगता है मानो देखो, वह जो लोक लोकान्तरवाद है उसको वह अपने में धारण करने लगता है। यह संसार अपने में दृष्टिपात आने लगता है, बाह्य जगत को आन्तरिक जगत में ले लेता है और ले करके लघु मस्तिष्क, वृत्तकेतु मस्तिष्क

मानो मानो सोमभृत मस्तिष्क तीनों मस्तिष्कों का ऊर्ध्व मुख हो करके ये जो लोक लोकान्तर हैं इनकी सहज ही जानने लगता है। जिस विज्ञान में जाने के पश्चात् भौतिक विज्ञानवेत्ता नाना अणु और परमाणु में गति करता हुआ नाना स्थूल मन्त्रों का निर्माण करता हुआ वह अपनी ऊर्ध्व गति को बनाता हुआ लोक लोकान्तरों में क्या चन्द्र लोकों में गति करने लगता है, मंगल लोकों में यानों से गति करने लगता है परन्तु एक योगी नाना मण्डलों को अपने ही शरीरों में धारण करता हुआ उनको प्रत्यक्ष दृष्टिपात करने लगता है और वह कहता है कि हे वैज्ञानिकों! जहाँ तुम्हारा ये भौतिकवाद अणुवाद पूर्ण अर्थात् समाप्त होता रहता है वहाँ से आध्यात्मिक वाद का प्रारम्भ हुआ करता है। वहाँ से मानो आध्यात्मिकवाद की एक कृतिका प्रारम्भ होती है।

आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है? आज का वेद का ऋषि क्या कह रहा है? अथर्वा और शौनक दोनों यह विचार रहे हैं कि हम आत्म वैत्ता बनना चाहते हैं। आत्मा को वही जान सकता है जो मानव अपने में ही इस संसार को दृष्टिपात करता हुआ इस संसार को आंकुचन बना लेता है। मुझे स्मरण आता रहता है, मैंने कल सूक्ष्म सी प्राण की चर्चाएं तुम्हारे समीप नियुक्त कीं। महाराजा हनुमान की सूक्ष्म सी चर्चाएं कीं। मेरे प्यारे! यह तो तुम्हें प्रतीत है कि महाराजा! हनुमान पवन पुत्र कहलाते थे। वे अञ्जना के पुत्र थे। महाराजा मही वृत केतु राजा की कन्या का नाम अञ्जना था। अञ्जना के पुत्र जो हनुमान हुए पवन पुत्र कहलाते थे। महाराजा महीन्द्र राजा के राजकुमार पवन कहलाते थे मुझे वह काल स्मरण है जब वह बाल्यकाल से माता अञ्जना के गर्भ में क्रीड़ा करता रहता था। बाल्यकाल में वह विचारता रहता। बाल्यकाल में कि माता यह सूर्य क्या पदार्थ है? यह सूर्य क्या है? तो माता उसे यह शिक्षा देती थी कि पुत्र! यह जो सूर्य है यह प्रकाशक है, यह प्रकाश को देने वाला है। नाना प्रकार की किरणें आ करके हमारे को प्रकाशित करती रहती हैं। माता जब यह विचार देती रहती तो एक समय बाल्यकाल में इस बालक ने यह कहा कि माता! मेरा हृदय तो ऐसा कह रहा है कि सूर्य की आभा को मैं अपने में निगलना चाहता हूँ। अपने में धारण करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि पुत्र! वह भी समय आएगा। देखो, माता के स्थल में होने वाला

बालक हनुमान वह सारी सूर्य विद्या का विशेषज्ञ बना। माता की अनुपम शिक्षा थी। सूर्य के विज्ञान को जानने वाला, सूर्य को जितनी विद्या है, प्रकाश है उसे वह स्वयं अपने में निगलता रहता था। जब वह ब्रह्मचारी 48 वर्ष का हुआ तो महाराजा सुग्रीव की कन्या से उसका संस्कार हुआ महाराजा सुग्रीव और दोनों विधाता (भ्राता) थे। उनकी कन्या से जो संस्कार हुआ तो उस संस्कार के पश्चात् एक पुत्र को जन्म दे करके उस कन्या का निधन हो गया। निधन हो जाने के पश्चात् माता इन्द्रियों ने पुनः कहा कि पुत्र तुम संस्कार कराओ। उन्होंने कहा कि मातेश्वरी! अब मैं परमात्मा के विज्ञान में जाना चाहता हूँ, अब मैं इस प्रकृतिवाद को जानना चाहता हूँ, मुझे संस्कार की इच्छा नहीं। क्योंकि पितर याग का मेरा उद्देश्य पूर्ण हो गया है। पितर याग क्या है? मेरे पितरों ने जो याग किया था मुझे उत्पन्न किया। मैंने एक पुत्र का जन्म दिया मेरी पत्नी समाप्त हो गई। उसका कार्य पूर्ण हो गया।

जब यह आभा में नाना वैज्ञानिक विराजमान हैं, उन्होंने अपने शरीर के प्राणों को अध्ययन करना प्रारम्भ किया। एक समय वह काग भूशुण्डजी के द्वार पर पहुंचे और कागभुशुण्ड जी से यह कहा कि महाराज! मुझे शिक्षा दीजिए। कागभुशुण्ड जो इस विद्या को जानते थे, वह अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ना भी जानते थे, पृथ्वी में, समुद्र के आँगन में भी अपनी गति को जानते थे, काग भुशुण्ड जी इतने वैज्ञानिक थे, इतने योगेश्वर थे, मुझे जब उनका जीवन स्मरण आता है तो हृदय गद् गद् हो जाता है। मैं यह कहा करता हूँ कि कागभुशुण्ड जैसा बनना चाहिए जो अन्तरिक्ष में गति करने वाला हो उदान प्राण और नाग प्राण दोनों का मिलान करता हुआ मानों कृकल और देवदत्त और उदान प्राण को मिलान कर वह अपने शरीर को अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने वाला हो। इस प्रकार का कागभुशुण्ड था। वही क्रिया हनुमान जी ने ऋषि के द्वार पर प्राप्त की। उस विद्या को पान करने वाले हनुमान जी वे अपने शरीर को ऊर्ध्व में भी बना लेते थे और आंकुचन कर लेते थे। जैसे प्रकृतिवाद को एक योगी सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने अन्तरात्मा में दृष्टिपात करने लगता है, अपने में मन और प्राण को धारण करके संसार में मन और प्राण की रचना को दृष्टिपात करता है, इसी प्रकार एक योगी, एक

साधक अपने शरीर को इतना सूक्ष्म बना लेता है। अपनी अस्थियों को प्राण को अर्पित करके, मन को अर्पित करके, अपने शरीर को आंकुचन बना करके वह सुरसा जैसे मुखारबिन्दु में परणित हो जाना और उससे बाहर आ जाना यह सब इन प्राणों की ही विशेषता है, बेटा! आंकुचन क्रिया है जिसको जान करके मानव को आश्चर्य होता है। क्योंकि उसका अध्ययन न होने के कारण मानव नाना प्रकार की टिप्पणियां कर सकता है।

मुनिवरों! मैं प्राण की एक और चर्चा प्रकट करूंगा। हनुमान जी तो थे ही, मानो देखो, यही विद्या बालि के पुत्र अंगद पर पहुंची। अंगद अपने शरीर को विशाल बनाना जानता था। बेटा! तुम्हें स्मरण होगा जब राम से यह कहा था कि हे अंगद! रावण के द्वारा जाओ। कुछ सुलह हो जाए। उनके और हमारे विचारों में एकता आ जाए। संस्कृति का प्रसार हो जाए। जाओ तुम उनको शिक्षा दो। तो जब वे रावण की राजसभा में पहुंचे। तो वहाँ नाना वैज्ञानिक भी विराजमान थे। राजा रावण विराजमान थे। उनके सर्व पुत्र विराजमान थे, उस राज सभा में अंगद का आगमन हुआ तो रावण ने कहा आओ, तुम्हारा किस प्रकार से आगमन हुआ? उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं इसीलिए आया हूँ कि मैं यह चाहता हूँ कि राम में और तुम्हारे दोनों के विचारों में एकता आ जाए। तुम्हारे यहाँ संस्कृति के प्रसार में अभाव आ गया है। अब मैं उस अभाव को शान्त करने के लिए आया हूँ। क्योंकि चरित्र की स्थापना करना यह राष्ट्र का कर्त्तव्य होता। तुम्हारे राष्ट्र में चरित्र की हीनता हो गई है। तुम्हारा राष्ट्र उत्तम प्रतीत नहीं हो रहा है। इसीलिए तुम्हारे दोनों के विचारों में एकता आ जाए, संस्कृति का प्रसार हो जाए। वैदिकता आ जाए, यौगिकता आ जाए, महत्ता आ जाए तो तुम्हारा जो यह एक दूसरे से विवाद है रक्त बहाने की प्रवृत्ति समाप्त हो सकती है। इसको समाप्त कराने के लिए मैं तुम्हारी राजसभा में आया हूँ। तब रावण ने कहा कि यह तो तुम्हारा विचार यथार्थ है। परन्तु मेरे यहाँ क्या सूक्ष्मता है? उन्होंने कहा कि तुम्हारे राष्ट्र में चरित्र की सूक्ष्मता है। राजा के राष्ट्र में जब चरित्र नहीं होता तो संस्कृति का विनाश हो जाता है। इसलिए संस्कृति का विनाश नहीं होना चाहिए। संस्कृति का उत्थान करना है। क्योंकि संस्कृति यही कहती

है कि मानव के आचार व्यवहार को सुन्दर बनाया जाए, महत्ता में लाया जाए।

एक दूसरे की पुत्री की सुरक्षा होनी चाहिए। यह राजा के राष्ट्र को पद्धति कहाती है। उन्होंने जब यह वाक्य कहा तो रावण ने कहा कि क्या मेरे राष्ट्र में विज्ञान नहीं है। उस समय अंगद ने कहा कि हे रावण! तुम्हारे राष्ट्र में विज्ञान है। परन्तु विज्ञान का क्या बनता है? मानो एक मंगल की यात्रा कर रहा है। परन्तु मंगल की यात्रा से क्या बनेगा? जब तुम्हारे राष्ट्र में अग्नि काण्ड हो रहे हैं। हे रावण! तुम सूर्य मण्डल की यात्रा कर रहे हो, उस सूर्य की यात्राहोने से क्या बनेगा? जब तुम्हारे राष्ट्र में एक कन्या का जीवन सुरक्षित नहीं है। तुम्हारे राष्ट्र का बनेगा क्या? जब रावण से उन्होंने यह वाक्य प्रकट किया तो उन्होंने कहा कि यह तुम क्या वाक्य उच्चारण कर रहे हो? तुम अपने पिता की परम्परा को शान्त कर गए हो। उन्होंने कहा कि कदापि नहीं। मैं इसलिए आया हूँ कि तुम्हारे राष्ट्र का और अयोध्या दोनोंका समन्वय हो जाए। रावण मौन हो गया। मौन हो करके उनके पुत्र नरान्तक ने कहा कि हे पिता! क्या आप मौन हो गए हो? इसके मूल को हम नहीं जान सके हैं। उन्होंने कहा कि मैं इसलिए मौन हो गया हूँ कि यह क्या उच्चारण कर रहा है। उन्होंने कहा कि भगवन्! इसको विचारा जाए। तो विचारते विचारते यह आया कि यह दूत है यह क्या कहता है। दूत ने पुनः कहा कि यदि तुम भगवान राम से अपने विचारों का समन्वय कर लोगे तो राम माता सीता को लेकर के चले जाएंगे। जब उन्होंने ऐसा कहा तो रावण ने कहा कि यह क्या उच्चारण कर रहा है? उन्होंने कहा कि मैं धृष्ट नहीं हूँ। उन्होंने कहा कि यही धृष्टता है संसार में कि दूसरे की कन्या को अपने में हरण करके लाना एक महान धृष्टता है तुम्हारी। तुम्हें इस धृष्टता का ज्ञान नहीं हुआ है कि तुम पर स्त्रीगामी बन गएं हो और जो राजा पर स्त्रीगामी होता है उस राजा के राष्ट्र में अग्नि के काण्ड हो जाते हैं।

जब उन्होंने यह कहा तो राजा रावण मौन हो गया और कहा कि यह कटु उच्चारण कर रहा है। अंगद ने कहा कि मैं तुम्हें प्राण की एक क्रिया निश्चित कर रहा हूँ यदि चरित्र की अवसरता है तो मेरा जो यह पग है इस पग को यदि तुम एक क्षण भर भी अपने स्थल से दूर कर दोगे तो उस समय मैं माता सीता को तयाग करके राम को अयोध्या

में ले जाऊँगा। वही उनकी प्राण की क्रिया थी। सर्व प्राण को वह एक पग में ले जाए और उदान प्राण, व्यान और अपान दोनों का मिलान करके नाग की पुट लगा करके तीनों प्राणों का मिलान हो करके प्राण भी उसमें पुष्ट हो गया तो वह शरीर विशाल बन गया। पग विशाल बन गया। उस प्राण के बल को तो राज सभा में कोई ऐसा बलिष्ठ नहीं था जो उनके पग को एक क्षण भी अपनी स्थली से दूर कर सके। तो यह प्राण की विशेषता है। आज हमें प्राण की महत्ता को जानना चाहिए। यह प्राण कितना शक्तिशाली है। इसलिए हमारे यहाँ पुरातन काल में प्राण की चिकित्सा होती रही है। जहाँ ऋषि मुनियों ने यह विचारा कि इस औषधि में भी प्राण हैं, यहाँ चिकित्सम् ब्रह्मे, प्रकृतिकता में भी प्राण हैं। इसीलिए प्राण चिकित्सा से उत्तम संसार में कोई भी चिकित्सा नहीं कहलाती है। प्रत्येक मानव को यह ज्ञान होना चाहिए कि हमारा जो प्राणतत्व है वह कितना विशाल होना चाहिए। अंगद का पग जब एक क्षण समय भी दूरी नहीं हुआ तो रावण उस समय स्वतः चला। परन्तु रावण के आते ही उन्होंने कहा कि यह अधिराज है, अधिराज से पगों का उठवाना सुन्दर नहीं है। उन्होंने अपने पग को अपनी स्थली पर नियुक्त कर लिया और कहा रावण! तुम्हें मेरे चरणों को स्पर्श करना है तो तुम राम के चरणों को स्पर्श करो। तो तुम्हारा कल्याण होजाएगा। तुम्हारे विचारों का समन्वय हो जाएगा। रावण मौन हो गया और अपनी स्थली पर विराजमान हो गया। महाराज नरकान्तक ने अपने पिता से यह कहा कि हे पिता! जिस राजा को सैना में प्राण के ऐसे ऐसे विशेषज्ञ हों ऐसी सेना को हम विजय नहीं कर सकेंगे। उनके पुत्र ने जब यह वाक्य कहा। क्योंकि रावण के राष्ट्र में न सूर्य उदय होता था और न अस्त होता था, इतना व्यापक राष्ट्र था उनका। एक अयोध्या का ही राष्ट्र शेष रह रहा था। मयराष्ट्र, अयोध्या और जनकपुरी मिथिला को छोड़कर शेष संसार पर रावण परिवार का राज्य था। नारान्तक ने यह कहा कि महाराज! हम तो प्राणों को केवल विज्ञान में ही लाना जानते हैं। परन्तु ये शिराओं में लाना जानते हैं, जो शिराओं में प्राणों को लाना जानता है हे पितर! उस सेना को कोई भी विजय नहीं कर सकता संसार में। जो प्राणों को जानता है, जो प्राणों की विशेषता को जानता है, अपने शरीर के अंगों में लाना जानता

है, बाह्य जगत और आन्तरिक जगत में जानता है उस ब्रह्मचारी को मृत्यु विजय नहीं कर सकती। मेरे प्यारे! उस ब्रह्मचारी की मृत्यु विजय नहीं कर सकती। क्योंकि शरीर से प्राण ही तो जाता है। प्राण ही तो खेलने वाला है, प्राण ही है तो माता को पुत्र के वियोग में विकल बना रहा है, एक मानव मानव दुःखि हो रहा है जो प्राण के स्वरूप को जानता है, अर्थात् प्राण को अपान में जानता है, अपान कोव्यान में जानता है, व्यान का समान में जानता है और समान को नाग और कृकल में जानता है, नाग और कृकल को देवदत्त और धनंजय में जानता है, यह जो प्राणों का एक दूसरे में समन्वय करने वाला जो ज्ञान और विज्ञान है यह उदान के समीप जाता है और उदान यह कहता है माता से पुत्र कहता है कि माता! अब मैं अपने लोक को जा रहा हूँ। चित्त, आत्मा और उदान तीनों मिलकर जब इस शरीर को त्यागते हैं तो माता प्रसन्न होती है। क्योंकि जो माता उन प्राणों को जानती है तो माता को रुलाने वाला कोई नहीं होता। माता को कौन रुलाता है बेटा! अज्ञान रुलाता है। जिसको प्राणों का ज्ञान नहीं होता, आत्मा का ज्ञान नहीं होता, वही तो माता विरही बन करके संताप रुदन करता है और जब प्राणों का एक दूसरे प्राण को समावेश करना जानता है, ज्ञान का प्रकाश हो रहा है, मन इसमें भ्रमण करता दृष्टिपात हो रहा है तो उस मानव की उस समाज की मृत्यु नहीं होती। वह मृत्यु से पार हो जाता है।

मृत्यु को कौन विजय करता है? वेद कहता है ब्रह्मचारिश्यामि, हे ब्रह्मचारी! तू मृत्यु को विजय कर लेता है। मृत्यु को विजय कौन करता है? जोबेटा! प्राणों को जाने हैं, जो प्राण को एक दूसरे में मिलान को जानता है। वह मानव ब्रह्मचारी कहलाता है। उसके ब्रह्मचर्य की गति ध्रुव नीची रह न करके ऊर्ध्व बन जाती है। ब्रह्मरन्ध्र में चली जाती है। ब्रह्म से उसका मिलान हो जाता है। जब चेतना ही चेतना दृष्टिपात होती है तो शरीर को यह जानता है कि यह तो परमाणुवाद का शरीर है। यह परमाणुवाद पृथक् पृथक् हो जाएगा एक समय। तो न उनके वियोग का उसे शोक होता है और न उसके संगठन की विशेषता प्रतीत होती है। जब उसके विछुड़ने का कोई वियोग होगा, रूदन नहीं होगा, विरह नहीं बनेगा। उसके आने की भी कोई प्रसन्नता नहीं होगी। इसी का नाम

बेटा! जीवन है। उस मानव की मृत्यु नहीं होती और न वह माता रुदन करती है। उसे यह ज्ञान होता है कि मेरा पुत्र क्या है? यह तो परमाणुओं का मिलान हुआ, विश्वकर्मा ने इसका निर्माण किया है। प्राण विभक्त हो गएं हैं। जो विश्वभान बन करके रहते थे, मन इसमें कार्य कर रहा है। इस प्रकार का ज्ञान और विज्ञान मानव के हृदय मस्तिष्क में समाहित हो जाता है। तो वह मानव अपने मन को ध्रुवा नहीं बनाता व प्रकाश में ले जाता है। जहाँ प्रकाश में ले जाता है। वहाँ अन्धकार नहीं होता, अज्ञान नहीं होता और जहाँ अन्धकार अज्ञान नहीं होता वहाँ मृत्यु का भय भी नहीं होता। मृत्यु उससे दूर हो जाती है, विरह समाप्त हो जाता है।

आज का वेद का ऋषि क्या कहता है? महाराजा अथर्वा ने बहुत ऊँचे शब्द उच्चारण किए। महाराजा अथर्वा ने यही कहा था कि इस संसार को आंकुचन करके अपने में समाप्ति करो, अपने में दृष्टिपात करने लगो। ऋषि मुनि साधना करते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय आसन पर विराजमान थे और विराजमान हो करके बोले कि मैं मिथ्या उच्चारण करना नहीं चाहता हूँ। मैं अपनी वाणी में बल चाहता हूँ। प्राण शक्ति चाहता हूँ। मुझे स्मरण है मेरे पितर ने 184 वर्ष तक कोई वाक्य मिथ्या उच्चारण नहीं किया। जो 184 वर्ष तक कोई वाक्य मिथ्या उच्चारण न करें उस मानव की वाणी में इतनी आग्नेय शक्ति उत्पन्न हो जाती है, इतनी प्राण शक्ति आ जाती है कि वह जो उच्चारण करता है वही हो जाता है। वह ऐसा है कि वह मानव के अन्तःकरण को दृष्टिपात करके यह जान लेता है कि इसके जीवन में कैसी कैसी घटनाएं होने वाली हैं। उन्हीं घटनाओं के साथ में गठित होने वाला जीवन उसकी वाणी में उच्चारण होने लगता है। उस वाणी में इतनी महत्ता आ जाती है। मुझे स्मरण है जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करते थे तो एक पंक्ति में शिष्यमण रहते थे, एक पंक्ति में मृगराज रहते, एक पंक्ति में और जलचर रहते, सर्पराज भी रहते, जब सभा विसर्जन होती मानो उनके चरणों को स्पर्शकरते तो जैसे हम करते वैसे ही मृगराज और सिंहराज भी उनके चरणों को स्पर्श किया करते थे। मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि प्रभु! यह क्या कारण है जो हिंसक प्राणी भी आपके चरणों को छू

रहे हैं। सर्पराज भी आपकी गाथा के लिए लालायित हैं। तब आचार्य ने कहा कि हे पुत्रो! प्रत्येक प्राणी अपने पिता की प्रशंसा चाहता है। वह जो परमात्मा है वह सबका महान पिता है और उसका जो वेदों का ज्ञान है, वेद की जो ऋचा है ज्ञान और विज्ञान से गुंथी हुई उसको कौन नहीं चाहता। क्या सर्प यह नहीं चाहता कि मेरे पिता की प्रशंसा न हो, क्या सिंहराज नहीं चाहता। परन्तु मानव की वाणी में इतनी प्राण शक्ति होनी चाहिए जिससे विषचर अमृत बन करके उसके शरीर में प्रवेश कर जाएं। सिंहराज की हिंसक प्रवृत्ति उसका चित्त मिलान कर जाए। मेरे पुत्र! वह जो चित्त मिलान की बात है वही हिंसक प्राणी अहिंसा परमो धर्मी। बन करके चरणों को छूता है, वही सर्पराज विषधर बन करके भी वेदवाणी के अमृतपान करके वह भी ऋषि के चरणों को छूने लगता है। तो यह जो प्राण शक्ति है यह इतनी विशाल है, यह शब्द में रहती है, जितना भी शब्दमय प्राणी रहता है उतना ही मानव के द्वारा महत्ता रहती है, उतना ही एक दूसरे के चित्त में प्रवेश करके उसके चित्त को जान सकता है।

यह है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हम परमपिता की आराधना करते हुए उस सत् में अपने जीवन को बनाते हुए, सत् ही सत् दृष्टिपात होने लगता है। वह सत् ही है जो मानव के हृदयों में समाप्ति हो रहा है। वह ऋत् और सत् है जो लोक ललोकान्तरों में समाहित हो रहा है। मेरे पुत्रो! देखो, एक मानव प्राण शक्ति को जानना चाहता है, प्राण तत्त्व वाला बनना चाहता है यह मैंने कुछ सूक्ष्म सी उड़ान उड़ी है। कल मुझे समय मिलेगा तो कल मैं इससे भी और ऊँची उड़ान उड़ने का प्रयास करूंगा। आज का विचार विनिमय क्या कि प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या को अपने जीवन को ऊँचा बनाने के लिए ज्ञान और विज्ञान में पहुंचना है। मृत्यु को विजय करना है, मृत्यु का साक्षात्कार करना है, प्रत्येक पदार्थ को जानना है, जान करके लोक लोकान्तरों में एक खिलवाड़ करना, यह मानव का कर्त्तव्य है। यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। निर्मल वेदान्त सम्मेलन, अमृतसर, समय

प्रातः 7 बजे।

१८ 06 05 1976 पुष्प 27 विचारो की सुगन्धि

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। हमारे यहाँ परम्परा से ही इस समाज में ऋषि मुनियों के क्षेत्र में दोनों प्रकार के महापुरुष होते रहे हैं। एक तो वह महापुरुष कहलाता है जो वेदमन्त्र को विचार विनिमय करता रहता है और विचार विनिमय करते हुए उसकी दो प्रकार से मीमांसा करता है। एक मीमांसा तो रूढ़ि में रह जाती है और द्वितीय मीमांसा यौगिक क्षेत्र में चली जाती है। तो रूढ़ि तो सामाजिक पद्धति बन करके रह जाती है और यौगिकता ब्रह्मवाद बन करके रहती है। आज मैं ब्रह्मवाद की चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ विचार यह देने के लिए आया हूँ कि दोनों प्रकार की उड़ान उड़ने वाले पुरुष परम्परा से ही सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर वर्त्तमान काल तक होते रहे। उन उड़ने वालों में एक तो हमारे यहाँ भौतिक विज्ञान वेत्ता कहा जाता है और द्वितीय को आध्यात्मिक वेत्ता कहा जाता है। दोनों ही विज्ञान हैं। केवल अन्तर इतना ही है कि भौतिक विज्ञान मानव को अध्यात्मयान के क्षेत्र में ले जाता है और आध्यात्मिक विज्ञान मानव को प्रकाश में ले जा करके ब्रह्म में प्रतिष्ठित कर देता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि दोनों ही विद्याएं यौगिक मानी जाती हैं। महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी आदि आचार्यों की कल चर्चाएं कीं, आज भी मैं तुम्हें उनका दिग्दर्शन कराऊँगा। परन्तु उससे पूर्व हम यह उच्चारण करते चले जाएं। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने कई कालों में यह प्रकट करते हुए कहा कि आज का विज्ञान पराकाष्ठा पर चला जा रहा है। मैंने अपने पुत्र से कहा कि वत्स! यह नवीन वाक्य नहीं है। मानव के मस्तिष्क में दोनों प्रकार की उड़ान परम्परा से रही है। मैंने बहुत पुरातन

काल की चर्चाएं आदि ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा की चर्चाएं कीं। अथर्वा अपनी विज्ञानशाला में विराजमान हैं, वैद्यशाला में विराजमान हो करके नाना प्रकार की उड़ान उड़ रहा है। अणुवाद की उड़ान उड़ रहा है और इसकी उड़ान उड़ता हुआ लोकों की गणना करने लगता है। चन्द्रमाओं की गणना करने लगता है। मंगल मण्डलों की गणना करने लगता है। पृथ्वी की गणना करने लगता है और वेद को विचारविनिमय करते हुए यह कहता है कि यह प्रभु का जगत् अनन्त है, इसको मैं सीमा में नहीं ला सकता।

मेरे पुत्रो! मुझे यह वाक्य स्मरण आता रहता है, मैंने कई काल में तुम्हें प्रकट करते हुए कहा कि महर्षि याज्ञवल्क्य जहाँ ब्रह्म विचारक थे, ब्रह्म वेत्ता थे, वहाँ उनकी विज्ञानशाला में लोकों की उड़ान उड़ी जाती थी। मुझे वह काल स्मरण है जब ब्रह्मचारी कलन्धी, गार्गी, दोनों ब्रह्मचारियों में यह वाद उत्पन्न हुआ कि आकाश गंगा क्या है? तो आकाश गंगाओं की गणना करने लगे। परन्तु निबटारा नहीं हुआ। मध्य रात्री का काल था, चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त था, तब अपने कक्ष को त्याग करके याज्ञवल्क्य मुनि के कक्ष में प्रवेश किया और उन्हें जागरूक किया और कहा प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि यह आकाश गंगा क्या है? हम वेद का मन्त्र अध्ययन कर रहे थे। आकाशगम् वैदवृतं गंग वृत्ति वृत्ता लोका हिरण्यम् ब्रभे कृत्यां रुद्रो उताहत् सो सुप्रताः, हे भगवन्! इस मन्त्र का हम अध्ययन कर रहे थे और इस वेदमन्त्र में यह आ रहा था कि आकाश गंगा तो लोकों का क्षेत्र है। क्या यह प्रभु! सत्य है? याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि हे ब्रह्मचारियों! तुम मेरे यहाँ अध्ययन करते हो, तुम्हें यह प्रतीत है कि यह मेरी वैधशाला है, जहाँ विद्यालय में यज्ञशाला है। वहाँ वैद्यशाला है और वहीं विज्ञानशाला है। इस विज्ञानशाला में यह यन्त्र विराजमान है, इन यन्त्रों से दृष्टिपात करो। ब्रह्मचारी कलन्धी को और गार्गी दोनों को प्रत्यक्ष दृष्टिपात कराने लगे। उन यन्त्रों में आकाश गंगाएं दृष्टिपात आने लगीं। उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें प्रतीत है कि जब मैं एक आकाश गंगा में पहुंचा तो उस आकाश गंगा के सूर्यों की गणना करने लगा, तो मैंने लगभग तीन खरब पांच करोड़ और पांच सौ सूर्यों की जब गणना की तो उसके पश्चात् मैंने ध्रुव मण्डलों की गणना की। जब मैंने दो अरब के लगभग ध्रुव मण्डलों की

आकाश गंगा में गणना कर ली तो जेठाय नक्षत्र में पहुंच गया और जब जेठाय नक्षत्रों की गणना करने लगा तो एक अरब जेठाय नक्षत्र एक आकाश गंगा में गणना कर ली तो मैं मौन हो गया और यह कहा कि यह तो परमात्मा का अनन्त मण्डल है, जैसे परमात्मा अनन्त है इसी प्रकार उसका ब्रह्माण्ड और उसका अपना स्वरूप भी अनन्त माना जाता है।

वेद का ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि कहता है कि हे ब्रह्मचारियों! जब मैंने इन यन्त्रों के द्वारा एक आकाश गंगा दृष्टिपात की और आगे उड़ान उड़ी तो द्वितीय आकाश गंगा दृष्टिपात आने लगी। मैंने 272 आकाश गंगाएं अपने यन्त्रों के द्वारा दृष्टिपात की हैं। ब्रह्मचारी कलन्धी मौन हो गया और गार्गी भी मौन हो गई। मौन हो करके उन्होंने कहा कि प्रभु! यह तो अनन्त मण्डल हैं, परन्तु अब क्या किया जाए ब्रह्मा वृते देवाः। उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मचारियो! यह मानव की परमाणुवाद की उड़ान है, ऊँची उड़ान है, परम्परा से यह उड़ान हमारे यहाँ उड़ी जाती है। तो यह जो विज्ञान का क्षेत्र है यह विशाल क्षेत्र है, परमात्मा की कृति वाला क्षेत्र है परन्तु यदि इसमें अभिमान न हो प्राणी को तो अणुवाद के ही सहारे रमण करता हुआ यह लोकों को प्राप्त हो जाता है, परन्तु इसमें अभिमान की मात्रा प्रायः आ जाती है क्योंकि यह अणुवाद का क्षेत्र है, प्रकृति का क्षेत्र है।

मेरे पुत्रो! वेद का ऋषि उड़ान उड़ता हुआ कहता है हे ब्रह्मचारियो! जब हम इसके ऊपर अध्ययन करने लगते हैं तो वेद का यह मन्त्र स्मरण आने लगता है कृत्म् हृदयानी गच्छम् ब्रह्मे लोकाः कि प्रत्येक मानव को तपस्वी बनना चाहिए। जब यह वाक्य स्मरण आता है तो एक स्थान में तो विज्ञानवाद है, यन्त्रवाद है, एक स्थल में तो मानो चित्रवाद है, एकस्थली में शब्दों के साथ में चित्रों की उड़ान उड़ी जा रही है और एक स्थान में वेद का ऋषि कहता है तपम् हृदया गच्छत् प्रभेः यह तो हृदय है इसे तपाना चाहिए। जितना हृदय तपा हुआ होगा उतना ही मानव के जीवन में प्रकाश होगा।

वेद का विचारक ऋषि कहता है कि उच्चारण किए बिना भी नहीं रहा जाता कि ऐसा विशाल ज्ञान है, ऐसा विज्ञान है। क्योंकि विज्ञान से गुथा हुआ जो वैदिक विचार है उसको मानव को अपनाना चाहिए। मानव को अपने में धारण करते हुए इस संसार

सागर से पार होना चाहिए। यह मानव का कर्त्तव्य कहलाता है। इसी विज्ञान को विचार विनिमय करते हुए प्रत्येक मानव यहाँकर्त्तव्य पालन करने के लिए आया है। कर्त्तव्य क्या है? तपस्या में जाना ही मानव का कर्त्तव्य है। तप क्या है? तप यह है कि प्रत्येक वस्तु, मानव की सीमा में बद्ध रहनी चाहिए। एक मेरी प्यारी माता अपने गर्भ में अपने बालक को गर्भाशय में शिक्षा प्रदान कर रही है, उसको ओजस्वी और तेजस्वी बना रही है। वह माता अपने कर्त्तव्य का पालन कर रही है। जब बालक माता के जरापुत्र से पृथक हो जाता है तो माता उसका कर सकती है, परन्तु उसके शरीर का विच्छेद नहीं कर सकती। क्योंकि वह उसका निर्माण किया हुआ नहीं है। आज मैं माता से प्रश्न करता हूँ कि हे माता! तेरे गर्भ स्थल में जो बालक का निर्माण हुआ, उसका निर्माणवेत्ता कौन है? माता कहती है कि मुझे प्रतीत नहीं कि कौन निर्माण वेत्ता है। पिता से प्रश्न किया जाता है तो वह भी यही उत्तर देता है। हे मां! तेरे गर्भ स्थल में बालक का निर्माण हो रहा है, विश्वकर्मा निर्माण कर रहा है। परन्तु भोली माँ को कोई ज्ञान नहीं। हे मां! तू कैसी विचित्र है, तुझे वेद ने वसुन्धरा कहा है, अहिल्या कहा है। नाना रूपों से वर्णन किया है। इस विद्या को जब मेरी माता जान लेती है तो वह विदूषी बन जाती है। मानो अपने गर्भ में बालक को ब्रह्म की शिक्षा प्रदान कर देती है।

विचार विनिमय क्या कि यही मानव का कर्त्तव्य है कि माता पालन कर सकती है ममता के द्वारा परन्तु जब वह संसार क्षेत्र में आ जाता है तो माता का पुत्र न रहा। परन्तु वह समाज की सम्पदा बन जाती है, वह राष्ट्र की सम्पदा बन जाती है। माता के शरीर से विच्छेद हो करके पिता के कुल में प्रवेश करता है। पिता के कुल से प्रवेश करके आचार्य कुल में प्रवेश कर जाता है। आचार्य कुल में यदि ब्रह्म जिज्ञासु बन गया तो संसार की सम्पदा बन गई। यदि राष्ट्र के विचार बन गएं तो राष्ट्र की सम्पदा बन गई। यदि वह वैज्ञानिक बन गया तो लोक लोकान्तरों की सम्पदा बन जाती है। इसलिए हे मां! तू पालन कर सकती है। यदि बाल्यकाल में पालन करना तेरा कर्त्तव्य है। परन्तु आगे वह कर्त्तव्यवाद रह जाता है। उसी को हमारे यहाँ कर्त्तव्य कहा जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है कि महाराज! अश्वपति की चर्चा प्रकट करते हुए कहा कि अश्वपति के राष्ट्र में

निर्माण का ही निर्धारण होता। राजा अपने राष्ट्र में नियम बनाता है कि मेरे राष्ट्र की जो भौतिक सम्पदा है वह मानो शिक्षा है। शिक्षा ऊँची होनी चाहिए। उस समय के महामन्त्री सोना ने यह कहा और भी नाना आचार्यों ने यह कहा कि महाराज! राष्ट्र की सम्पदा शिक्षा और चरित्र दोनों होने चाहिए। यदि मानव की शिक्षा होगी तो चरित्र स्वतः निर्माण हो जाएगा। यदि शिक्षा की पद्धति ऊँची नहीं है तो चरित्र का निर्माण किसी काल में नहीं हो सकता। यह महाराजा अश्वपति ने कहा। अश्वपति के पुरोहित महर्षि को रूपता ऋषि महाराज ने यह कहा कि हमारे यहाँ जो चरित्र होता है वह राष्ट्र के आधार पर होता है। जब राजा स्वतः चरित्रवान बन जाता है, कर्त्तव्यवादी बन जाता है तो समाज स्वतः बन जाता है। समाज का संगठन ऊँचा होना चाहिए।

मेरे पुत्रो! ऐसा मुझे स्मरण है कि महाराजा! अश्वपति के यहाँ जब नियमावली बनी तो यह कहा कि संसार में एक दूसरे का ऋणी नहीं रहना चाहिए। एक दूसरे का ऋण क्या है। मानव के द्वारा सबसे प्रथम ऋण है वह देवताओं का ऋण माना जाता है। देवता कौन है? जड़ देवता और चैतन्य देवता। जड़ देवताओं के सहयोग से शरीर का निर्माण होता है और चैतन्य देवताओं से विचारों का निर्माण होता है। मानो उसकी भव्य शृंखला बनती है। ऊर्ध्व गति बनती है। इन दोनों प्रकार के ऋण से हमें (उऋण) होना चाहिए। देव पूजा करें। देव पूजा का अभिप्राय क्या है? माता पिता अपने पुत्रों! को अपने गृहों को स्वर्ग में लाना चाहते हैं। तो मेरे प्यारे! पुत्र पुत्रियों को विराजमान करके, स्वयं विराजमान हो करके दर्शनों का विचार होना चाहिए। अग्नि होत्र होना चाहिए जब अग्नि होत्र होता है तो अग्नि द्वारा देवताओं का पूजन है, वह अग्नि सब ले करके देवताओं को प्रदान कर देती है। वह अग्नि दूत बन करके देवताओं को तृप्त बना देती है। तो वह देव पूजा कहलाती है। जितनी भी सुगन्धि होगी, विचारों की सुगन्धि, पदार्थों की सुगन्धि, चरित्र की सुगन्धि यह तीन प्रकार की सुगन्धि जिस गृह में होगी वह गृह को स्वर्ग बनाना चाहता है तो तीन प्रकार की सुगन्धि उस मानव के द्वारा होनी चाहिए। एक सुगन्धि तो देवताओं के पूजन की होती है। देवताओं का पूजन ही मानो साकल्य और चरु जोअग्नि में प्रदान किया जाए। जिसको अग्नि होत्र कहा जाता है। द्वितीय मानव के

भव्य विचार होने चाहिएं। माता पिता जब दर्शनों के विचारों को स्मरण करते रहते हैं तो उन विचारों को प्रत्येक मानव ग्रहण करता है। तो गृह का वायु मण्डल और भी पवित्र बन जाता है। जब चरित्र की सुगन्धि होती है तो वह गृह गहन स्वर्ग बन जाता है यह कल्पना ऋषि मुनियों ने की है। आदि ऋषियों का यह विचार है, उनके मन्तवयों की चर्चाएं प्रकट करने के लिए हम आए हैं। विचार क्या कि वह गृह में माता पिता अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। बालक बालिका अपने माता पिता के विचारों के अनुसार अपने जीवन को बनाते हैं। तो वह भी अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। तो राजा के राष्ट्र में ऐसी नियमावली होनी चाहिए।

महाराजा अश्वपति ने अपने राष्ट्र में मन्त्रियों से कहा, अपनी प्रजा से कहा कि हे प्रजाओ! सबसे प्रथम अग्नि होत्र होना चाहिए। देव पूजा होनी चाहिए। हम पर देवताओं का ऋण है। देखो, जल हमें अमृत देता है, अग्नि हमें तेज देता है, पृथ्वी हमें सुगन्ध देती है, वायु हमें प्राण देता है, अन्तरिक्ष हमें शब्द देता है। इसी के आधार पर हमारा जीवन आश्रित रहता है। तो वे हमारे देवता हमारे शरीर को बलवान बना रहे हैं। परन्तु इन पञ्च महाभूतों को मिलान करने वाले चैतन्य देवता कौन? आचार्य हैं, विद्यालयों में गुरुजन हैं, जब गुरुओं की पूजा होती है पूजा का अर्थ क्या है कि उनका विचार ले करके उसको धारण करना, अपने में ग्रहण करना। मानो आचार्य वमन कर रहा है, विद्या को निगलता है और निगल करके वमन करता है और ब्रह्मचारी उसको ग्रहण करते हैं। बेटा! वह जो पवित्र विद्या है जिसको पान करना, वह आचार्यों की पूजा है। पूजा का अभिप्रायः क्या है? पूजा का अभिप्राय है कि उसके सदुपयोग करने का नाम पूजा कहलाता है। विचार यह कि आचार्य अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। वह जो आचार्यों का ऋण है उससे वे उऋण हो रहे हैं।

मेरे पुत्रो! यह पितरों का और देवताओं का और आचायों के ऋणों से मानो प्रत्येक मानव उऋण होने जा रहा है। उसके पश्चात् राष्ट्र का ऋण है। राष्ट्र किस पद्धति को निर्मित करता है। परन्तु उस पद्धति में एक विचार होना चाहिए। सम बुद्धिमानो का राजा जिस पद्धति को लाना चाहता है, उस पद्धति में मानवता हो, चरित्र हो, उस चरित्र में

आध्यात्मिक वाद हो। इस प्रकार की पद्धति राजा के राष्ट्र में होती हैं वह राष्ट्र ऊँचा बना करता है। राजा के राष्ट्र में भव्यता आ जाती है, चरित्र आ जाता है, यह राष्ट्र का कर्त्तव्य है। प्रजा और राष्ट्र दोनों मिल करके जब अश्वमेध याग करते हैं अश्वमेध याग किसे कहते हैं? अश्व नाम राजा को कहते हैं, मेध नाम प्रजा को कहते हैं जब राजा और प्रजा दोनों मिलकर याग करते हैं याग का अभिप्राय यह है कि विचारों का याग, याग का अभिप्राय यह है अग्नि होत्र करें, संसार में वह राजा दिग्विजयी कहलाता है। तो इस प्रकार का विचार मानव का कर्त्तव्यवाद कहलाता है। यह वेद का उपदेश है, वेद का ऋषि यही कहता है कि हे मानव! अपने कर्त्तव्य का पालन कर, यही तो तेरी मानवता मानी जाती है।

मेरे प्यारे! जब मुझे महाराजा अश्वपति का काल स्मरण आता है तो हृदय गद् गद् हो जाता है। ऋषि मुनि तपस्या कर रहे हैं मानो पुरुषों को विवेकी बनाया जा रहा है। क्योंकि उनकी इच्छाएं सब राष्ट्र से पूर्ण होती हैं। पवित्रता उनके हृदयों में होती है। राष्ट्र पवित्र बना करता है। राष्ट्र का आभूषण क्या है? उसकी पद्धति ही उसका आभूषण है। उस पद्धति में चरित्र ही आभूषण है, वही उसकी मानवता मानी जाती है। वह मानवता कर्त्तव्यवाद कहलाया जाता है। मैंने कई काल में चरित्रवाद की चर्चा प्रकट करते हुए कहा था कि मानव उड़ान उड़ता हुआ कितनी ऊँची उड़ान उड़ता है। एक मानव उड़ान उड़ता हुआ चित्रों की उड़ान उड़ने लगता है। आज तुम्हें मैं त्रेता के काल में ले जाना चाहता हूँ। जहाँ विज्ञान की भव्यता आती रहती है। कर्त्तव्यवाद का पालन होता रहता है। एक समय कचली वनों में ऋषियों की एक सभा हुई थी। जिसमें महर्षि विभाण्डक, महर्षि शमीक, महर्षि शौनक, महर्षि दालभ्य, महर्षि शिलक, महर्षि प्रवाहण, महर्षि सौमभान, महर्षि पनपेतु, महर्षि सुकेत केतु, महर्षि सोमभानु, देवर्षि नारद, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि सुकेतु, गार्हपत्य, वर्तन्तु ब्रह्मचारी, प्रभानु क्रितिभा आदि नाना ऋषि थे। उस सभा में यह विचार विनिमय आरम्भ होने पर महाराजा शौनक ने यह कहा कि यह हमारा विचार कैसा है कि अयोध्या में एक याग होना चाहिय परन्तु उस याग में राम को जैसे यज्ञमान के रूप में निर्वाचन किया जाए और कर्त्तव्य का

पालन करते हुए अयोध्या नगरी को सुगन्धित बनाया जाए। जिन्होंने संसार में अपनी संस्कृति का प्रसार किया ऐसे महान् जनों को ऊर्ध्व गति में ले जाया जाए। बुद्धिमानों का समाज था। यह विचार बन गया। काग ऋषि उसमें नियुक्त किए गए। महर्षि विभाण्डक, शमीक, महर्षि शौनक और महर्षि सुकेत चित्र महाराज और दालभ्य इन पांचों ऋषियों ने यह विचार बनाया कि भगवान् राम के समीप जाएं और अपनी विचार धारा प्रकट करें। उन पांचों ने प्रातः काल होते ही अपने आसन से गमन किया। भ्रमण करते हुए अयोध्या में उनका प्रवेश हुआ। ऋषि मुनियों के आगमन की चर्चाएं राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों विधाता प्रातःकाल में देवताओं के ऋण से उऋण हो रहे थे। वे देव पूजा कर रहे थे, अपना विचार विनिमय कर रहे थे। इतने में ही ऋषि मुनियों का आगमन हुआ। इन चारों विधाताओं ने अपने अपने आसन को त्याग करके ऋषियों का स्वागत किया। आसन दिया और आसन दे करके उनके चरणों को छू करके नमस्कार करके कहा कि भगवन्! आप लोगों का आगमन कैसे हुआ? उन्होंने कहा कि महाराज! हम इसलिए तुम्हारे यहाँ आ पहुंच हैं कि हमारा एक विचार है कि हम चाहते हैं कि तुम एक याग करो। उन्होंने कहा कि बहुत प्रिय, जो आपकी आज्ञा हो, उसका पालन अवश्य करेंगे।

मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने याग करने का अपना विचार विनिमय किया। याग करने के लिए उन्होंने अपनी अनुमति दी, चारों विधाताओं ने स्वीकार किया और दिवस नियुक्त किया गया। जब दिवस नियुक्त हो गया और अब वह दिवस आता है यज्ञशाला का निर्माण होने लगा, पण्डितों के परामर्श से यज्ञशाला का निर्माण हुआ। जैसा महर्षि यागवल्क्य मुनि महाराज ने बारह वर्ष के तपकरने के पश्चात् एक पोथी का निर्माण किया था, जिसको शतपथ ब्रह्मण कहा जाता है, उसके अनुसार उन्होंने यज्ञशाला का निर्माण क्या और यज्ञशाला का निर्माण करने के पश्चात् नाना ऋषि उस यज्ञशाला में विराजमान हो गए और राम को यज्ञमान नियुक्त किया गया। होता इत्यादियों का निर्वाचन हो गया। निर्वाचन होने के पश्चात् नाना ऋषि मुनि महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी सबरी आदि सब उस यज्ञशाला में विराजमान हैं। जब यज्ञ प्रारम्भ

होने लगा तो राम ने एक वाक्य कहा कि हे ऋषियों! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो याग होने जा रहा है इस याग का अन्तरिक्ष में क्या परिणाम होता है? ऋषि मुनि मौन हो गए और राम का उत्तर नहीं दे सके। राम ने पुनः यह कहा कि मैं जानना चाहता हूँ कि इन आहूतियों का क्या परिणाम है अन्तरिक्ष में? इसमें महर्षि भारद्वाज से ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा कि महाराज! मुझे आज्ञा दो, मैं भगवान राम के प्रश्नों का उत्तर दूं। उन्होंने कहा नहीं। तब राम ने पुनः प्रश्न किया कि इस याग को मैं तब करूंगा जब मुझे अन्तरिक्ष के चित्रों का प्रतीत होगा।

मेरे प्यारे! भारद्वाज ने कहा राम! तुम्हारी यही इच्छा है कि हम ऋषि मुनि वैज्ञानिक रूपों से तुम्हें यज्ञ के चित्रों का दिग्दर्शन कराएं। तब तुम यज्ञ को पूर्ण करो। राम बोले महाराज! मेरी तो यही इच्छा है। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर। महर्षि भारद्वाज वैज्ञानिक थे। उन्होंने अपने शिष्य ब्रह्मचारी सुकेता से कहा जाओ, यज्ञशाला के यन्त्रों का लाया जाए। यन्त्र वहाँ आ गए तो ऋषि कहता है कि राम प्रश्न करो क्या जानना चाहते हो। राम ने कहा प्रभु! मैं इसका विधान जानना चाहता हूँ। वेद का ऋषि यह कहता है, वेद का मन्त्र यह कहता है चित्रावली वृतग वृभे वृत्ताः यज्ञाः देवतम् पूर्वले अप प्रभे वृत देवाः। भगवान राम ने कहा कि इस वेदमन्त्र के आधार पर यज्ञमान को सुख प्राप्त होता है परन्तु मैं इसको जानना चाहता हूँ कि यज्ञमान कैसे बनता है। महर्षि भारद्वाज ने कहा कि तुम्हें यह प्रतीत होगा कि हमारा जोवंश है वह भारद्वाज कहलाता है और भारद्वाज का जो वंश है वह हरितत गोत्र से उसका निकास है और हरितत गोत्र का निकास दगदग गोत्र से है और दगदग गोत्र का निकास अग्नि ऋषि गोत्र से माना जाता है और अग्नि ऋषि का गोत्र अथर्वा में माना जाता है और अथर्वा जो गोत्र है वह हरिकेतु भानु ऋषियों से माना जाता है। तुम्हें यह तो प्रतीत होगा। हमारे यहाँ परम्परा से ब्रह्मवेत्ता होते चले आए हैं। वैज्ञानिक भी होते चले आए हैं। जहाँ आध्यात्मिक विज्ञान को जानते हैं वहाँ भौतिक विज्ञान में भी पाररंगत रहे हैं, उनका मौलिक कर्त्तव्य रहा है राम तुम दृष्टिपात करो।

मुनिवरों! जब यज्ञ प्रारम्भ होने लगा, अग्नि प्रदीप्त हो गई और उसके पश्चात् जब

यज्ञशाला में साकल्य की आहुति दी जाने लगी तो महर्षि भारद्वाज ने उन यन्त्रों का दृष्टिपात कराया। मानो इन शब्दों के साथ में यज्ञमान, होता ब्रह्मा के चित्र अन्तरिक्ष में जा रहे हैं। मन्त्रों में दृष्टिपात कराने लगे और उन्होंने कह कि हे राम! तुम दृष्टिपात करो। इस मन्त्र में तुम्हारी यज्ञशाला का जितना यह चि.ा है वह सब अन्तरिक्ष को जा रहा है, द्यु लोक को जा रहा है। द्यु लोक को जाने वाला शब्द द्यु लोक के मानव को प्राप्त हो रहा है। मुझे वह काल जब स्मरण आता रहता है तो हृदय गद् गद् हो जाता है। मैं यह कहा करता हूँ कि ऋषियों की विज्ञान में कितनी उड़ान है। उन्होंने कहा कि हे राम! तुम्हें प्रतीत है कि मानव का जिस प्रकार का शब्द है उतन ही शब्दों के आकार में उसका चित्र अन्तरिक्ष में रमण कर रहा है।

मेरे प्यारे! जब वे दृष्टिपात करने लगे तो राम बोले धन्य है। मैं जीवन में यही जानना चाहता था। यज्ञशाला में जो अशुद्ध शब्दों का उच्चारण करता है वह द्यु लोक में ऊर्ध्व गति को इतना यज्ञ नहीं जाता। परन्तु जब चित्त प्रसन्न करके यज्ञमान होता जन, ब्रह्म उद्गाता यज्ञशाला में विराजमान हो करके याग करते हैं तो यज्ञशाला का और अग्नि का चित्र अन्तरिक्ष में गति करने लगता है अर्थात् शब्दों के साथ में वह मानव का चित्र भी गति करता है, श्वांस के साथ में गति करता है। भगवान राम को जब यह दृष्टिपात हुआ, ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा कि प्रभु! हमारी विज्ञानशाला में ऐसे ऐसे यन्त्र हैं कि यदि एक सहस्र वर्षों पूर्व मानव का निधन हो चुका है परन्तु उस मानव का एक रक्त का बिन्दु आ जाए तो उस यन्त्र में उस रक्त के बिन्दु से मानव का चित्र भी साक्षात्कार हो जाता है।

महर्षि भारद्वाज ने जब यह निर्णय कराया और यह कहा कि एक रक्त के बिन्दु में इतने परमाणु होते हैं कि माता के गर्भ स्थल में एक बालक का निर्माण हो जाता है। आज का वेद का आचार्य कहता है, वेदमन्त्र कहता है कि नाना चित्र अन्तरिक्ष में रमण कर रहे हैं। ऋषि मुनियों की जो उड़ान है वह विज्ञान की बहुत ऊँची उड़ान है, परमाणुवाद की उड़ान है, एक एक शब्द को चित्र में लाया जाता है उन शब्दों के साथ में जब चित्र दृष्टिपात होने लगते हैं चित्रावलियों में तो मानव का जीवन बन करके रहते हैं, यदि

उसमें सतोगुणी चला आता है तो मानव का राष्ट्र पुष्ट हो जाता है। यदि उसी विज्ञान में, इन चित्रावलियों में अश्लीलता आ जाएं तो राजा का राष्ट्र नारकिक बन जाता है। आज मैं यह चर्चा देने नहीं आया हूँ।

विचार विनिमय यह कि भारद्वाज ने भगवान् राम को यज्ञशाला में सर्वस्व रूप को वर्णित किया और दृष्टिपात कराया। मुझे ऐसा स्मरण है कि वह याग छह माह तक रहा। 6 माह के पश्चात् उसकी पूर्णांहुति हुई। क्योंकि वह राष्ट्रीय याग था। भगवान् राम ने संसार को विजय करके यह याग किया था। उसका समापन हो गया। ऋषि मुनियों का हृदय प्रसन्न चित्त हो गया। विचार विनिमय क्या कि राष्ट्र को सुगन्धित बनाना है देव पूजा के द्वारा यागों के द्वारा, साकल्य के द्वारा, अपने कर्त्तव्य का पालन करना है।

आज का विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें यह चर्चा दे रहा था कि संसार में विज्ञान की यह कितनी ऊँची उड़ान है। आध्यात्मिक विज्ञान की उड़ान क्या है मैंने इससे पूर्व कई कालों में प्रकट किया है। जहाँ यह परमाणुवाद, यन्त्रवाद का समापन हो जाता है वहाँ से आगे आध्यात्मिकवाद प्रारम्भ होता है। भारद्वाज ऋषि कहता है कि जब यह पञ्च महाभूतों का विज्ञान इसी मार्ग को हो करके आध्यात्मिक वेत्ता बन जाता है। आध्यात्मिक वेत्ता का मार्ग क्या है? इस भौतिकवाद को जानना और भौतिकवाद को जान करके ही, सार ग्रहण कर और यदि सार न हो तो त्यागते चले जाना और मृत्यु को विजय करना आध्यात्मिकवाद कहलाता है। मृत्यु को विजय करने का नाम आध्यात्मिकवाद है। मृत्यु की चर्चा प्रकट करते हुए कई काल में तुम्हें कहा तपम् हृदयानि तपम् गच्छम् ब्रह्म लोकाः हे मानव! तू तपस्वी बन। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मचारी कलन्धी से मध्य रात्रि में कह रहे हैं कि चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं से प्रकाश दे रहा है। यह जो प्रकाश है यह सम्पन्न है, यह अमृत को बिखेर रहा है, इसी प्रकार मानव को अपनी सम्पूर्ण कलाओं को जानना है। मानव के द्वारा षोडश कलाओं से यह मानव शरीर निर्माण हुआ है और षोडश कलाओं को जानना यह हमारे यहाँ प्रकाशमय जीवन माना गया है। षोडश कला क्या है? यह मैंने कई कालों में तुम्हें वर्णन कराया। आज मैं षोडश कलाओं का वर्णन करना नहीं चाहता। षोडश कलाएं ध्रुवा, ऊर्ध्व, प्रसारण आदि

पांचों विषय तो प्रकृति के हैं, इन षोडश कलाओं में कुछ कलाएं लोक कला हैं और कुछ आध्यात्मिक कलाएं हैं।

मुनिवरों! देखो,! प्राण और मन के अन्तर्गत यह षोडश कलाएं आती हैं। इन षोडश कलाओं को जानना हमारा इस संसार सागर से पार हो जाना है। इनमें से कुछ वैज्ञानिक कलाएं, परमाणुवाद कलाएं हैं और कुछ आध्यात्मिक क्षेत्र में ले जाती हैं, मृत्यु को विजयी करा देती हैं। मैंने कई काल में वर्णन कराते हुए कहइा है कि हम अपनी मानवता को ऊँचा बनाने के लिए अपने जीवन में तपस्वी बनें और तप की मीमांसा करते हुए काल में कहा है कि माला को धारण करना चाहिए। जिस मात्रा को याज्ञवल्क्य मुनि महाराज जनक की सभा में वर्णन करते थे। ऋषि मुनि माला को धारण करते हैं और वही तप एक दूसरे में न होता यह संसार दृष्टिपात न होता। मानो जैसे यह संसार की रचना है, यह नाना प्रकार की वनस्पतियां खाद्य और खनिज पदार्थ हैं इनकी जो प्रतिष्ठा है वह पृथ्वी मानी जाती है और पृथ्वी की प्रिअतष्ठा जल माना जाता है और जल की प्रतिष्ठा यह जाति है और अग्नि की प्रतिष्ठा वायु मानी जाती है और वायु की प्रतिष्ठा यह अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष की प्रतिष्ठा यह तत्त्व है और यहाँ से ऋषि मुनियों का द्वितीय अध्याय प्रारम्भ होता है। देखो, नीचे से ऊर्ध्व गति को माला के मनके चले और नीचे को प्रारम्भ होते हैं। यह तत्त्व से दूसरे लोकों में रमण करना और सूर्य मण्डलों को जानना, चन्द्र लोकों को जानना, चन्द्र लोकों को जानने के पश्चात् गन्धर्व लोकों को और गन्धर्व लोकों को जान करके इन्द्र लोकों, और इन्द्र लोकों से प्रजापति को और प्रजापति ही हमारे यहाँ यागमय हैं और याग दक्षिणा में, दक्षिणा श्रद्धा में और श्रद्धा मानव के हृदय से उत्पन्न होती है। यह एक माला है जिसका ऋषि मुनि धारण करते हैं, जिज्ञासुजन धारण करते हैं, इस माला को धारण करने वाला आध्यात्मिक और भौतिकवाद दोनों से उपराम हो जाता है।

मेरे प्यारे! तुम्हें यह दृष्टिपात हो गया होगा कि हृदय से श्रद्धा और श्रद्धा से दक्षिणा और दक्षिणा से यज्ञ और यज्ञ से प्रजापति, प्रजापति से इन्द्र और इन्द्र से गन्धर्व और गन्धर्व से चन्द्रमा, चन्द्रमा से सूर्य, सूर्य से यह तत्त्व, यह तत्त्व से अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष से वायु

और वायु से अग्नि और अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और पृथ्वी से संसार की रचना होती है।
यह है बेटा! आज का हमारा वाक्य। आज के वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह, आज मैं उनका विस्तार प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ, उनकी मीमांसा करता रहूँगा। आज का विचार यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए इस संसार सागर से पार होना है। आज मैंने कुछ बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित किया है। बिखरे हुए पुष्पों को तुम्हें उच्चारण किया है। बिखरे हुए पुष्पों को तुम्हारे समीप एकत्रित किए हैं। यह है आज का विचार। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की महत्ता को जानते हुए, उसकी व्यापकता को जानते हुए, उसके विचार को जानते हुए अपनी अन्तरात्मा में धारण करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह है आज का हमारा वाक्य। कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा अब वेदों का पाठ होगा।

१९ 24 05 1976 पुष्प 26 पञ्च महायज्ञो के अनुष्ठान

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। जो ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला है वह महान् मेरा चैतन्य देव प्रभु कहा जाता है। उसका ज्ञान और विज्ञान इतना नितान्त माना गया है कि वह मानवीय हृदयों में समाहित होता हुआ इस सृष्टि चक्र को क्रियाशील बना रहा है। जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि परमपिता परमात्मा कैसा भव्य है, जो वह ऋषि मुनियों के हृदय में अथवा मानवीय हृदयों में सदैव ओत प्रोत रहने वाला है। आज का हमारा वेद का ऋषि कह रहा था कि यज्ञं गच्छत प्रभे यज्ञोवस्य देवाः वृतं लोकाः वेद का ऋषि यह कह रहा था, मेरे प्यारे! महानन्द जी की भी इतनी प्रेरणा

रहती है। मानो इतनी प्रेरणा बाध्य करती रहती है कि हम यज्ञों के सम्बन्ध में अपना कुछ विचार विनिमय करें। हमने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि जितने भी प्राणी यहाँ आते हैं, यह मानव ही नहीं जितना भी प्राणीमात्र है वह सर्वत्र एक याज्ञिक बना हुआ है, वह यज्ञ करने के लिए आया है। याग का अभिप्राय यह है। मानव के लिए ऋषि मुनियों ने पांच प्रकार के यज्ञों का चयन किया। जैसे प्रथम ब्रह्म यज्ञ कहा जाता है। द्वितीय यज्ञ का नाम देव यज्ञ है, तृतीय का नाम अतिथि यज्ञ है और चतुर्थ का नाम बलिवैश्वयज्ञ और पञ्चम का नाम भूत यज्ञ माना गया है, जिसको हम पितर यज्ञ भी कहते हैं। ये पांच प्रकार के यज्ञ हमारे यहाँ परम्परा से ही वैदिक साहित्य में निहित हैं।

जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि पांचों प्रकार के जो यज्ञ हैं, उनमें सबसे प्रथम ब्रह्म यज्ञ आता रहा है। ब्रह्म का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म का चिन्तन करना। प्रातःकाल में ब्रह्म की आभा को जानना और प्रातःकाल की अमृत बेला में ब्रह्म यज्ञ करना। ब्रह्म यज्ञ कहते हैं, जो ब्रह्मा को यज्ञमान बना करके स्वयं होता अथवा यज्ञमान बन करके अपना यज्ञ करता है, विचार विनिमय करता है, अनुसन्धान करता है, उसका नाम ब्रह्म यज्ञ कहलाया गया है।

जैसा हमने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि सृष्टि का सर्जन करने के पश्चात् परमपिता परमात्मा उसका नियन्ता बना हुआ है, अथवा उसको क्रिया दे रहा है, उसको क्रियाशील बना रहा है। तो वह जो चैतन्य देव है, वह जो मेरा प्रभु है, वह सृष्टि चक्र को चला रहा है, उनको गति दे रहा है। इसी प्रकार मानव के जीवन में भी उसकी प्रतिभा निहित रहती है। जैसे सृष्टि का जब प्रारम्भ होता है, तो उस समय परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा बनते हैं। यह आत्मा यज्ञमान बनता है। ये जो पञ्च महाभूत हैं, ये होता बनते हैं। यज्ञों की रचना हो जाती है। उस समय परमपिता परमात्मा सृष्टि रूपी याग का ब्रह्मा बना हुआ है, उद्गान गा रहा है, उद्गान हो रहा है। साथ गान हो रहा है, ऋत गान हो रहा है, वायु और अग्नि दोनों का मिलान हो करके गान गाया जा रहा है। वह देव कितना सुन्दर उद्गम उद्गार से यह सृष्टि याग प्रारम्भ हुआ। उसी

नियन्ता के नियन्त्रण में कार्य हो रहा है। आत्मा इस यज्ञशाला में कर्म करने वाला। उस याग को जानने के लिए बेटा! आत्मा रूपी यज्ञशाला में विराजमान है। आत्मा रूपी यज्ञमान कैसा सुन्दर आत्मा है, वह इस संसार को जानता रहता है, वह संसार में अनुसन्धान करता रहता है, लोक लोकान्तरों को जानता रहता है, विज्ञान में जाता है, तो कहीं आध्यात्मिक वाद में परिणत होता है।

कहीं भौतिकवाद में रूपावेश हो जाता है। तो यह नाना प्रकार की ऋतु वाला यह आत्मवत् अपना कार्य करता रहता है। क्योंकि वह यज्ञशाला में विराजमान है। यज्ञशाला में जो क्रिया होती है उसी क्रिया के अनुसार कहीं यह विचार करने वाला बन जाता है। कहीं भूत यज्ञ करने वाला लगता है, कहीं अतिथि यज्ञ होने लगते हैं, तो कहीं देव पूजा होने लगती है। वह ब्रह्म याज्ञिक क्या विचारता है कि मुझे ब्रह्म का चिन्तन करना है। वह कहीं समाधिस्थ हो जाता है। कहीं जनता में जनार्दन को स्वीकार करके कण कण में प्रभु का दिग्दर्शन करता है। ऐसा जो महापुरुष होता है जो अत्यवत् होता है। वह इस ब्रह्म यज्ञ को जानता है। सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म यज्ञ माना है। क्योंकि ब्रह्म कहते हैं, परमात्मा को और यज्ञ कहते हैं, उस संसार की रचना को और रचना हो करके यह संसार चल रहा है। एक लोक दूसरे में निहित हो करके गति कर रहा है। एक अग्नि और वायु मिल करके दोनों गति कर रहे हैं। अन्तरिक्ष और ऋत गति कर रहे हैं। यह ब्रह्माण्ड ऋत और सत् में दृष्टिपात आ रहा है।

विचार विनिमय क्या कि सबसे प्रथम यज्ञ हैं। पति पत्नी एक स्थान में विराजमान हो करके प्रातःकाल ब्रह्म यज्ञ करते हैं। ऋषि मुनि विराजमान हो करके ब्रह्म यज्ञ करते हैं। ब्रह्म का अभिप्राय कि ब्रह्म का चिन्तन। ब्रह्म की आभा को, ब्रह्म की सृष्टि को जानना। ब्रह्म की आभा को अपने में निहित करने का नाम ब्रह्म यज्ञ है।

द्वितीय यज्ञ का नाम देव पूजा कहा जाता है। जिसे देव यज्ञ कहते हैं। हमारे यहाँ दो प्रकार के देवता कहलाते हैं, एक देवता जड़ हैं और दूसरे चैतन्य होते हैं। जड़ देवता ये पञ्चमहाभूत हैं। पञ्च महाभूतों में उसकी रचना है। जैसे सूर्य, चन्द्र और नाना नक्षत्र, ये हमारे देवता हैं, ये देते रहते हैं। चन्द्रमा सोम अमृत प्रदान करता है। सूर्य हमें तेज

देता है जीवन देता है, ओज देता है, तेज की स्थापना कर देता है। पृथ्वी हमें सुगन्धि देती है, जल हमें अमृत देता है और रस देता है। तेज हमें वायु को प्रदान करती है। वायु हमें प्राण देता है और अन्तरिक्ष हमें शब्द देता है। यह कितना सुन्दर यज्ञ हो रहा है उस मेरे देव का स्वतः ही हो रहा है। जो मानव वाक्य उच्चारण करता है, वायु के भिन्न भिन्न भेदन माने हैं। आयुर्वेदाचार्यों ने वायु को सहस्रों धाराएं मानी हैं। विज्ञान ने लाखों अरबों धाराएं स्वीकार की हैं। आज मैं विज्ञान के युग में जाकर उन धाराओं का वर्णन करने नहीं आया हूँ।

विचार केवल यह देने के लिए आए हैं कि वह देव पूजा है। देव पूजा का अभिप्राय क्या है कि हम देव पूजा करें, पूजा का अर्थ है उनका सदुपयोग करना, उनको क्रिया में लाना। तो प्रातःकाल में यज्ञ करता है। देखो, राजा जनक जैसा प्रातःकाल में यज्ञ करता है, द्वापर काल में युधिष्ठिर जैसा प्रातःकाल में देव यज्ञ करता रहा है। भगवान् कृष्ण जब प्रातःकाल में यज्ञ होता रहता तो यज्ञ करते रहते थे। पत्नी और वे दोनों यज्ञ करते रहते थे। आज मैं यज्ञों के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं दूंगा। यह यज्ञ है इनको करना हमारा कर्त्तव्य है यज्ञ में जाना हमारा देवतव पूजन है यह देव पूजा कहलाती है। द्वितीय प्रकार का यज्ञ है। हमें अग्नि को सुगन्धित देना है, हम जितना लेते हैं दुर्गन्धि के बदले सुगन्धि प्रदान करें। हम वाणी मधुर बन करके वाणी का सुन्दर रस प्रदान करें और अग्नि को हम तेज देते चले जाएं, तेजस्वी बनें। जिसमें वायु की प्रतिक्रिया को जानते रहें और शब्द हमारा मधुर हो जिससे हमारा अन्तरिक्ष ऊँचा बने। ये पांच प्रकार की आभाएं कहलाई जाती हैं। जब यज्ञमान यज्ञशाला में विराजमान होता है, तो पुरोहित यही कहता है कि हे यज्ञमान! यह पञ्च महाभूत अग्नि ब्रह्म लोकः। ब्रह्म लोक में ले जाती है, यह पञ्च महाभूतों को जानने वाला पुरुष ब्रह्मलोक में चला जाता है। ऐसा वेद का ऋषि कहता है कि पांचों प्रकार के पञ्च महाभूतों को जानने वाला प्राणी ब्रह्म लोक में चला जाता है। अब जब वेद का मन्त्र, वेद का ऋषि ऐसा कहता है तो उसमें एक आश्चर्य आता है कि ऐसा वेद का ऋषि क्यों कह रहा है? आगे जब एक वेद का मन्त्र आया पञ्चम् भूतग प्रभे वृताः मन वृत्ति विस्तितों सूत्राः मा वा क्रित्यो मत प्रभि वृताः, अब

जब यह वेद का मन्त्र स्मरण आया तो इसमें और कुछ दृष्टिपात आने लगा। **जब इस वेदमन्त्र का विभाजन किया, विभक्त करके इसका सन्धिपात किया गया, तो इसमें क्या क्या निकला?** इसमें यही आया कि पञ्च महाभूत पांचों मनके हैं, और वह मनके एक ऋतु में पिरोएं हुए हैं और वह जो ऋतु और सत् है वह ओ३म् रूपी धागे में पिरोएं हुए हैं। जब ओ३म् रूपी धागे को जाना जाता है, उस सूत्र को जानने वालों को ब्रह्म ही ब्रह्म सदैव दृष्टिपात आता है और वही ब्रह्म कहलाया जाता है।
तो बेटा! यह हमारे यहाँ पञ्च महाभूतों की प्रतिक्रियाएं हमारे यहाँ देव यज्ञ कहलाया है, और देव पूजा इन पञ्च महाभूतों को जानता है। ये जड़ देवता हैं। परन्तु एक देवता हमारे यहाँ चैतन्य देवता हैं, ब्राह्मण देखो, वेद का पठन पाठन करने वाला उसको हम पुरोहित भी कहते हैं, उसको पराविद्या को जानने वाला भी कहते हैं, ब्रह्म के निकट चला गया है। हमारा यज्ञमान कहता है यज्ञशाला में हे पुरोहितो! आओ मेरे यज्ञ को पूर्ण करा करके मुझे परा विद्या में ले जाओ, मैं इस संसार से उपराम होना चाहता हूँ। जब इस प्रकार की आभाएं स्मरण आती रहती हैं तो वह ज्ञान और विज्ञान मानव को ऊर्ध्व पर ले जाता है। उसके पश्चात् यह पुरोहितम् ब्रह्मे। यह चैतन्य पुरोहित कहलाते हैं, यह प्रतम्! ब्रह्मो देखो, पुरोहितों के द्वारा यज्ञ होता रहता है। यज्ञ का अभिप्रायः है कि मानव को अच्छाइयों में परणित होना। सुन्दर धाराओं को, धर्म के मर्म को जानना। देव पूजा करना। उनको सुगन्धित करना यह यज्ञ कहलाया गया है। जहाँ यह यज्ञ है उसको देव यज्ञ कहते हैं। जहाँ दोनों चैतन्य और जड़ देवताओं की पूजा होती है। पूजा का अर्थ है उनको सदुपयोग में लाने का नाम पूजा कहलाई जाती है।
आगे चल करके वेद का ऋषि कहता है कि तृतीय जो यज्ञ है वह अतिथि यज्ञ है। अतिथि कौन होता है? अतिथि प्रभावृता। जो किसी की तिथि निश्चित न हो और वह श्रीमान गृह आ जाएं तो उसको अतिथि कहते हैं। उसका नाना प्रकार के पदार्थों को पान कराना, उदर की पूर्ति कराना उसको अतिथि कहते हैं। यज्ञमान कहता है कि अतिथि आ, तू मेरे गृह के साकल्य को पान कर, तू अपने पुण्य को मुझे दीजिए। देखो, पुण्यवान के गृहों में ही बुद्धिमान् अतिथि आते रहते हैं। कौन है? जो बुद्धिमान तपस्वी

होता है। वह जो गृह में आता है अतिथि बन करके वह अपने पुण्यों को त्याग देता है। जब वह गृह में त्याग देता है, तो वह पुण्याद पुण्याद देवस्तः। वेद का ऋषि कहता है कि वे पुण्यवात् पुरुष होते हैं, जिन गृहों में महापुरुष आते रहें और महापुरुषों की तरंगें होती रहें। वह अपने शब्दों के चित्रों को गृह में त्याग देता है। बेटा! मैं विज्ञान में जाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि मेरे प्यारे! महानन्द जी को भी दो शब्द उच्चारण करने हैं। विचार क्या कि मैं इस विचार को बहुत ऊर्ध्व गति में ले जाऊ। इतनी ऊँची उड़ान नहीं उड़ना चाहता हूँ। क्योंकि अतिथि का अभिप्राय यह है कि वह अपने पुण्य को त्याग देता है, और वह यज्ञमान के हृदय की आभा को अपने समीप ले जाता है और हृदय में प्रसन्नता को मुक्त कर देता है मानो वह अतिथि यज्ञ कहलाया गया है।

अब बलिवैश्व यज्ञ, बलिवैश्व है जो प्राणी के लिए अपने जीवन में सुगन्धि देते हैं। प्राणों को भी न्यौछावर कर देते हैं। उन पक्षियों के लिए जो वाणी से वाक् उच्चारण नहीं कर सकते। वाक् उच्चारण तो कर लेते हैं। परन्तु वह विद्या परिश्रम से तो जान पाता है। आज उन प्राणियों को देना हमारा बलिवैश्व यज्ञ है। अग्नि को देना, अग्नि उन्हें प्रदान कर देती है। अग्नि उसका हव्य बन करके उनको प्राप्त करा देती है उसको बलिवैश्व यज्ञ कहते हैं।

एक भूत यज्ञ कहलाया जाता है। जिसमें पुरोहित जन होते हैं और जितने पुरुष होते हैं उनमें माता और पिता भी आते हैं, उनका पूजन करना अर्थात उनका यथोचित् उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने का नाम उनकी पूजा कहलाई जाती है। आज जब उनकी सेवा की जाती है, उनका युक्त आदर किया जाता है, आचार्यों का भी और माता पिताओं का भी वह हमारे यहाँ पितर यज्ञ कहलाते हैं। पितर कौन होते हैं? पितर की बहुत विशाल व्याख्या है, माता पिताओं का नाम भी पितर है, राजा को भी पितर कहते हैं, पितर नाम आचार्यों का भी है, पितर नाम परमात्मा का भी है, पितर नाम अग्नि का भी है, पितर वायु को भी कहा गया है, पितर नाम अन्तरिक्ष को भी कहते हैं, पितर नाम यज्ञ को भी कहा गया है और पितर नाम हमारे यहाँ राजाओं का भी जो अधिराज होता है उसको भी पितर कहते हैं। पितर का अभिप्राय है कि जिससे हमारी रक्षा होती हो उसी

का नाम पितर कहलाया गया है। मैं पितरों की व्याख्या देने तो नहीं आया। समय मिलेगा मैं इसकी व्याख्या प्रकट करूंगा।

आज का विचार कि हम पञ्च महा यज्ञों के करने वाले बनें। ये पञ्च महा यज्ञ के करने वाले यज्ञमान अपने गृह को सुन्दर बनाता है। अपने गृह को पितर यज्ञा बनाता है, देव यज्ञी बनाता है, विचित्र यज्ञी बना करके इस संसार सागर से पार पार होता है। अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यज्ञाः वृतम् माम हृदया वस्यम् प्राति गतम् पूषण्याः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी कुछ यज्ञों के सम्बन्ध में अपनी विवेचना प्रकट कर रहे थे। मैं अपने वाक्य कुछ प्रकट करूं तो मानो सूर्य के समीप एक जुगनू का कार्य कर सकूंगा। विचार क्या है? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी पञ्च महा यज्ञों के सम्बन्ध में अपनी विवेचना प्रकट कर रहे थे। अपना व्यापक रूप प्रकट कर रहे थे कि यहाँ कितने प्रकार के होते हैं। परन्तु जब मुझे यह काल अथवा यह समाज स्मरण आने लगता है, तो मेरा अन्तरात्मा ऐसा विचित्र सा बन जाता है कि संसार को मैं किस रूपों में दृष्टिपात करूं? मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वाक्य प्रकट कराना चाहता हूँ कि जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है वहाँ सामाः गानाः यज्ञः रूपाः देवताः, वहाँ एक सुन्दर यज्ञ रूपों में मानों अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा यज्ञ को दृष्टिपात करता हूँ। जब मैं इस कर्मकाण्ड की यज्ञ वेदी पर प्रवेश करता हूँ, अथवा कर्मकाण्ड के क्षेत्र में प्रवेश करता हूँ तो ऐसा दृष्टिपात होता है कि न होने से कुछ होना सुन्दर माना जाता है। कर्मकाण्डों वृत देवाः हिरण्यम् ब्रह्म लोकाः। परन्तु जो कर्मकाण्ड की पद्धति है, वह विचित्र है। वह मानो प्रभावशाली है। रहा यह वाक्य कि आज मैं यज्ञमान को अपने हृदय से एक वाक्य प्रकट करना चाहता हूँ। हे यज्ञमान! तेरा हृदय सदैव ऊँचा बनता रहे। तेरे गृह में तेरी मानवता में सदैव मानवता का प्रसार होना चाहिए। देवता और यज्ञ हमें यही शिक्षा देते हैं कि मानव बनो, जैसे वृक्ष पर फल आने पर वह स्वयं अपने में नमः (झुक) जाते हैं इसी प्रकार धर्म और यज्ञ यह यज्ञमान का फल होता है। इस कार्य को करने के पश्चात् स्वयं ही मानव नम्र हो जाता है।

इसलिए नमः की आवश्यकता संसार में सदैव रहती है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्व शब्दों में यह कहा था कि प्रत्येक वाणी को नमः में परणित रहना चाहिए। नमः होना चाहिए। आज मैं हे ब्राह्मण! तेरा उद्गार सदैव ऊँचा बना रहे। मेरी हृदय से यह कामना रहती है कि हे ब्राह्मण! हे साम गान गाने वाले! देखो, साम गान तो किसी काल में गाया जाता था जब उदात्त और अनुदात्त स्वरों के सहित साम गान गाया जाता है तो देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं परन्तु आज वर्तमान के इस काल में पहुंच रहा हूँ। हे ब्राह्मण! तेरा कंठ तेरी मानवता सदैव ऊर्ध्व गति को प्राप्त होती रहे। तेरे गृह में सात्विकता का प्रसार होता रहे। जिससे सत् में रमण करने वाला प्राणी अपने मानवत्व को ऊँचा बनाता है।

रहा यह वाक्य कि मानव के जीवन में नाना आपत्तियां आती रहती हैं, जीवन में अन्धकार और प्रकाश दोनों का आ जाना स्वाभाविक कहलाया जाता है, उस स्वभाव को अपनी शोभाओं में रमण कर देना चाहिए।

आज का मानव कहता है कि यज्ञ तो पाखण्ड है। परन्तु जब मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव इस राष्ट्र को दूषित करना पाखण्ड नहीं है, तो क्या परमात्मा को न मानना पाखण्ड नहीं हैं, परमात्मा को अपने को न मानना भी तो पाखण्ड कहलाया जाता है। मैं पाखण्ड की व्याख्या कहाँ तक कर पांऊगा। अग्न्याधान करने से देवताओं का यदि दूत बन गया है, और दूत बन करके वह सुगन्धित कर रहा है। देवताओं को वह ओज दे रहा है, इसको मानव पाखण्ड कहता है तो यह मानव का दुर्भाग्य नहीं तो क्या है? क्योंकि पदार्थ विद्या को न जानने वाला प्राणी उसको पाखण्ड की दृष्टि से उच्चारण करता है। क्योंकि वह पदार्थ विद्या को नहीं जानता, वह परमाणु विद्या को नहीं जानता, जो परमाणु विद्याशाली होते हैं। परन्तु उनका गम्भीर अध्ययन नहीं होता। यदि उनका गम्भीर विचार हो तो इसको कौन पाखण्ड कह सकता है। प्रत्येक मानव पाखण्ड को उच्चारण कर देता है परन्तु पाखण्ड की मीमांसा नहीं जानता। पाखण्ड उसे कहा जाता है जो अपने मानव जीवन को अन्धकार में ले जाता है, अज्ञान में ले जाता है वह

महान पाखण्ड कहलाया जाता है।

मैं कहाँ चला गया हूँ, मैं पाखण्ड की भी चर्चा देने नहीं आया हूँ। मैं केवल यह अपने पूज्यपाद गुरुदेव को विचार देने आया हूँ, अपना वाक्य प्रकट करने आया हूँ कि भगवन्! यह जो समाज है, यह जो काल है यह कहाँ जा रहा है? आधुनिक राष्ट्र का जो समाज है, राष्ट्रीय जो पद्धति है वह कहाँ जा रही है? मैं राष्ट्र के ऊपर तो अपने विचार देने नहीं आया हूँ, मैं तो केवल हे उद्गान गाने वाले ब्राह्मण! तू अपने उद्गार को ऊँचा बनाता चल। तेरी वाणी में सरसता होनी चाहिए। तेरी वाणी में पवित्रता होनी चाहिए जहाँ वेदों का पठन पाठन करना बहुत जरूरी है, परन्तु वेद के पठन पाठन के पश्चात् गम्भीर होना यह परमात्मा की कृपा हो जाएगी तो गम्भीर प्रायः दृष्टि आने लगेगी। प्रत्येक मानव को गम्भीर बनना है। प्रत्येक मानव को गम्भीर बन करके अपने मानवीय यज्ञ को ऊँचा बनाना है। जिससे यज्ञ पवित्र बन करके हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी यज्ञों के सम्बन्ध में अपना विचार दे रहे थे। परन्तु मुझे अब आज का राष्ट्रवाद स्मरण आता है, इस राष्ट्र के चयन की चर्चाएं आती हैं, तो मेरा हृदय कभी कभी दुःखित हो जाता है। कहीं कहीं व्याकुल हो जाता है और यह कहता है कि अब मैं क्या करूं? मानो देखो, वे परमपिता परमात्मा की महत्ता, उसकी प्रतिभा को अपनाना ही हमारा कर्त्तव्य कहलाया जाता है, उस महत्ता को अपनाना हमारी मानवता कहलाई जाती है। हे यज्ञमान! तू सपत्नीक अपने जीवन को ऊँचा बना। मेरी तो सदैव यह कामना रहती है कि तेरा जीवन ऊँचा बना। मेरी तो सदैव यह कामना रहती है कि तेरा जीवन ऊँचा बने और गृह में सदैव प्रसन्न रहने वाले प्राणी हों। बालक बालिकाएं दर्शनों में पारायण होने चाहिए। ऐसी मेरी कामना रहती है। हे होताजनों! तुम यज्ञमान को ऊँचा बनाओ। तुम यज्ञमान के लिए यज्ञ करो। मानो यज्ञं ब्रह्म गच्छो योनि वृताः यज्ञः। वेद के ऋषि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि यथम् बृहे योनिमता वृतेः। मानो यह संसार परमात्मा रूप, यह प्रकृति रूप जो वृत्तियां हैं, ये योनि रूप में संसार को जन्म दे रही हैं। इसी प्रकार मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि यह संसार विचित्र बना रहता है। ब्राह्मण!

तू उद्गान गाने वाला बन। हे ब्राह्मण! जब समाज में, राष्ट्र में ब्राह्मण होता है, विवेकी ब्राह्मण होता है, उस काल में यह समाज अबरेत (उन्नत) बन जाता है।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कहा था, उन्होंने कई काल में भारद्वाज की चर्चा प्रकट की। आज मैं यह उच्चारण कर सकता हूँ कि कुछ काल के पश्चात् यह विज्ञान पराकाष्ठा पर पहुंचेगा और विज्ञान का दुरूपयोग होना यह भी पराकाष्ठा पर पहुंचेगा और उसके पश्चात् रक्त भरी क्रान्तियां उत्पन्न हो जाएगी समाज में। परिणाम क्या कि भारद्वाज मुनि ने पूज्यपाद गुरुदेव के शब्दों में यही कहा था। पूज्यपाद गुरुदेव को मैं विज्ञान की चर्चा करता रहता हूँ। आज के मानवीय क्षेत्र में जो विज्ञान है, वे अन्तरिक्ष के गृहों में रमण कर रहे हैं, कहीं चन्द्रमा की परिक्रमा हो रही है, कहीं मंगल में जाने वाले यन्त्रों का मानो देखो, मंगल में जा करके अपनी आभा में जाने वाले हैं, कई प्रकार के रूढ़िवादी प्राणी हैं, जो आज के विज्ञान को यह कहते हैं कि मंगल में कोई नहीं जा सकता। कुछ रूढ़िवादी ऐसे हैं, कि चन्द्रमा में कोई नहीं जा सकता। कुछ ऐसे रूढ़िवादी हैं कि मंगल में कोई नहीं जा सकता। कुछ ऐसे रूढ़िवादी हैं कि जो विज्ञान के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। वे क्यों नहीं करते? उसका मूल कारण है रूढ़ि। वह धर्म की रूढ़ि है, वह धर्म की रूढ़ि नहीं, वह राष्ट्र के विनाश की रूढ़ि कहलाती है। वह धर्म की रूढ़ि नहीं हैं। जैसे मुहम्मद के मनाने वाले हैं, ईसा के मानने वाले हैं और भी नाना जो विज्ञान के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते वे ऐसे रूढ़िवादी हैं कि राष्ट्र का विभक्त करने वाले ही रूढ़ि बने हुए हैं। क्योंकि राजा समाज में सुमति न होने के कारण विचारों का परिवर्तन नहीं कर सकता समाज में। क्योंकि यदि राजा पवित्र हो और महाभारत काल को दृष्टिपात करें, त्रेता के काल को दृष्टिपात करें, उससे पूर्व काल को दृष्टिपात करें तो एक ही धर्म के मर्म को जानने वाले प्राणी हों, रूढ़िवाद को त्यागने वाला समाज हो। विज्ञान उसमें निहित हो तो देखो, वह जो राष्ट्र और समाज है, वह ऊँचा बनेगा और जब यहाँ दो प्रकार के प्राणी होते हैं, एक तो विज्ञान के अस्तित्व को नहीं मान रहा है और मृत्यु के अस्तित्व को नहीं मान रहा है, एक कहता है, न मृत्यु है। यह जो समाज है क्या है? यह विज्ञान से, अपनी बुद्धि से स्वतंत्र हो करके जब नहीं

विचारता परमात्मा के राष्ट्र को और धर्म के मर्म को तो वह रूढ़ि बन करके राष्ट्र के लिए विभक्त बनाने वाला एक समूह बन जाता है और समूह बन करके राजा को नाना प्रकार की क्रान्तियों में परिणित करके वह समाज राष्ट्र के बटवारे में प्रसन्न युक्त हो जाता है। हे राजा! यदि तू समाज को ऊँचा बनाना चाहता है तो रूढ़ियों को समाप्त करने का प्रयास कर। तेरे राष्ट्र में महत्ता आ जाएगी। तेरे राष्ट्र में दार्शनिकता और विवेक आ जाएगा। इसलिए आज तुझे विचारना है कि तू अपने राष्ट्र में एक महत्ता को लाने का प्रयास कर। मैं इन वाक्यों को इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ वेद में एक मन्त्र आता है कोई इस नियम को नहीं मानेगा तो मेरा क्या कर सकता है परन्तु मेरे यह उद्गार अन्तरिक्ष में गति करें।

आज का हमारा विचार क्या कि राजा को सुन्दर बनना चाहिए। राजा को पवित्र बन करके अपने राष्ट्र में धर्म और मानवता का प्रसारण करके सबसे प्रथम रूढ़िवाद को समाप्त करना चाहिए। जब समाज में रूढ़ि चली जाती हैं तो विचारों में भेदन नहीं होता और जब विचारों में भेदन नहीं होता तो रक्त भरी क्रान्तियां भी नहीं होती। विचार विनिमय हमारा यह है कि हम क्रान्ति को लाना चाहते हैं। परन्तु क्रान्ति तो स्वतः आ जाती हैं। वह क्रान्ति कैसे आती है? जब विज्ञान का दुरूपयोग होने लगता है। **मेरे पूज्यपाद गुरुदेव निर्णय कराते रहते हैं कि ब्रह्मचारी विद्यार्थियों को उस चित्रावलियों में नहीं जाना चाहिए। जिन चित्राविलयों में रमण करके मानवता समाप्त हो जाती है। विज्ञान का दुरूपयोग होता है।** विज्ञान के दुरूपयोग को पान करने वाला राजा नहीं होना चाहिए। अन्यथा यह राष्ट्र, यह समाज अपवित्र बन जाता है। इसलिए राजा को चाहिए कि अपनी राष्ट्रीय पद्धति में ऐसा कोई विचार, ऐसा कोई चित्रण नहीं होना चाहिए जिससे अश्लीलता आ जाए। ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाए, ब्रह्मचारिणियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाए। संघर्ष हो करके क्या बनता है कि नाना प्रकार के रोग बलवान हो जाते हैं। नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं, और उन रोगों के हो जाने का परिणाम क्या होता है कि शरीरों में नाना विष आ जाते हैं, और विष के आने पर और नाना

प्रकार के रोग हो जाते हैं। उसका परिणाम यह है कि वह रोगों में परणित रहते हैं। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को इन वाक्यों को निर्णय कराने जा रहा हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में विज्ञान को जानना चाहिए। आज का मानव विज्ञान में गति कर रहा है, आज का मानव नाना प्रकार के अणु, महा परमाणुओं को एकत्रित करने में लगा हुआ है। एक ऐसा यन्त्र आज का मानव बना रहा है, जैसे सूर्य की किरणें आती हैं और सूर्य की किरण प्राणवर्धक हैं, परन्तु से जो प्राणवर्धक वायु है, उन परमाणुओं को यन्त्रों में सींच लेता है और वह रेखा जो सूर्य पृथ्वी के अन्तर्गत रेखाएं हैं, सूर्य की किरणें शीतल हो करके पृथ्वी पर आती हैं। वह रेखा उन किरणों को नग्न बना देती हैं। क्योंकि प्राण तो उसमें से खींच लिए यन्त्र ने और जिस राष्ट्र को भस्म करना चाहेंगे उससे वह मन्त्र प्राणवर्धक वायु को अपने में धारण करने के कारण वह राष्ट्र का राष्ट्र, प्राणी मात्र उस राष्ट्र का भस्म हो जाएगा। आज का वैज्ञानिक इन यन्त्रों को निर्माण करने जा रहा है। भारद्वाज मुनि महाराज ने तेरह लाख वर्षों पूर्व इन यन्त्रों को जान लिया था। परन्तु आज का वैज्ञानिक विश्लेषण कर रहा है। ऐसे ऐसे मन्त्र जिससे राष्ट्र का राष्ट्र भस्म हो जाए। ऐसा यन्त्र की राष्ट्र अपने आँगन में विराजमान है, और लगभग एक सहस्र योजन की दूरी पर वह राष्ट्र को भस्म करके वह यन्त्र विश्वस्त हो सकता है। ऐसा वैज्ञानिक बन रहा है, परन्तु हे भोले! हे प्राणियो! यदि तुम विज्ञान को ऊँचा बनाते चले जा रहे हो इसका मैं कोई विरोधी नहीं हूँ, परन्तु जहाँ प्राणियों के नष्ट होने के लिए प्रयास किया जाता है। अरे, वहाँ प्राणियों के जीवन रक्षा का भी तो कोई प्रयास होना चाहिए। प्राणीमात्र में जीवन होना चाहिए और वह जीवन कैसे आएगा? वह विवेक से आएगा, आध्यात्मिक वाद से आएगा।

आज का समाज, राष्ट्र विज्ञान को ऊँचा बनाता चला जा रहा है। आध्यात्मिकवाद को तिलांजलि प्रदान कर दी है। उसका परिणाम क्या होगा? उससे रक्त भरी क्रान्ति आ करके समाज अग्नि के मुख में परणित हो जाएगा। मैं उन प्राणियों को सौभाग्यशाली स्वीकार करता हूँ, जो प्राणी याग जैसे कर्म में अपना विश्वास करते हैं। जो याग है, वे शब्द अन्तरिक्ष में जाते हैं, सुगन्धि युक्त मानो वही चित्र बन करके अन्तरिक्ष में वायु का

विभाजन करते हैं। तरंगों का विभाजन करते हैं, सुगन्धि को देते हैं वही तो मानव का जीवन बन करके रहता है।
मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में वर्णन कराते हुए कहा है, परन्तु जब मैं आधुनिक काल के राष्ट्र नायकों को दृष्टिपात करता हूँ, तो वह मुझे ऐसा विचित्र सा प्रतीत हो रहा है कि जिस समाज में जिस काल में विचारक पुरुष नहीं रहते राष्ट्र में, विवेकी पुरुष नहीं रहते, अरे, उस राष्ट्र का आत्मा ही वह विचारक पुरुषों का है, यदि वही नहीं रहेंगे तो यह राष्ट्र कितने समय तक जीवित रहेगा? मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह राष्ट्र बहुत सूक्ष्म समय तक जीवित रहेगा और इसमें अग्नि के काण्ड हो करके अपनी आभा में नष्ट हो जाएंगे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक वाक्य प्रकट कराते रहते हैं। वह बहुत पुरातन काल का वाक्य है। महाराजा भस्मासुर की गाथा प्रकट करते हैं। महाराजा भस्मासुर महाराजा शिव के शिष्य कहलाते थे। उन्होंने जब महान् तप किया तो तप करने के पश्चात् शिव के द्वारा (समीप) एक कंगन था, वह कंगन उन्हें प्रदान कर दिया और यह कहा कि जिसके मस्तिष्क के ऊपर ले भाग में यह कंगन छू जाएगा और जो तुम वाणी से कहोगे वही यह कर पाएगा, उसको जीवन देना चाहते हो जीवन दे सकोगे। मृत्यु को उच्चारण करना चाहोगे तो मृत्यु आ जाएगी। महाराजा भस्मासुर ने वह कंगन स्वीकार कर लिया और एक समय वह तप करने के पश्चात् महाराजा कैलाश के द्वारा पहुंचे। महाराजा शिव के द्वारा पहुंचे और वहाँ नृत्य होने लगा तो महाराजा भस्मासुर ने यह कहा कि हे शिव! मुझे तो यह सती चाहिए। वह सती पर मोहित हो गया। मोहित हो करके यह कहा यह सती चाहिए। शिव महाराज बोले अरे, भस्मासुर! ऐसा क्यों? उन्होंने कहा कि यदि नहीं दोगे तो मैं इस कंगन से तुम्हें भस्म करूंगा। वह कंगन उन्हीं के प्राणों का पिपासु बन गया, शिव के प्राणों का पिपासु बन गया। महाराजा शिव ने कहा कि मुझे कुछ अवकाश दिया जाए। वह विष्णु के द्वारा पहुंचे, विष्णु ने कहा कि इसको हम नहीं जानते। इन्द्र के द्वारा पहुंचे परन्तु इन्द्र ने भी यही उत्तर दिया। ब्रह्मा के द्वारा पहुंचे उन्होंने भी यही उत्तर दिया। अन्तिम में क्या हुआ अब मैं क्या करूं? बुद्धिमान ऋषि मुनियों की सभा में पहुंचे, दार्शनिक का सम्मेलन हो रहा था, ऋषि

मुनियों ने कहा कि हे शिव! तुम ऐसा करो कि महाराजा! भस्मासुर का और सती दोनों का नृत्य कराओ और नृत्य करते करते जहाँ सती का हाथ जाएगा वहीं भस्मासुर का और स्वयं जब उनका भुज, वह कंगन उनके सिर के ऊपर ले भाग में जाएगा, उस समय तुम भस्म कह देना। वह स्वतः भस्म हो जाएगा। यह युक्ति ऋषियों ने प्रकट कराई। अब महाराजा शिव भस्मासुर के द्वारा आये। भस्मासुर ने कहा कि कहो शिव मुझे सती को प्रदान करो। उन्होंने कहा कि मैं प्रदान करने के लिए युक्त हूँ। परन्तु सती का नृत्य मुझे बहुत प्रिय लगता है तुम भी इसके साथ में नृत्य करो, ऐसा ही नृत्य करो जैसा सती करे। महाराजा भस्मासुर बोले बहुत प्रिय! उनका नृत्य होने लगा। पार्वती सती का जहाँ भी भुज जाता था वहीं उनका भुज पहुंचा, जब कंगन ऊर्ध्व भाग में पहुंचा, कंठ के ऊपरले भाग में महाराजा शिव ने भस्म कहा तो स्वतः उस कंगन से भस्म हो गया।

परिणाम क्या कि आज का जो विज्ञान है वह भस्मासुर की भांति है। यह समाज अपने ही विज्ञान में स्वतः नष्ट हो जाएगा वह काल आने वाला है। इसी प्रकार यह जो विज्ञान है यह बहुत ऊर्ध्व गति वाला विज्ञान है। अरे, भोले प्राणियों! तुम जानते नहीं कि परमात्मा का प्रकाश कहाँ नहीं है, कौन सा स्थान ऐसा है, जहाँ परमात्मा का प्रकाश नहीं है, अरे, रूढ़ि त्यागने का प्रयास करके विज्ञान के क्षेत्र से होते हुए तुम आध्यात्मिक मार्ग को प्राप्त करो यदि तुम महत्ता चाहते हो। मानव याग चाहता है, मानव जीवन को चाहता है, राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है, तो विज्ञान को जान करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर जाओ जिससे तुम्हारा मानवीय जीवन सुन्दर बन जाए।

मेरे अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई काल में प्रकट कराते हुए कहा कि यह समाज कहाँ जा रहा है? आधुनिक काल का जो राष्ट्रवाद है, वह विचारक नहीं है, यदि विचारक होता तो एक धर्म वैदिक, वैदिक पताका होनी चाहिए, वही पताका (ओ३म् की) तुम्हारा राष्ट्रीय ध्वज होना चाहिए। उसी ध्वज के द्वारा तुम अपने राष्ट्र में एक ध्वजा को ले करके मानो तुम एकता को लाना चाहते हो तो सबसे प्रथम रूढ़ि को समाप्त करना होगा। यदि रूढ़ियां समाप्त नहीं हुई तो एकता कदापि भी नहीं ला सकते। क्योंकि रूढ़ि

क्या है? वह राष्ट्र को स्वप्नवत दृष्टिपात करती रहती है। रूढ़ि कहते हैं कि हमारा आगे जन समूह आने वाला है, हमारी राष्ट्र की पद्धतियां बनेंगीं, ऐसा विचार जिस राजा के समाज में रूढ़ियों में हो। हे राजा! यदि तू राजा बनना चाहता है, समाज को ऊँचा बनाना चाहता है, धर्म और विज्ञान को ऊँचा बनाना चाहता है, तो इन रूढ़ियों को समाप्त करता चल। इनको वास्तविक मार्ग को देता चल और वास्तविक मार्ग के और विज्ञान के द्वारा प्राप्त होगा। आज इस सम्बन्ध में मैं कोई विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। जो मानव विज्ञान के विज्ञान को भी स्वीकार नहीं करता, ज्ञान को भी स्वीकार नहीं करता वह कहता है कि प्रभु ही जाने। अरे, प्रभु तो जानता ही है, प्रभु तो सबको जानता है परन्तु जो तुम्हारी अन्तरात्मा में विराजमान है, तुम्हारी अच्छाईयों में भी तो परमात्मा है, अच्छाइयों को लाने का प्रयास तो करो, अच्छाइयों को लाना ही तो तुम्हारा जीवन है। याग में आहुति देना वह परमात्मा का संसार रूपी याग जो सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न किया वह प्रारम्भ हो रहा है, वह चल रहा है याग उसमें अच्छाइयों की आहुति दो। और दूरितों को समाप्त करो। यही तो तुम्हारा जीवन है, इसको तो मानव जानता है। प्रभु के क्षेत्र में जाते रहो और अपने में प्रयास करते रहो। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि हे प्रभु! ऐसी प्रार्थना करो जिससे राष्ट्र नायकों की बुद्धि पवित्र बन जाएं। अशुद्ध प्रकृति न रह करके इस राष्ट्र को अशुद्ध न बनाते चले जाएं। वह निस्वार्थ हो करके राष्ट्र को अशुद्ध न बनाते चले जाएं। वह निस्वार्थ हो करके राष्ट्र को ऊँचा बनाएं, स्वार्थ में आ करके खड्ड में न जाएं ऐसी मैं प्रभु से याचना करता हूँ।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में आया तो एक समय उन्होंने आश्रम से प्रस्थान किया भिक्षा के लिए। क्योंकि याग के लिए कुछ कर्म काण्ड युक्त करना था। तो वह सौमनोत नामक राजा के यहाँ पहुंचे, सौमनतुक नाम का राजा यह मनु वंश में था। उनकी पत्नी का नाम सुशीला था। राजा और वे दोनों अपने गृह में स्वयं अपना कला कौशल भी करते थे। उनके कृषि का उद्योग था। वे कृषि में अन्न उत्पन्न करते थे। गऊ उनके द्वारा थी, गो घृत के द्वारा और अपनी कृषि करके उस

अन्न को पान करते थे। और राष्ट्र को पालन करते थे। प्रजा को कर्त्तव्य में लाने का प्रयास करते थे। उस समय मैं साधना करता था। पूज्यपाद गुरुदेव मुझे राजा के यहाँ ले गए। राजा ने स्वागत किया, चरणों को छू कर आसन को त्याग दिया, राज स्थली को त्याग दिया और उनके चरणों में ओत प्रोत हो करके बोले कि गुरुवर! कैसे गमन हुआ? कैसे कष्ट किया? मुझे वहीं से आज्ञा दे देते। मैं आपके द्वारा आता और राष्ट्रीय वाहन में लाने का प्रयास करता। गुरुदेव ने कहा कि कोई बात नहीं राजन् हम तुम्हारे आसन पर आए हैं, तुम्हारे आसन को दृष्टिपात करने की उत्कृष्ट इच्छा थी। राजा ने कहा कि आप क्या पान करोगे? तो गुरुदेव कहते हैं कि हम तुम्हारे राष्ट्र का भोजन प्राप्त नहीं करेंगे। राजा कहता है कि प्रभु क्यों? मेरे राष्ट्र का जो अन्न है वह पाप का अन्न नहीं है। मेरे राष्ट्र का जो अन्न है वह स्वयं मेरी पत्नी और मैं (हम दोनों) कला कौशल करते हैं। कृषि में उद्गम करते हैं और उस अन्न से हम अपने उदर की पूर्ति करते हैं। तो पूज्यपाद का हृदय गद् गद् हो गया। उन्होंने नाना पदार्थों का पान कराया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो वह काल स्मरण है, परन्तु कुछ अन्न पान किया। राजा हो तो ऐसे हों। मैं प्रभु से यही कहता हूँ कि ऐसे विवेकी राजा होने चाहिए। स्वार्थी राजा नहीं होने चाहिए कि राष्ट्र नष्ट हो जाएं या न रहे परन्तु हम राज स्थली को न त्यागें।

आज का समाज कहता है, आज का संन्यासी, आज का तपस्वी वास्तव में तो तपस्वी ही नहीं है और कोई तपस्वी राजा के द्वारा चला भी जाएं तो राजा अपनी राजस्थली को त्यागने के लिए तत्पर नहीं है। क्यों नहीं है कि साधु ही इस राष्ट्र को न अपना ले। यह प्रकृति बनी हुई है, आज के राष्ट्र की कि यह साधु ही न अपना ले राष्ट्र को और साधु की भी यह प्रवृत्ति है कि यदि उसे उस स्थली पर नियुक्त कर दिया जाएं, तो हो सकता है कि वह राज स्थान को त्यागने के लिए तत्पर न हो। इस प्रकार का समाज का जीवन जब बन जाता है, तो समाज कैसे ऊँचा बनेगा? मैं जानना चाहता हूँ कि आध्यात्मिकवाद कैसे पनपेगा? आज जब मैं साधु के द्वार पर जाता हूँ, आधुनिक काल के साधु को विचारता हूँ तो द्रव्य चाहता है, द्रव्यपति बनना चाहता है, ऊँचे ऊँचे भवनों में ऊर्ध्व में रहना चाहता है, **वह हमारी भांति वायु सेवन करके अपना विचरण करना**

नहीं चाहता। क्योंकि वह उस विद्या को जानता नहीं, वेद का अध्ययन नहीं करता। वे तो कहते हैं कि हम तो भगवान् हैं। भगवान् की पूजा करो। मानो वे उस सर्वत्र रहने वाले भगवान् को स्वीकार नहीं कर पाते। इसीलिए यह अज्ञान आ गया है। यह क्रियात्मक जीवन न रह करके राजा उनका आदर नहीं करता। राजा उनका कुछ सूक्ष्म आदर करता है, तो उनको अभिमान आ जाता है कि राजा भी मेरी आज्ञा का पालन करता है। अरे, भोले साधुओ! अरे, राजा! तुम्हारा राज साधु से होता है, साधु राज से नहीं होता। क्योंकि साधु को राज्य ऊँचा बना देता है। परन्तु राजा राष्ट्र को ऊँचा कदापि नहीं बना सकता। इसीलिए मैं उच्चारण कर रहा हूँ, क्योंकि वह राजा साधु ही प्रकृति के होते हैं, जो स्वयं कला कौशल करते हैं।

आज का विचार क्या? भस्मासुर की चर्चा कर रहा था। ऐसा जो शिव है जो मानो ब्रह्मे वृताः परमात्मन् ब्रह्मे लोकाः। आज का विज्ञान कहता है कि परमात्मा नहीं क्योंकि परमात्मा के बिखरे हुए कंगन रूपी कणों को एकत्रित करके वैज्ञानिक बन रहा है, और फिर कहता है कि परमात्मा है ही नहीं। तो यह कैसा आश्चर्य दृष्टिपात करता हूँ। अरे, वह कंगन जिससे तुमने निर्माण किया है वे कण तो प्रभु! के ही बिखेरे हुए हैं। वे कण तो प्रकृति के ही हैं। उसके पश्चात् भी तुम यह कहते हो कि परमात्मा है ही नहीं अरे, परमात्मा को तो तब जाना जाता है, जब आत्मा के चक्षु स्पष्ट हो जाते हैं। प्रकाश में आ जाते हैं। अरे, जब तुम इन नेत्रों से यह दृष्टिपात करना चाहते हो तो दृष्टिपात नहीं होगा अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा भी पऊंगा। उच्चारण मैं यह कर रहा था, मैंने अपना सूक्ष्म सा अपना विचार दिया है और वह विचार ऐसा है जिन विचारों से हमें आश्चर्य हो रहा है, आश्चर्यचकित हो रहा हूँ। मैं आज के यज्ञमान को अपने शुभ हृदय से यह उच्चारण करने आया हूँ कि इनका आयु दीर्घ बने, सौभाग्य अखण्ड बना रहे जिससे शुभ कार्यों में प्रवृत्ति बनी रहे हे ब्राह्मण! तेरी कंठ में जो हृदयग्राही वाणी है, वह पवित्र बनती हुई शरदः शतम् शरदः शतम्, मानो सहस्रों वर्षों की आयु नहीं और भी विशेष आयु हो। जिससे तुम यौगिकवाद को प्राप्त होते हुए अपने मानव जीवन को सुन्दर बना सको। ऐसा मेरा सदैव वाक्य रहता है अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से

आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य...............मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने कुछ विचार प्रकट किए। इनके विचार बड़े महान् विनोदमय विचार थे, विनोद में क्या मुझे ऐसा प्रतीत होता रहता है इनके हृदय में विडम्बना रहती है। वह जो विडम्बनित हृदय है जिससे विडम्बना रहती है वह इन्हें मानो समाज को आभा से युक्त ब्रह्म लोकाः, कोई वाक्य नहीं। यह तो समाज का परिवर्तन है, होता रहता है। समाज में किसी काल में रूढ़ियां भी हैं, किसी काल में महत्ता भी है, यह तो परम्परा से प्रभु का चक्र है चल रहा है, चलता रहेगा। जैसा मेरे पुत्र ने कहा है उसके आधार पर ही यज्ञमान तुम्हारा सौभाग्य अखण्ड बना रहे, जीवन में ऐसे महान् कार्य और अपने में अभिमान की प्रतिभा को समाप्त करके नम्र बनते हुए जीवन को ऊँचा बनाते चले जाओ, ऐसी मेरी सदैव कामना महानन्द जी के साथ रहती है। अब हमारा यह विचार समाप्त अब वेदों का पाठ होगा।

२० अतिथि 006 पुष्प 25 विज्ञान ही याग है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। क्योंकि जितना भी यह जगत आज हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह मेरे प्यारे! प्रभु की एक महती विज्ञानशाला ही दृष्टिपात आ रही है। यहाँ प्रत्येक वस्तु पर जब अनुसन्धान किया जाता है, तो उस को विज्ञान की दृष्टि से हम यह उच्चारण करने लगते हैं कि वास्तव में यह जो जगत है अथवा यह जो शब्दावलियों का जगत दृष्टिपात आ रहा है मानो इस अन्तरिक्ष में प्रभु की उस महान विज्ञानशाला में जो भी मानव क्रिया कर रहा है मानो वह वाणी के द्वारा, कर्म के द्वारा वचन और प्रीति के द्वारा और भी नाना प्रकार की जो विचारधाराएं हैं उनका यदि हम मूल स्रोत विचारते हैं तो यह सर्व जगत प्रभु की विज्ञानशाला है इसमें बेटा! होता जन

नित्यप्रति अनुसन्धान कर रहे हैं।
हमारे यहाँ पुरातन काल में बहुत समय हुआ जब दार्शनिक जन विचार विनिमय करने लगते थे और उनका केवल एक ही विचार विनिमय होता था कि हम प्रभु के उस विज्ञान मय जगत को दृष्टिपात करना चाहते हैं। अथवा उस पर अनुसन्धान करना चाहते हैं। अनुसन्धान एक ऐसा शब्द है जो प्रायः मानव को विभूषित करता है। मानव की विचारधारा को एक श्रृंखला में मानो एक सभा में रमण कराने वाला है। हम प्रभु के विज्ञान को जब दृष्टिपात करते हैं इसमें मानव की वाणी का क्या स्वरूप बनता है? मानव जो मन से विचार करता है उसका क्या स्वरूप बनता है? तो बेटा! ऐसा प्रतीत होता है कि वायु की तरंगें इस प्रकार की हैं कि जिनसे प्रत्येक मानव के शब्दों का भी शोधन होता है। मानो जो ऊँचा ऊर्ध्व गति वाला जो शब्द है वह द्यु लोक में चला जाता है और मुनिवरों! जो अशुद्ध शब्द है वह वायु की तरंगों में, अग्नि की धाराओं में, जल के प्रवाह में मुनिवरों! देखो, वह तरंगों में तरंगित हो करके, वही अशुद्ध वाक्य मानव के समीप नाना प्रकार की रूप रेखा बन करके वह स्वतः ही मानव के समीप आ जाता है।
विचारना यह कि वह जो शब्द है या वह जो अशुद्ध वाक्य है अथवा हम हृदय से करते हैं वाणी से करते हैं किसी भी प्रकार का अशुद्ध वाक्य हो, वह तरंगों में इस प्रकार तरंगित होता है वह जल की धाराओं में रमण करने लगता है मानो वायु की तरंगों में तरंगित हो जाता है तो मुनिवरों! वही अशुद्ध वाक्य समाज के द्वारा अति वृष्टि अनावृष्टि अथवा रक्तभरी क्रान्तियों में वही अशुद्ध वाक्य बेटा! परिवर्तित हो करके समाज के द्वारा वही स्वतः समाज में आ जाता है। तो हमें इन वाक्यों पर विचारना है।
हम वास्तव में यह विचारने के लिए संसार में आते हैं कि हम कोई भी अशुद्ध कर्म न करें। हम वाणी से यदि उच्चारण करें तो वह मधुर हो, उसका जन्म हृदय से होना चाहिए। क्योंकि हृदय ही इस मानवीय जीवन का स्रोत माना गया है। मुझे बहुत परम्परा का वह शब्द स्मरण है ऋषि मुनि वही होते हैं जिन का हृदय का शब्द होता है और हृदय का शब्द होता है वह लोकप्रिय बन जाता है। लोकप्रिय एक महत्ता को देने वाला

एक शब्द होता है। परन्तु जब हम अशुद्ध वाक्य की धाराओं को इस वायु मण्डल में तरंगित करते रहतेहैं। आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था? हम उन्हीं वाक्यों पर जाना चाहते हैं कि प्रभु का यह जो जगत है, प्रभु की यह जो विज्ञानशाला है इसमें इन्हीं वाक्यों को तो विचारना है।

सबसे प्रथम हमें अपने ऊपर इतना अधिपथ्य करना है। हमें सुन्दर सुन्दर याग करने हैं। वाणी के द्वारा कर्म के द्वारा हम उस प्रभु के विज्ञान में वैज्ञानिक बनने के लिए आए हैं। उस विज्ञान को हमें विचारना है। बेटा! विज्ञान को ही याग कहते हैं। याग किसे कहा जाता है? हमारे यहाँ यागों की प्रक्रिया बहुत ही महत्ता में परणित रही है। क्योंकि यहाँ शतपथ ब्राह्मण के ऋषि और भी यदि ऋषियों ने जब यागों का वर्णन किया। बेटा! तुम्हें प्रतीत है आदि ब्रह्मा के पुत्र जो विराट थे, उन्होंने विराजमान हो करके यागों पर बहुत अनुसन्धान किया। कितने ही प्रकार के यागों का वर्णन आता रहता है परन्तु उन यागों में सबसे प्रथम जो याग है, वह याग है, जिसमें हमारी कोई भावना अशुद्ध न हो, किसी भी प्रकार से हमारा मन अशुद्ध न हो। हम शुद्ध वाले बनें।

यहाँ वेद का ऋषि कहता है कि होता इस प्रकार के होने चाहिएं जिनका हृदय इतना स्वच्छ पवित्र हो जो सूक्ष्म कारण और स्थूल इन तीनों शरीरों की प्रक्रिया को जानने वाले हों। वे यज्ञ में जब होता बनते हैं तो वह याग ऐसा होता है कि उस या का जो सम्बन्ध और विभाजनवाद है वह मुनिवरों! स्वतः द्यु लोक को प्राप्त हो जाता है। वह इस लोक में नहीं रहता। वह उस लोक से चलता हुआ अशुद्ध वाक्य कोसमाप्त करता हुआ द्यु लोक को प्राप्त होता है। क्योंकि जितना भी हमारा जीवन है, हमारे जीवन का जो तारतम्य है उसका सम्बन्ध द्यु लोक से बहुत विशेष होता है। क्योंकि हमारे शरीर में जितनी भी प्रक्रियाएं हैं मानो उन सब प्रक्रियाओं का जो स्रोत है वह द्यु लोक माना गया है। उनको विद्युत रूपों में हम रमण भी किया करते हैं। उसी में रमण करके हम यह विचारने लगते हैं कि वास्तव में मानव का तो सर्वत्र जीवन ही विद्युत माना गया है। शब्द की विचारधारा वह विद्युत में है तरंगें जितनी भी नेत्रों का उन्नीद है अस्वात है उस शब्द का विद्युत और द्यु मण्डल से ही सम्बन्ध है। तो इसीलिए हमारे आचार्यों ने

कहा, ऋषि मुनियों ने कहा, अनुसन्धानवेत्ताओं ने कहा कि हमें प्रायः अनुसन्धान करना चाहिए। अनुसन्धान की वेदी पर विराजमान हो करके जब हम अपने जीवन को स्वच्छ बनाते हैं तो वह कितना सुन्दर होता है।

मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में एक वाक्य प्रकट कराया था। तुम्हें वह प्रतीत भी होगा। हमारे यहाँ महर्षि भारद्वाज मुनि हुए हैं। हमारा जो इस समय विचारों का सम्पर्क चल रहा है उसका भारद्वाज संहिता से सम्बन्ध है। उसका क्योंकि उनका विज्ञान का एक विषय होता था। विज्ञानशाला में सदैव विराजमान रहते। परन्तु हम जब दृष्टिपात किया करते थे उनके यहाँ एक स्थान में यज्ञशाला, कैसी यज्ञशाला? विज्ञानवेत्ता जिसमें विराजमान हो करके याग करने वाले हों और याग में विभाजनवाद की जो प्रक्रियाएं हैं। विभाजनवाद का जो एक अस्वातम है मुनिवरों! देखो,! जब वह वायुमण्डल में जाता तो उसको वैज्ञानिकजन विचारते रहते थे और वे विचारवेत्ता कैसे सुन्दर थे? मुनिवरों! देखो,! वे ऊँचे ऊँचे महापुरुष, कैसे महापुरुष? जिन्होंने अपने जीवन को अनुसन्धान वेदी पर परिणत किया हो। जैसे महर्षि प्रवाहण और दालभ्य जी थे। जैसे श्वेतकेतु और स्वाति थे, जैसे मानकीर्ति और स्वानकेतु आदि ऋषि मुनियों का समूह विराजमान होता। उन ऋषि मुनियों का जो प्रचलन था कि होता बनने के पश्चात् वे उसके ऊपर विचारते रहते थे। ये विचारतेरहते कि यज्ञ में स्वाहा उच्चारण करते हैं। मुनिवरों! उस स्वाहा में क्या क्या वस्तु जाती है? मुनिवरों! स्वाहा कह करके हमने आहुति दी, साकल्य दिया। उस साकल्य को अग्नि ने इतना सूक्ष्म बना दिया कि स्वाहा उसके साथ में विराजमान हो गया।

ऋषि मुनियों ने तो, वैज्ञानिकवेत्ताओं ने तो यहाँ तक कहा है कि मानव के प्रत्येक शब्द के साथ में मानव शरीर का चित्र भी उसके साथ में जाता है। इतने परमाणु जाते हैं कि मानव का चित्र भी उसके साथ में रमण करने लगता है। मुनिवरों! तुम्हें यह प्रतीति होगा कि भारद्वाज मुनि के यहाँ चित्रावली एक यन्त्र था उस यन्त्र में नाना प्रकार के जो वायुमण्डल में शब्द थे, उन शब्दों को वह धारण करते रहते, ग्रहण करके यन्त्रों में प्रदर्शनी के रूप में दृष्टिपात भी कराते रहते थे। परन्तु विचार यह कि वह जो होताजन

का साकल्य था उस साकल्य के साथ में जो सूक्ष्म परमाणु जाता है हमें उस परमाणुवाद के ऊपर प्रायः अनुसन्धान करना है।

क्योंकि हमारे पुरातन ऋषि मुनियों ने यह कहा कि यह जो माता वसुन्धरा पृथ्वी है इस वसुन्धरा के गर्भ में नाना प्रकार का खाद्य और खनिज है। मानो इस खाद्य और खनिज को ऊर्ध्व बनाने के लिए हमें याग करने हैं, ऊँचे ऊँचे याग करने हैं। संसार को सुख पहुंचाने के लिए वास्तव में हमें अस्वात देना है क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी इससे पूर्व शब्दों में मुझे निर्णय करा रहे थे कि समुद्र भी दूषित हो जाते हैं और दूषित उस काल में होते हैं जब समाज अपने कर्त्तव्य पालन को शान्त (समाप्त) कर देता है।

मुझे स्मरण है जब द्वापर का काल था, द्वापर के काल में एक समय भगवान् कृष्ण और अर्जुन दोनों समुद्र के तट पर अपनी द्वारका पुरी में विराजमान थे। उस समय मेरे प्यारे! अर्जुन जी बोले महाराज मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे जितनी तरंगें हैं समुद्र में इन तरंगों से ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र दूषित हो गया हो। भगवान कृष्ण बोले इसका मूल कारण तुम जानते हो? उन्होंने कहा हम नहीं जानते। हे अर्जुन! तुम्हें यह प्रती है कि राष्ट्रवाद कितना दूषित हो रहा है? उन्होंने कहा हां भगवन! यह तो प्रतीत है। उन्होंने कहा जिस काल में राष्ट्रवाद की परम्परा अभक्ष्य हो जाती है मानो उस समय प्रायः वातावरण अशुद्ध हो जाता है। तुम्हें यह प्रतीत है कि जिस समय विश्व संग्राम होते हैं, रक्तभरी क्रान्तियां आती हैं। उस समय प्रकृति के लक्षण परिवर्तित हो जाते हैं। उन्होंने कहा भगवन! मैं तो इसको नहीं जानता। उन्होंने कहा कि उस समय प्रकृति का वातावरण अशुद्ध हो जाता है। सबसे प्रथम मैंने भी इसके ऊपर टिप्पणियां दी हैं आदि ऋषिवर भी देते चले आए हैं।

महानन्द जी भी कल के वाक्यों में यह प्रकट करा रहे थे कि संसार में रक्तभरी क्रान्ति का मूल कारण क्या बनता है? मूल कारण यह बनता है जब प्रत्येक दिशा में शुभ कर्म नहीं होते, याग नहीं होते उस काल में वातावरण अशुद्ध हो जाता है। उन्होंने यह वर्णन कराया मुझे कल के वाक्यों में कि जिस समय समाज में बुद्धिमानों के द्वारा, ऊँचे ब्राह्मण तपस्वियों के द्वारा जब राजा का चुनाव नहीं होता, मूर्खों के द्वारा अपठित

प्राणियों के द्वारा जब राष्ट्र का चुनाव होता है, राष्ट्र का निर्माण होता है तो यह मत जानो कि वह अपठित समाज ने जिस राष्ट्र की (प्रतिनिधि को) चुना है वह राष्ट्र को या समाज को उज्ज्वल बना सकता है। वह अपठित समाज का चुना हुआ प्राणी स्वार्थवादी होगा, उसके द्वारा विडम्बना होगी, उसकी अन्तरात्मा में पद की लोलुपता होगी, द्रव्य को एकत्रित करने की, संग्रह करने की प्रवृत्ति उसमें बनी रहेगी। प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाला जो राष्ट्र बनेगा वह प्रजा को सुखी कदापि नहीं कर सकेगा। जब एक वेद पाठी ब्राह्मण जो ऊँचा हो। उसकी तुलना में एक अपठित समाज जिसको यह भी प्रतीत नहीं कि जल को कैसे पान किया जाता है, श्वास की गति कैसी होनी चाहिए? जब दोनों का एक ही स्थान (मूल्य) हो जाता है उस राष्ट्र में तो रक्तभरी क्रान्तियां आ जाती हैं। आज तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए। बेटा! यह भगवान कृष्ण ने अर्जुन को निर्णय कराया था। परन्तु यहाँ वेद का ऋषि भी कहता है यह वाक्य वेद भी कहता है। आदि ऋषियों का यह निर्णय भी कह रहा है।

मुनिवरों! इसके पश्चात् मेरे वत्स ने कल ही एक वाक्य और प्रकट कराया कि जिस राजा के राष्ट्र में, जिस समाज में रूढ़ियां होंगी और धर्म को नहीं विचारा जाएगा, धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र नहीं होगा मानो धर्म की ओर विचारा ही नहीं जाता कि धर्म क्या है? उस राजा के राष्ट्र में ब्राह्मण समाज, ऊँचे ऋषि, तपस्वी भयंकर कजली वनों से आकर के ऋषि मुनियों के द्वारा विचार करके इन सब के ऊपर राष्ट्र के ऊपर निर्धारित नहीं करते हैं तो उस राजा के राष्ट्र के ऊपर निर्धारित नहीं करते हैं तो उस राजा के राष्ट्र में प्रायः धर्म के ऊपर भी रक्त भरी क्रान्ति आती हैं। धर्म के ऊपर राष्ट्र के विभाजनवाद भी किए जाते हैं। और वह जो विभाजन वाद धर्म पर है रूढ़ियों का है। मुनिवरों! वह धर्म नहीं। उस को अधर्म कहना ही चाहिए। मेरे प्यारे! आज मैं अधिक विवेचना नहीं दूंगा। यह तो केवल एक धारा उच्चारण कर रहा हूँ और वह धारा क्या है? संसार का यह लक्षण है रक्तभरी क्रान्तियां आने का लक्षण है यह। मुनिवरों! मेरी प्यारी माता जब श्रृङ्गार पर बल देना प्रारम्भ कर देती हैं। वास्तविक Ü्रृगार को नहीं विचारा जाता वास्तविक श्रृङ्गार क्या है? मुनिवरों! देखो, जैसे वास्तविक श्रृङ्गार करने वाली

कौशल्य ने राम को जन्म दिया। कारागार में भगवान कृष्ण का जन्म हुआ। ऐसे तपस्वी माताओं के द्वारा ही तो जन्म होते हैं। परन्तु देखो, जबमाता इस प्रकृति के शृङ्गार को अपना लेती है, उस समय राष्ट्र का चरित्र भ्रष्ट हो जाता है।
परिणाम यह कि आज हमें विचारना है कि हम प्रत्येक वस्तु पर यह विचार विनिमय करते हैं तो हमें यह प्रतीत होता है कि वास्तव में कौन सी धारा को अपनाना प्रारम्भ करें। धर्म हमारा क्या है? मुनिवरों! धर्म उसे कहते हैं जो विज्ञान पर, पदार्थ विद्या पर और पृथ्वी के गर्भ से लेकर के द्यु के गर्भ का दोनोंका तारतम्य जो एक मिलाने वाला हो। उसमें धर्म की प्रतीति होती हो तो उसी का नाम धर्म कहा जाताहै। जो आत्म कल्याण के लिएहो, प्रत्येक इन्द्रियों से सुगठित हो। मुनिवरों! देखो, रूढ़ियों से भी राष्ट्र भ्रष्ट हो जाते हैं। रूढ़ियों में भी समाज पतित हो जाते हैं। इसीलिए मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हमें रूढ़ियों को नहीं अपनाना चाहिए। हमें धर्म को अपनाना चाहिए। विचारना यह है कि धर्म क्या है? मुनिवरों! जिसको हमारा अन्तरात्मा स्वीकार करने वाला हो। इसीलिए विज्ञान के आधार पर वैज्ञानिक होना मानव को बहुत अनिवार्य है। क्योंकि कोई भीमानव जब किसी मार्गको अपनाता हुआ उस मार्ग में वह रमण करता है उस मार्ग से तो उसे जाना ही है। जैसे कोई मानव प्रभु को पाना चाहता है, वह प्रभु को साक्षात करना चाहता है तो वह प्रकृति के मार्ग से ही हो कर के जाता है। क्योंकि प्रकृति के विज्ञान को जानता हुआ वह परमात्मा की प्रतिभा को साक्षात् कर लेता है।
हे वत्स! आज हमें विचारना है कि हम परमपिता परमात्मा को पाना चाहते हैं। हम याग में रमण करना चाहते हैं। ऋषि कहते हैं कि याग होने चाहिएं। प्रत्येक गृह में जब याग होते हैं, देव पूजा होती है, देवताओं के ऋण से जब उऋण होते हैं तो उस समाज में मुनिवरों! देखो,! धर्म होता है। कर्त्तव्यवाद होता है, मानवता होती है, शान्ति होती है, आत्म विश्वास होता है जब तक ये रहते हैं तब तक यह समाज सत्युग की बेला में रमण करता रहता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं अधिक चर्चा तो प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। कल मेरे प्यारे!महानन्द जी एक और वाक्य प्रकट करा रहे थे। उन्हें वाक्यों पर

आ जाऊं।

समुद्र की तरंगें अशुद्ध होती चली जा रही हैं। मुनिवरों! देखो,! भगवान कृष्ण की चर्चाएं कर रहा था। भगवान कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! अस्वातम् ब्रह्मे मानो यह जो समुद्र है यह दूषित उस काल में होता है जब हम देवताओं के ऋण उऋण नहीं होते। क्योंकि देवताओं के ऋण से उऋण होना बहुत अनिवार्य है। जब मानव दुर्गन्धि ही दुर्गन्धि करता है सुगन्धि नहीं करता, कहीं दूषित विचारों से दुर्गन्ध करता है, कहीं पदार्थों को अशुद्ध बना कर के दुर्गन्ध के स्थापित कर देता है। वह जब सुगन्ध नहीं देता तब सुगन्धित समाप्त हो जाती है। दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध हो जाती है। तो प्रायः समुद्रों में अशुद्धवाद आ जाता है। समुद्रों का जो जल प्रवेः अर्थात प्रवाह है उसमें दूषितवाद की तरंगें ओत प्रोत हो जाती हैं।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। अधिक विवेचना नहीं दूंगा। केवल संक्षिप्त परिचय देना हमारा कर्त्तव्य है। और वह संक्षिप्त परिचय क्या है कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुण गाण गाते हुए, अपने प्यारे देव की महिमा का गुण गान गाते हुए हमें इस संसार सागर से पार होना है। हम आज उस विज्ञान को विचारें जिस विज्ञान में बेटा! विज्ञानवेत्ताओं ने विराजमान होकर के प्रकृति को संतुलन में लाने का प्रयास किया। आज मैं अधिक विवेचना नहीं दूंगा। भगवान कृष्ण ने यह कहा हे अर्जुन! आज जो तुम्हें यह तरंग दूषित होती दृष्टिपात आ रही हैंइसका अभिप्राय है कि जिससे संग्राम होना है और जो समाज का दूषितवाद है वह नष्ट होना है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! हो सकता है मैं आज वर्तमान के युग को तो जानता नहीं। मेरे प्यारे महानन्द जी ने यह मुझे प्रकट कराया। आगे आने वाले समाज में भी हो सकता है यदि यह लक्षण हैं तो प्रायः (विनाश) अवश्य होगा। क्योंकि यह तो प्रकृति का मन्थन करने के पश्चात् ऋषि मुनियों ने ये विचार दिए। तो आज हम इन विचारों में अधिक जाना नहीं चाहते हैं। हमारा वाक्य क्या चल रहा था हम अपने प्यारे प्रभु के आँगन में रमण करने के लिए यह जो जगत है, यह प्रभु की एक अनुसन्धानशाला है यहाँ प्रत्येक मानव को अनुसन्धान करना है। यहाँ पति पत्नी को अनुसन्धान करना है। मुनिवरों!

देखो,! पति पत्नी का जो अनुसन्धान है जब पति पत्नी का विचार सुन्दर बन जाता है प्रत्येक गृह में यह विचारकों की चर्चाएं प्रकट करने लगते हैं तो आगे आने वाला जो समाज है वह भी ऊँचा बन जाता है।

एक समय देवर्षि नारद मुनि मध्य रात्रि में महर्षि अत्रि मुनि महाराज के द्वार पर विराजमान हुए। देखो, अत्रि मुनि और माता अनुसूया दोनों का सम्वाद प्रारम्भ था। कैसा सम्वाद? माता अनुसूया का प्रश्न और अत्रि मुनी का उत्तर चल रहा था। माता अनुसूया ने प्रश्न किया कि महाराज! यह ध्रुव मण्डल क्या है? अब वह उत्तर देते थे कि ध्रुमण्डल मानो एक लोक है, सप्त ऋषि मण्डल उसकी परिक्रमा करते हैं। एक रात्रि में उसकी परिक्रमा हो जाती है। एक दिवस और एक रात्रि में कोई भी मण्डल दो परिक्रमा करते हैं वह सप्त ऋषि मण्डल कहलाते हैं।

उन्होंने कहा महाराज! यह सप्त ऋषि मण्डल क्या है? उन्होंने कहा यज्ञशाला में जैसे सप्त होता होते हैं यज्ञ का यह विधान है। परम्परा का या तो यज्ञ में 24 होता अथवा सत्रह होने चाहिए, अन्यथा ग्यारह होने चाहिए, अन्यथा नौ और सप्त होता होने चाहिए। तुम्हें यह प्रतीत है कि यह जो सप्त ऋषि मण्डल हैं सप्त ऋषि मण्डल के साथ में अरुन्धति मण्डल और वशिष्ठ मण्डल कहलाते हैं और वशिष्ठ मण्डल के ऊर्ध्व भाग में जेठाय (ज्येष्ठा) और पुण्य नक्षत्र कहलाए गए हैं। तो इस प्रकार एक स्वाति नक्षत्र है। तो ये ग्यारह होता कहलाते हैं। ग्यारह होताओं का अभिप्राय यह कि यह ग्यारह मण्डल हैं जो अपने अपने स्थान पर परिक्रमा करते हैं। और मानो ये ध्रुव मण्डल की परिक्रमा कर लेते हैं। ध्रुव मण्डल को लगभग 30 दिवस में पुण्य नक्षत्र और जेठाय (ज्येष्ठा) नक्षत्र के मध्य में एक महान परिक्रमा करता है। जेठाय (ज्येष्ठा) नक्षत्र और यह नक्षत्र सूक्ष्म हैं। उससे कुछ मानो अकृत माने गए हैं और वह सप्त ऋषि ग्यारह जो होता हैं वह इस ध्रुव मण्डल की परिक्रमा इसलिए करते हैं क्योंकि ये अकृत एक रात्रि और एक दिवस में दो परिक्रमा कर लेते हैं। तो इनका परिणाम यह है कि जब इनकी आकर्षण शक्ति मानो सूर्य से इनका मिलान होता है तो यह जो सूर्य है यह जो बृहस्पति माना गया है और बृहस्पति के ऊर्ध्व भाग में जो आरूणि मण्डल है मानो यह लगभग

15 माह में यह सूर्य मण्डल इन बृहस्पति और आरूणि मण्डल के मध्य में से हो करके रमण करता है यह 15 दिवस में इनकी एक परिक्रमा होती है। तो परिक्रमा का अभिप्राय यह कि यह जो लोक लोकान्तर एक दूसरे की आकर्षण शक्ति से ही स्थिर है। मानो ये अपने अपने आँगन में रमण करते रहें। एक दूसरे की परिक्रमा इसलिए बनाई है प्रभु ने कि संसार में एक महत्ता में यह जगत दृष्टिपात आता हुआ यह विज्ञानवेत्ताओं के लिए महापुरुषों के लिए एक विचार का विषय बना रहता है।

आत्मा तो सदैव ज्ञान की पिपासु रहती है। यह प्रभु के विज्ञान को जानती हुई इस संसार सागर से इसकी ऊर्ध्वगति हो जातीहै। परिणाम यह बेटा! कि पति पत्नियों का विचार विनिमय होता रहता था। तो देवऋषि नारद मुनि जब इस विचार को श्रवण करते रहे तो मानो दिवस हो गया इसी विचार में। मेरे प्यारे! यह जो गृहस्थल होता है यह केवल विचारकों का स्थल कहलाया गया है। यह भोग विलास का स्थल नहीं है। यह तो केवल आगे आने वाला जो समाज है इसको पति पत्नी का ऊँचा बनाना है और ऊँचा उसी काल में बनेगा जब आहार व्यवहार दोनों विज्ञान में परिवर्तित होते हुए प्रभु के राष्ट्र को विचार विनिमय करेंगे। मेरे प्यारे! यह है आज का विचार हमारा। हमें वेद क्या कहता है? वेद यही कहता है कि सूर्य और पृथ्वी की भांति परिक्रमा करते रहो। परन्तु यह पति पत्नी की परिक्रमा विचारों की परिक्रमा है। कैसी परिक्रमा होनी चाहिए? जैसे यज्ञशाला में होताजन परिक्रमा करते हैं क्योंकि ये जो इन्द्रियां यह आत्मा की परिक्रमा करती रहती हैं। इसी प्रकार यज्ञशाला में ब्रह्म होताओं की परिक्रमा कराता है। इसी प्रकार गृह आश्रम में पति पत्नी जब विचारों की परिक्रमा करते हैं, गृह के वातावरण को परमाणुवाद में परिवर्तित कर देते हैं तो उस गृह में जो भी पुरुष आता है वह उस गृह से लेकर के कुछ जाता है। वह सुन्दर विचार लेकर के जाता है। परन्तु उनकी जो सन्तान है वह रहने वाली उस गृह में, उसकी बुद्धि ऊर्ध्व होती है तो बेटा!? इस संसार में अशुद्धवाद नहीं रहता। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! इसी को हम देव पूजा कहते हैं। देव पूजा प्रातःकाल में याग करना, ऊँचे ऊँचे याग करना और उन परमाणुओं पर विचार विनिमय करना याग इसको तो कहते ही हैं कि अग्नि को साकल्य में परणित करना

परन्तु वह जो अग्नि उस साकल्य को भस्म करके सूक्ष्म बनाती है उस परमाणुवाद को विचारना, उस परमाणुवाद के ऊपर अनुसन्धान करना। यह मुनिवरों! सबसे ऊँचा कार्य है। यही विज्ञानशाला है।

महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ बेटा! ऐसी विज्ञानशाला थी और उसके साथ में अनुसन्धानशाला भी थी। उसको कहते हैं यज्ञशाला और उसको कहते हैं अनुसन्धानशाला। तो अनुसन्धानशाला और यज्ञशाला में क्या भेदन (अन्तर) है? इनमें क्या परिवर्तन होना चाहिए? विचार यह यज्ञशाला में तो आहुति दी जाती है। स्वाहा किया जाता है। त्याग किया जाता है। और उस त्याग के परिणाम को विज्ञान कहते हैं। क्योंकि उसकी बुद्धिमानों को वेद पाठियों को उस परमाणुवाद को विचारना चाहिए जो परमाणुवाद वायु में मिश्रित हो गया है। इस प्रकार के यन्त्र होने चाहिएं। उन परमाणुओं को एकत्रित करके उन यन्त्रों से उससे ऊँचे ऊँचे यान बनने चाहिएं। वेद का ऋषि कहता है यज्ञमानम् प्रवेः सूर्य लोकः रमन्तरस्तः यज्ञ का ब्रह्मा कहता है हे यज्ञमान! तेरी गति इस पृथ्वी मण्डल से लेकर के सूर्य मण्डल तक तेरा वाहन होना चाहिए। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! इस प्रकार की गति प्रायः मानव समाज में होनी चाहिए जिससे बेटा! हमारी उड़ान पवित्र बने। हमारी वैदिक साहित्य की जो उड़ान है वह ऊर्ध्व गति को चली जाए। लोक लोकान्तरों में चली जाए। हम परमात्मा को साक्षात करने वाले बनें। आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं अधिक विवेचना तो देने आया ही नहीं हूँ। संक्षिप्त परिचय देने चला आता हूँ। किसी किसी काल में जो वेद का आशय होता है उसका संक्षिप्त परिचय देना हमारा कर्त्तव्य होता है। आज हम उसको अपना कर्त्तव्य स्वीकार करते हैं।

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए प्रभु की विज्ञानशाला को जानने वाले बनें। प्रभु के उस महान जगत में रमण करते हुए हम अपनी महत्ता पर विचार विनिमय करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह है आज का हमारा वाक्य। विचार यह कि हम वास्तव में वैज्ञानिक बनें। हम विज्ञान की वेदी पर विराजमान हों। हमें विचारों से ऊँचा बनना है। मन, कर्म वचन से ऊँचा बनने की हमारे

में उत्सुकता होनी चाहिए। यह है बेटा! आज का वाक्। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। समय मिलेगा तो बेटा! कल कुछ संक्षिप्त परिचय और दे सकेंगे। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

२१ अतिथि 007 पुष्प 26 मानव को कर्तव्यवादी बनना चाहिए

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। जितना वैदिक साहित्य है अथवा वेद का जो वचन है उसमें न कोई नवीनता और न वृद्धपन किसी काल में आता है। वह सदैव एक रस बना रहता है। जैसे हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ में आदि ऋषियों ने नाना प्रकार का विचार विनिमय करते हुए मानव के लिए एक मार्ग निश्चित किया और वह जो मार्ग है वह एक प्रकार का याग है। याग की विवेचना करते हुए आदि आचार्यों ने सुन्दर सुन्दर विवेचनाएं दीं। आज मैं उन विवेचनाओं में तो जाना नहीं चाहता हूँ। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में यह घोष किया गया था कि प्रत्येक मानव को मेरे राष्ट्र में याज्ञिक बनना है। यहाँ यागों का स्वरूप वर्णन करते हुए याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने नाना प्रकार के यागों का वर्णन किया।

यागों की मीमांसा करते हुए आदि आचार्यों ने कहा, आदि ब्रह्मा ने सबसे प्रथम याग का हमारे समीप एक स्वरूप स्पष्ट किया। महर्षि स्वर्ण मानात्री, अचुकेकृति भास्ती महर्षि वायु और महर्षि अंगृत ऋषि महाराज ये चारों ब्रह्मचारी उनके आश्रम में अध्ययन करते थे। जब ये चारों ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे तो सर्वप्रथम वेद का अध्ययन कराते हुए आदि ऋषि ने यह कहा कि ब्रह्मचारियो! आओ, याग करेंगे महर्षि अंगृ ऋषि महाराज ने यह कहा कि महाराज! याग किसे कहते हैं? याग है क्या संसार में? उस समय आदि ब्रह्मा ने कहा कि यह वेद का वचन है कि याग जम विरेह अस्ता हमें याज्ञिक बनना है। याग के लिए हमें वेद घोषणा कर रहा है। वेद का कोई भी अक्षर, कोई भी मन्त्रार्थ बिना उद्देश्य के नहीं होता। इसके पिछले भाग में कोई उद्देश्य होना चाहिए।

आदि ब्रह्मा ने कहा हमारे यहाँ कर्त्तव्यवाद है उसका नाम याग है। कर्त्तव्यवाद में कितनी वस्तु आती हैं मानव के समीप? जैसे ऋषियों की आज्ञा का पालन करना, माता पिता की आज्ञा में हमें अपने जीवन को व्यतीत करना। कोई भी माता पिता अपने पुत्र को यह नहीं चाहता कि मेरा पुत्र अयोग्य बन जाए। माता पिता की एक ही कामना होती है कि मेरे पुत्र के द्वारा सर्वत्र गुण होने चाहिए। मेरा बालक ब्रह्मचारी बने, मेरा बालक संसार का ऊँचा महान वैज्ञानिक और प्रतिभाशाली हो। तो उन माता पिता का जो एक अनुपम विचार है उस विचार में ही याग की प्रतिभा निहित रहती है।

अब याग किसे कहते हैं? आदि ब्रह्मा से ब्रह्मचारियों ने प्रश्न किया तो आदि ब्रह्मा ने यह कहा कि मैंने अपने जीवन का मन्थन किया है और सबसे प्रथम अरष्ट को जाना और वह अरध्य है। वह उसे कहा जाता है जो ब्रह्मरन्ध्र में एक नाड़ियों का समूह होता है, सूक्ष्म नाड़ियों का समूह होता है। उस नाड़ियों के समूह में वायु मण्डल से क्या अन्तरिक्ष से नाना प्रकार के जो लोक लोकान्तरों की आभा है वह नाड़ियों के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में जाती है। मानो उसकी छाया आती है। जैसे यह परमपिता परमात्मा का जगत् है, एक दूसरा प्राणी, एक दूसरा लोक लोक की सहकार में विराजमान है। मानो एक दूसरा एक दूसरे की सहायता युक्त हो रहा है। आज जब हम गन्धर्व लोकों में जाते हैं, आकाश गंगा में जाते हैं, नाना सूर्यों को दृष्टिपात करते हैं तो एक दूसरा मण्डल एक दूसरे को स्थिर किए रहता है तो जब वह मण्डल स्थिर किए रहता है तो परमात्मा का कितना सुन्दर याग हो रहा हैं वे परमपिता परमात्मा का याग है जो सृष्टिकर्त्ता है, सृष्टि का रचयिता है। कितना सुन्दर याग एक दूसरे मण्डल का मण्डल से मिलान नहीं होता और अपनी परिधि में प्रत्येक मण्डल गति कर रहा है।

मुझे ऐसा स्मरण आता रहता है कि आदि ब्रह्मा ने ऐसा कहा है कि ब्रह्मचारियो! वेद ऐसा कहता है कि यह जो अन्तरिक्ष है, यह जो सूर्य है और इसके अन्तर्गत एक परमाणु है जैसे एक मधुमक्खी है उसमें एक महारानी मक्खी होती है उसके अन्तर्गत मक्खियां रमण करती रहती हैं और द्रव्य पदार्थों को लाती रहती हैं, उसी की प्राज्ञा से वे स्थिर रहती हैं। उसकी की आज्ञा से वे अपनी उड़ान प्रारम्भ कर देती हैं। इसी प्रकार से

परमात्मा का जो यह सौर मण्डल है, एक लोक है उस लोक के अन्तर्गत नाना मण्डल सहायता के लिए रमण करते हैं। एक परमाणु ही स्थूल है परन्तु उसके अन्तर्गत सूक्ष्म परमाणु रमण करते हैं। जिन परमाणुओं में मानव के चित्रों की आभा निहित रहती है। वह जो चित्रों की आभा है वह उसी में निहित रहती है तो आदि ब्रह्मा ने ब्रह्मचारियों को यह शिक्षा प्रदान की कि मैंने अपने अनहद को जाना है जिसमें नाना प्रकार की तरंगें होती हैं और उन तरंगों में नाना प्रकार के शब्द होते हैं। हमारे इस मानव शरीर में नाना प्रकार के यन्त्र विराजमान हैं, उन यन्त्रों में शब्दों की आभा भी निहित रहती है और उस आभा के साथ में उसकी गति अन्तरिक्ष में रमण करती है।

आदि ब्रह्मा ने सबसे प्रथम यह कहा कि आओ याग करेंगे। हम अग्न्याधान करें। ब्रह्मचारियों को लेकर के याग करना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मचारियो! वेद का ऋषि यह कहता है, वेद का मन्त्र कहता है कि एकोक ब्रह्मचारी ब्रह्मे एको यज्ञमान बनना चाहिए। एक अध्वर्यु बनना चाहिए, एक को उद्गाता बनना चाहिए एक को ब्रह्मा बनना चाहिए। तो आदि ब्रह्मा ने चारों ब्रह्मचारियों को चारों स्थली पर नियुक्त कर दिया। नियुक्त करने के पश्चात् उन्होंने कहा कि आओ याग करेंगे। वे मन्त्र उच्चारण करते जाते और उन्होंने अग्न्याधान किया और जब अग्नि प्रदीप्त हो गई तो उसमें साकल्यों की आवश्यकता हुई। अग्ने समिधाः वेद का ऋषि कहता है कि समिधाओं को लाओ। आदि ब्रह्मा ने कहा कि यज्ञशाला के अन्तर्गत एक मेखला होनी चाहिए। मेखला का अभिप्राय क्या कि जल सिंचन होना चाहिए। उसमें वायु मुनि ने कहा कि जल सिंचन क्यों किया जाता है? आदि ब्रह्मा ने वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुए यह कहा कि हे ब्रह्मचारी! यह जो मेखला है और जो जल सिंचन हाता है जब आदि सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो परमपिता परमात्मा इस पृथ्वी का निर्माण करता है और जब पृथ्वी का निर्माण होता है तो पृथ्वी के अन्तर्गत जलाशय विराजमान होता है। जिसको हमारे यहाँ समुद्र कहा जाता है, सोम कहा जाता है। मानो वह इस पृथ्वी को सोम में लाने के लिए, शीतल बनाने के लिए यह पृथ्वी जो विष उगलती रहती है, इन पञ्च महाभूतों के मिलान से वह सोम अपने में ग्रहण करता रहता है। जब भी याग का निर्माण होता है तो मेखला

इसलिए अनिवार्य होती है। क्योंकि पृथ्वी के अन्तर्गत हमारे यहाँ समुद्र विराजमान हैं। परमपिता परमात्मा ने जो सृष्टि का निर्माण किया वह मेरे देव ने बिना उद्देश्य कोई कार्य नहीं किया। मेरा देव इतना वैज्ञानिक है कि उसकी वैज्ञानिकता का वर्णन करना मेरे लिए असम्भव है।

मैं अपनी माँ से जब यह प्रश्न करता हूँ कि हे मां! तेरे गर्भ स्थल में यह जो बालक जरायुज है यह कहा से पनपता रहता है? इसमें कहाँ से रसों का स्वादन होता रहता है? तो माता उसका उत्तर नहीं दे पाती। वेदाचार्यों से कुछ प्रश्न किया गया तो आयुर्वेदाचार्यों ने यह कहा कि माता की नाभि से नाना नस नाड़ियों का स्रोत चलता है उस बाल के जरायुज के नाभि के द्वारा उसका सम्बन्ध होता है। तो माता के गर्भ स्थल में जरायुज पनपता रहता है, ओजस्वी होता रहता है परन्तु मेरी प्यारी माँ नहीं जानती है। इसी प्रकार मेरे प्यारे! प्रभु का ये जगत् है वह प्रभु स्वतः जानता है, निर्माण वेत्ता है। प्राणी नहीं जान पाता परन्तु जब यह प्राणी योग आभा में जाता है तो परमात्मा की प्रतिभा उसको इसमें दृष्टिपात होने लगती है।

मैंने अभी अभी तुम्हें यह निर्णय कराया था कि जब मेखला का प्रश्न हुआ मानो देखो, समुद्र उस पृथ्वी के अवरोह (निचले भाग) में रमण करता रहता है, यह पृथ्वी जल से साध्यता को ग्रहण करती रहती है। यदि आपो (जल) नहीं होगा तो संसार का यह पृथ्वी रूपी जो याग है यह कदापि भी सुन्दर नहीं बनेगा। इस याग का अपना कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। प्रभु ने जो यह ब्रह्माण्ड रचाया यह एक प्रकार की यज्ञशाला है। इसमें प्रत्येक मानव याग करने को आया है। कैसा याग करने के लिए आया है? मेरी प्यारी माता याग करने के लिए आई है। कौन सी माता याग करती है? जो माता अपने जीवन की प्रतिभा (बुद्धि) जानती है। वह मानव याग करता है जो अपने जीवन की प्रतिभा (बुद्धि से जानता है, वह अपने को प्रतिभाशाली बनाता है, प्रभु के द्वार पर जाने के लिए तत्पर होता है।)

मेरे प्यारे! उस आदि ब्रह्मा ने ब्रह्मचारियों को कहा हे ब्रह्मचारियो। यह मेखला का निर्माण है क्योंकि याग में सोम होना चाहिए। अग्नि में जो नाना पदार्थों का स्वाहा देते

हैं वह अग्नि में स्वाहा दिया हुआ वह साकल्य द्यु लोक को जाता है। देवता उसको ग्रहण करते हैं। जब देवता ग्रहण करते हैं तो उसी से पर्जन्य होता है और पर्जन्य से नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है। जिसे प्राणी मात्र पान करके उदर की पूर्ति करते हैं। हे ब्रह्मचारियो! मैं नहीं कह रहा हूँ यह वेद का ऋषि कह रहा है, मेरी भी कुछ अनुभूति (अनुभव) है उसके साथ साथ रमण करती है।

मेरे प्यारे! आदि ब्रह्मा ने ब्रह्मचारियो से कहा कि मानव का जो मुखारविन्द है यह भी याग है। मानव के चक्षु भी याग हैं। मानव के घ्राण और त्वचा भी याग हैं। ब्रह्मचारियों ने कहा कि प्रभु आप यह क्या उच्चारण कर रहे हैं। आदि ब्रह्मा ने कहा कि जब मानव इन नेत्रों से शुद्ध दृष्टिपात करता है तो मानव के अन्तःकरण में ऐसे संस्कारों के अंकुरों का जन्म होता है जिन संस्कारों से मानो हम आवागमन से दूर हो जाते हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का जो विषम है हम उससे याग करते हैं। याग का अभिप्राय यह कि जैसे हम यज्ञशाला में विराजमान हो करके अग्नि को दृष्टिपात करते और होता का कर्तव्य कि अग्नि को ही दृष्टिपात करता रहे, ब्रह्मा वेदमन्त्र को दृष्टिपात करता है। उद्गाता अपनीवाणी से वेद मन्त्रों का उद्गान गाता है और अध्वर्यु मानो प्रत्येक द्रव्य को हिंसा से रहित करता रहता है। देखो, ब्रह्मे पुरोहिताम् यज्ञं रहि कृता हे यज्ञमान! जो पुरोहितों का स्वामी है, जो पशुओं का स्वामी है, वह यज्ञमान जो अपनी पत्नी के सहित यज्ञशाला में विराजमान हो करके शुद्ध हृदय से याग करता है तो उसका मार्ग ही याग द्वारा ऊँचा बन जाता है। उसके गृह का याग ऊँचा बन जाता है।

याज्ञिक कौन होना चाहिए? आज मैं यह विचार देने इसलिए आया हूँ कि हमारे यहाँ यागों का प्रकरण परम्परा से चला आ रहा है। इसका अन्तरिक्ष से सम्बन्ध है। इसका इस भू मण्डल से सम्बन्ध है। यदि हमें भू मण्डल को विचारना है तो याज्ञिक विज्ञान को विचारना चाहिए। इससे द्रव्य का दुरूपयोग नहीं होता। हम देवताओं को द्रव्य देते हैं। हम ऋषियों की वाणी को अमरावती को प्राप्त कराते हैं। वेद का ऋषि कहता है, आदि ब्रह्मा ने कहा है यह लक्ष्मी के सदुपयोग का स्वरूप माना गया है।, जो मानव लक्ष्मी का सदैव दुरूपयोग करता रहता है तो लक्ष्मी का दुरूपयोग करने वाला प्राणी

स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

यह लक्ष्मी माँ है। हे माता! निरादर करने वाला पुत्र कदापि भी ऊँचा नहीं बनता। लक्ष्मी का सदैव सदुपयोग करना चाहिए। लक्ष्मी से हमें तामसिक पदार्थों का पान नहीं करना चाहिए। लक्ष्मी को तो हमें माँ स्वीकार करके हमें उसकी पूजा करनी चाहिए। यदि ममता की पूजा करोगे, माँ के द्वार पर जाओगे तो माँ अपने हृदय से उसको धारण कर लेगी। मेरे प्यारे!। जब याग करते हैं देवताओं तक, उस द्रव्य की आभा को पहुंचाते हैं तो माता का हम देवताओं के समीप दृष्टिपात करना जानते हैं। यह जो द्रव्य है ममतामयी माँ है और यह कैसी माँ है? मानो यह मानव का उद्धार करने वाली है। यह मानव को अमरावती को प्राप्त करा देती है। परन्तु जब इसका दुरूपयोग करते हो तो यही माँ अपने पुत्रों! को अपने पगों से ठुकरा देती है और अन्धकार में प्राप्त करा देती है, जहाँ प्रकाश का उसे एक अंकुर भी प्राप्त नहीं होता है।

मुनिवरों! आदि ब्रह्मा की चर्चा कर रहा था। वेद का ऋषि यह कह रहा था अपने ब्रह्मचारियों से कि हे ब्रह्मचारियो आओ याग करो। उन्होंने याग की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह जो याग का स्वरूप है यह तुम्हारे शब्दों के साथ में अन्तरिक्ष में तरंगों में रमण करता रहेगा और वह तरंगित होता हुआ मानो देवता इस वासना को ग्रहण करेंगे। देवताजन कौन होते हैं? जल, वायु, अग्नि आदि पञ्च महाभूत हैं। इनका शोधन करना, इनको उज्ज्वल बनाना, इनसे यह जगत् ऊँचा बनता है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातल काल में यह वर्णन किया था यह याग ही तो एक कर्त्तव्य है। एक मेरी प्यारी माता गर्भस्थल में याग कर रही है। यह सर्वत्र जगत् याग स्वरूप है। हमारे यहाँ एक कन्या याग का वर्णन आता है। एक पिता के गृह में कन्या का याग हो रहा था। कन्या याग का अभिप्राय कि पिता अपनी पुत्री को सुयोग्य बनाता है, विदुषी बना देता है तो वह अपने ग्रह में कन्या याग कर रहा है। तो देखो, प्रत्येक मानव बिना याग के संसार में नहीं रह पाता और जब मानव याग से विमुख हो जाता है तो उस समय नरक में मानो अन्धकार में चला जाता है।

मेरे प्यारे! जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है, इस यज्ञवेदी का जब निर्माण होता है तो उस

समय यह आत्मा यज्ञ का यज्ञमान बनता है। ब्रह्मा स्वयं परपिता परमात्मा बनता है। आत्मा यज्ञमान बन करके ये जो पञ्च महाभौतिक हैं यह उस यज्ञशाला के होता बनते हैं और होता बन करके आत्मा के द्वारा याग हो रहा है। परमात्मा ब्रह्मा याग कर रहा है। आत्मा उस याग को करने वाला हूत (आहुतिएं दे रहा है।) कर रहा है, देवताओं के समीप पञ्च महाभौतिकों के द्वारा वह अपने में प्रतिभाशाली बन रहा है तो वह आत्मिक याग हो रहा है। कैसा सुन्दर यह याग है। कैसा सुन्दर यह जगत् है। इस याग में से कितनी तरंगें उत्पन्न हो गईं। कितने लोक उत्पन्न हो गए। कितनी आकाश गंगा उत्पन्न हो गईं। आकाश गंगा का जब हम निर्णय करने लगते हैं तो एक ही आकाश गंगा में 72 करोड़ से अधिक तो सूर्य ही सूर्य कहलाते हैं। कितना विशाल मण्डल है उस मेरे प्यारे! प्रभु का। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने अपने योगाभ्यास में समाधि में विराजमान हो करके इस ब्रह्मरन्ध्र की आभा में लगभग करोड़ों आकाश गंगा इस प्रकार की निर्णीत की हैं। तो वह प्रभु का राष्ट्र, प्रभु का याग कितना विशाल है, कितनी तरंगें उत्पन्न हो गईं? क्या आज मानव इसको नाप सकता है? भौतिक विज्ञान तो कदापि भी नहीं नाप सकता। परन्तु ऋषि मुनियों ने समाधिस्थ हो हो करके आत्मा के द्वारा प्रकृति के ऊपर शासन करके इससे संसार को दिगदर्शन किया।

14. आओ मेरे प्यारे! आदि ब्रह्मा ने यही तो निर्णय कराया कि यह जो ब्रह्माण्ड है। उसमें सुगसिन्ध देना हमारा कर्त्तव्य है। वह सुगन्धि कहाँ से होगी? वह सुगन्धि वनस्पतियों के द्वारा, इस याग के द्वारा जब विराजमान होकर वेदमन्त्र पाठ के साथ प्रत्येक आहुति के द्वारा जब अन्तरिक्ष में जाएगा तो वेद मन्त्रों के शब्दों से भरण हो जाएगा। ये शब्द अन्तरिक्ष में विराजमान हो जाएंगे। एक गृह में माता पिता याग कर रहे हैं। गार्हपत्य नाम की अग्नि की पूजा करते हैं। जब माता पिता अपने धार्मिक विचारों को अपने ग्रह में प्रकट करते हैं तो माता पिता कितना सुन्दर याग कर रहे हैं। गृह को स्वर्ग बनाने के लिए और अपने पुत्र पुत्रियों को ऊ चा बनाने के लिए मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महर्षि अगस्त्य मुनि की माता सोमभानु और उनके पिता बृहन् ऋषि अत्री दोनों विराजमान हो करके जब दर्शनों की विवेचना करते तो उनके आश्रम में ऋषि मुनि

जिज्ञासु शान्त हो करके उनकी विवेचना को श्रवण करते। एक समय बृहन् अत्रि ने अपनी देवी से कहा कि हे देवी! इस संसार में मानव का उद्देश्य क्या है? देवी ने कहा प्रभु! इसका तो आप ही हमें उत्तर दीजिए। हम नहीं जान पाते। उन्होंने कहा हे देवी! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है मानव का जो उद्देश्य है वह मोक्ष को प्राप्त करना है। अब विचारना चाहिए कि मोक्ष कैसे प्राप्त होगा? संसार में प्राणी को ऋणों से भी उऋण होना है और मोक्ष को भी प्राप्त करना है। ये सर्व वस्तुएं कैसे हो सकती हैं? इस पर विचार किया जाए कि दर्शन क्या कहता है? वेद क्या कहता है? योग की परम्परा क्या कह रही है? उन्होंने कहा कि ऐसा प्रतीत होता है प्राणी को सरल मार्ग को चुन लेना चाहिए अथवा उसे निर्वाचित हो लेना चाहिए। और वह मार्ग क्या है? सबसे प्रथम उस मार्ग में याग होना चाहिए। उसके द्वारा वह आधत्मिक याग में रमण करे। क्योंकि इसमें वैज्ञानिक स्वरूप को जान करके ही मानव परमाणुवाद में जाता है। भौतिकवाद के मार्ग से होता हुआ वह प्राणी आध्यात्मिक मार्ग को जाता है। आध्यात्मिक मार्ग को जाने वाला वही प्राणी अमरावती को उपर्बुध बन करके परमात्मा के उस राष्ट्र में चला जाता है जहाँ परमात्मा के राष्ट्र में रात्रि नहीं होती सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है।

मुनिवरों! इन दर्शनों की विवेचना पति पत्नियों की विवेचना पान करने वाला बालक अगस्त्य विराजमान है। वह माता पिता के उन शब्दों को श्रवण कर रहा है। नाना जिज्ञासु उनके समीप विराजमान हैं। उनके उद्देश्यों को स्वीकार करके मानव अपने जीवन को प्रकाशमय बनाता है। तो वह माता पिता अपने विचारों का कितना सुन्दर याग कर रहे हैं। जिससे उनके गृह में स्वर्ग आ जाए। बालिकाएं हों, पुत्र हों, सब माता पिता के उद्देश्यों को पान करके, दर्शनों की विवेचना पान करते हुए अपने जीवन को उषर्बुध बनाने की प्रेरणा प्राप्त करें। वे माता पिता गृह में याग कर रहे हैं। क्योंकि माता पिता का उद्देश्य केवल (सांसारिक भोग) यह नहीं होता। उनका जो मिलन होता है वह संस्कारों की प्रतिभा है, यह केवल स्वर्ग को लाने के लिए होती है। स्वर्ग आता है विचारों से, स्वर्ग आता है यज्ञ से, भौतिक याग भी करो और विचारों का याग भी करो। वेद का ऋषि यह कहता है कि जितना भी विचार है जितना भी शब्द है उस शब्द का

आकार प्रत्येक मानव के गृह में गृह में परणित रहता है, वह शब्द गृह में विराजमान रहता है। मुझे बहुत पुरातन काल की वार्त्ता स्मरण आ गई। एक समय महर्षि सुकेता मुनि महाराज भ्रमण करते हुए एक पर्वतों की कन्दराओं में एक आसन लगाकर विराजमान हो गए। विराजमान होते ही ऋषि के मस्तिष्क में सुन्दर सुन्दर विचारों की उपलब्धि होने लगी। क्योंकि वे स्वयं भी जिज्ञासु थे और जिज्ञासु के साथ साथ उनके द्वारा दर्शनों की आभाओं का जन्म होने लगा। जब आभाओं का जन्म होने लगा तो इतने में अगस्त्य मुनि आ गए। उनसे उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं स्वयं तो जिज्ञासु था। परन्तु इस आसन पर मेरे अन्तरात्मा में सुन्दर सुन्दर भावना क्यों उत्पन्न हुईं? इन तरंगों का मस्तिष्क में जन्म क्यों हो गया? क्या मेरे कोई किन्हीं जन्मों के संस्कारों की उद्बुद्धता हो गई है? उन्होंने कहा नहीं ऋषिवर! हे जिज्ञासु! तुम स्वयं जिज्ञासु हो, ब्रह्मचारी हो, ब्रह्म की तुम्हें पिपासा है, दर्शनों की तुम्हें पिपासा है, यहाँ किसी काल में महर्षि अंगिरा ऋषि ने तप किया था और तप करने के पश्चात् उन्होंने दर्शनों पर विचारा, मानवीय दर्शन उनके समीप रहता था और लगभग उन्होंने 82 वर्ष तक यहाँ कोई मिथ्या वाक्य उच्चारण नहीं किया। तो मेरे प्यारे! जब यह विचार उनके मस्तिष्क में आया तो ऋषि आश्चर्य से चकित हो गए। और पूछा महाराज कितना समय हो गया। उन्होंने कहा कि अंगिरा ऋषि को यहाँ करोड़ों वर्ष हो गए, जब उन्होंने यहाँ तप किया। उन्होंने पूछा कि महाराज! उसके पश्चात् कोई और ऋषि तपस्या नहीं कर पाया इन शिलाओं पर तब उन्होंने कहा कि उसके पश्चात् यहाँ और भी ऋषि आए हैं। उन्होंने भी तप किया है। जिन्होंने भी तप किया है उनके विचार इस वातावरण में रमण कर रहे हैं और उनके विचारों से ही तुम्हारे मस्तिष्क में एक आभा की प्रतिभा का जन्म हो गया है। उस आभा की प्रतिभा के जन्म होने का परिणाम यह है कि तुम्हारे जीवन में एक आभा की उपलब्धि हो करके तुम उन्हीं परमाणुवाद में रमण कर गए हो जहाँ तुम्हारा दर्शन तुम्हारे समीप आ जाएगा। विचार विनिमय क्या कि हमारा मानवीय दर्शन बहुत ऊर्ध्व गति में जाने वाला है। हमें मावनीय दर्शन के ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए। मानवीय दर्शन क्या है? मैंने बहुत पुरातन काल में इसकी चर्चा की है। मानव का मानवीय दर्शन

यह है मानव की अपनी अन्तरात्मा को जानने का नाम मानवीय दर्शन कहलाता है।
आओ मेरे प्यारे! विचार विनिमय यह कि यह मानव के विचारों का एक याग है। जहाँ मानव भौतिक याग करता है समिधा के द्वारा घृत के द्वारा तथा जहाँ साकल्य के द्वारायाग करता है वहाँ विचारों का भी याग होता है और उन विचारों के याग में वातावरण परिवर्तित हो जाते हैं। उस वातावरण में देवताजन रमण करते हैं। इस संसार को यदि ऊँचा बनाना है तो इतना गम्भीर उद्देश्य हमारे समीप रहता है कि हम सदैव कर्त्तव्यवाद में रमण करते चले जाएं। जहाँ कर्त्तव्यवाद रहता नहीं और अधिकार रह जाता है वहाँ का वातावरण अशुद्ध हो जाता है, वहाँ के वातावरण में रक्त भरी क्रान्ति के परमाणुओं का जन्म हो जाता है और उससे यह संसार दूषित बन जाता है।
मैं तुम्हें यह वाक्य प्रकट कराने जा रहा था कि मानव का विचार इतना ऊर्ध्व गति में जाना चाहिए। गृह आश्रम में प्रविष्ट होने वाले प्राणी को अपना जीवन कितना शुद्ध बनाना ह? अपने मानवीय दर्शन पर अधिकारी बनना है। तुम्हें यह प्रतीत होगा जब माता अरुन्धति और वशिष्ठ दोनों विराजमान होते तो लोकों की चर्चा करते थे, विज्ञान की चर्चाएं करते। वे कहा करते कि अरुन्धति के साथ में वशिष्ठ मण्डल है, वशिष्ठ से ऊर्ध्व गति में रहने वाला जेठाय (जेष्ठा) नक्षत्र से ऊर्ध्व गति में पुण्य नक्षत्र है और पुण्य नक्षत्र की परिधि में रहने वाला स्वाति है। इन लोकों का परस्पर क्या सम्बन्ध है? यह विवेचनाएं पति पत्नी की होती थीं। अन्तरिक्ष में तारामण्डल विराजमान हैं, अपना प्रकाश दे रहे हैं। पति पत्नियों का विचार विनिमय चल रहा है और आँगन में दार्शनिक विचार विनिमय पान करने के लिए विराजमान हैं। हमारे यहाँ परम्परा यह है कि हम सदैव अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहते हैं। मानव के समीप मानव का उद्देश्य रहना चाहिए। मानव का उद्देश्य है अपनी प्रतिभा को ऊँचा बनाना, प्रतिभाशाली बनना।
आदि ब्रह्मा ने यह कहा कि याग करो। याज्ञिक बनो। हे ब्रह्मचारियो! इस भौतिक याग को करो। सबसे प्रथम तो परमाणुवाद से इस गृह के वातावरण को सुगन्धित कर दो, इसका वातावरण सुगन्धित हो जाए। उसके पश्चात् तुम विचारों का याग करो। उसको पांचिक याग कहते हैं। उनके पश्चात् तुम अतिथि याग करो। कोई भी अतिथि तुम्हारे

समीप आए उससे कुछ वार्त्ता लो, अपनी दो, उसको आनन्द की प्राप्ति कराओ। अतिथि याग के पश्चात् तम गोमेध याग करो।

गोमेध याग किसे कहते हैं? इन्द्रियों पर संयम करना। इन्द्रियों को गो कहते हैं। गोमेध याग करो। उसके पश्चात् अश्वमेध याग करो। अश्वमेध याग का अभिप्राय कि राष्ट्र को ऊँचा बनाना है। क्योंकि अश्व नाम राजा का मेध नाम प्रजा का है वैदिक साहित्य में। इसके पश्चात् अजामेध करो। अजामेध क्या होता है? तुम संसार के विज्ञान को जानो। परमाणुवाद को नाना यन्त्रवाद को जानो। तुम्हारा विज्ञान इतना ऊँचा होना चाहिए जिससे तुम्हारा यातायात इस पृथ्वी से दूसरे लोकों में भी होना चाहिए। सूर्य मण्डलों तक मनुष्यों का यातायात होना चाहिए। उसको कहते हैं अजामेध याग। अजा नाम पशु को भी कहते हैं, अजा नाम वह भी होता है जो अपनी इन्द्रियों को वश में करता हुआ अजेय बन जाता है। जिसे संसार विजय नहीं कर सकता। उसके पश्चात् आदि ब्रह्मा ने कहा है अजामेध के पश्चात् तुम देवी याग करो। देवी नाम प्रकृति का है, इसके ऊपर तुम्हारा इतना अधिपथ्य होना चाहिए जिससे तुम प्रकृति को सुगमता से जानते हुए इसके ऊपर बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा इन चार प्रकार की धाराओं को जान करके इसके ऊपर संयमी बनो।

तो मेरे प्यारे! यह नाना प्रकार के यागों का वर्णन आदि ब्रह्मा ने किया है सृष्टि के प्रारम्भ में। यहाँ पितर याग का भी वर्णन है। आज मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। कल मुझे समय मिलेगा तो कल पितर याग की चर्चाएं करूंगा। आज का विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए विचारों का याग करते चले जाएं। आदि ब्रह्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में याग को उत्पन्न किया। यागं ब्रह्मे कृताः घृतं अग्निः संसार अग्नि की पूजा करता है। अग्नि देवी है और यह कैसी अग्नि है जो संसार का शोधन करती है। याग करने से द्यु लोक को परमाणु जाते हैं, शुद्ध परमाणु अन्तरिक्ष में जाते हैं। प्रत्येक सुमिधा में घृत होता है उस घृत के परमाणु अन्तरिक्ष में रमण करते हैं। इन सबका समावेश हो करके वृष्टि प्रारम्भ हो करके नाना प्रकार की वनस्पतियों

का जन्म हो करके हम संसार सागर से पार होने का प्रयास करें।

यह है आज का वाक् अब समय मिलेगा तो कल कुछ पितर याग की चर्चाएं भी करूंगा। पांचिक यागों की चर्चाएं भी कल करूंगा। मुझे आदि ब्रह्मा की चर्चाएं स्मरण आ रही हैं। आज भी मैं उनके वाक्यों के अनुसार अपने विचारों को प्रकट कर रहा था। कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा अब वेदों का पाठ होगा। (श्री श्याम लाल जी गर्ग कलकता)